12वें विश्व हिंदी सम्मेलन

के संदर्भ में

विशेषांक

विश्व हिंदी साहित्य



विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस
की साहित्यिक पत्रिका

विश्व हिंदी साहित्य
2022

मुख्य संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

विश्व हिंदी साहित्य
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independance Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : +230-6600800

ISSN - 1694-3465

वरिष्ठ सहायक संपादक

श्री प्रकाश वीर

सहायक संपादक

श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी

संपादन सहयोग

डॉ. सोमदत्त काशीनाथ, अनुसंधान एवं विकास सहायक

तकनीकी सहयोग

श्री मनदीप सहारन, आई.टी. अधिकारी

टंकण टीम

**श्री अजय कुमार, श्रीमती त्रिशिला आपेगाडु, श्रीमती विजया सरजू,
श्रीमती जयश्री सिबालक-रामशरण, श्री नीरज कुमार**

निवेदन

विश्व हिंदी साहित्य में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार रचनाकारों के हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा

आर. एस. प्रिंट्स

कवर डिज़ाइन

बहादुर प्रिंटिंग लिमिटेड, मॉरीशस

**स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली–110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित**

संपादकीय



साहित्य-सृजन की सार्थकता

किसी भाषा में सम्पन्न कलात्मक या बैद्धिक लेखन को 'साहित्य' की संज्ञा दी जाती है। साहित्यकार कभी 'स्वांत: सुखाय' के प्रयोजन से लेखनी पकड़ता है, कभी समाज का मनोरंजन करने के लिए लिखता है, तो कभी 'सर्वजन हिताय' के उद्देश्य से सृजन करता है। विद्वानों के अनुसार 'सहितस्य भाव: साहित्यम्', अर्थात् जो हित का भाव लिया हुआ है, वही 'साहित्य' है। इस दृष्टि से सुख की अनुभूति मात्र करने से या केवल समाज का मनोरंजन करने से साहित्य की सार्थकता पुष्ट नहीं होती, अपितु सर्वजन का हित साधन बनने पर ही साहित्य के उद्देश्य की पूर्ति होती है।

वेद संसार का प्राचीनतम साहित्य है। वैदिक संस्कृत में लिपिबद्ध 'वेद' का अर्थ है - 'ज्ञान'। ऋषियों ने मनुष्य जाति के कल्याण हेतु ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान को वेदों में संग्रहीत किया। ज्ञान के संचित कोष को ही 'साहित्य' कहा जाता है। विश्व का प्रथम साहित्यक ग्रन्थ 'ऋग्वेद' माना गया है, जो सृष्टिकर्ता, जीवन-मरण आदि विषयों का ज्ञान कराता है। 'यजुर्वेद' श्रेष्ठ कर्म अर्थात् 'यज्ञ' की विधि का ज्ञान कराता है। 'सामवेद' निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण आदि विषयों की जानकारी देता है। 'अथर्ववेद' रहस्यात्मक विद्याओं का बोध कराता है। सच्चा ज्ञान प्रदान करके समाज का हित करने के कारण हज़ारों साल बाद, वर्तमान समय में भी वैदिक वाङ्मय की उपादेयता और प्रासंगिकता बनी हुई है।

हिंदी साहित्य कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, संस्मरण, निबंध, यात्रावृत्तांत, रिपोर्ताज, डायरी, रेखाचित्र, आलोचना, लेख, फ़ीचर आदि अनेक विधाओं में विकसित हो चुका है। मनुष्य का स्वभाव है कि जो उपदेश सीधे-सीधे दिए जाते हैं, उन्हें ग्रहण करने में वह हिचकता है। वही उपदेश जब साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, तब साहित्यिक परिवेश से स्वयं को जोड़कर संदेश अपनाने के लिए मनुष्य तैयार हो जाता है। साहित्य उसे अच्छाई और बुराई की पहचान कराता है और सज्जन एवं दुर्जन पात्रों के अंतर का बोध कराता है। गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित करते हुए, मनुष्य को चरित्र का उज्ज्वल रूप अपनाने का संदेश दिया गया है। कलात्मक ढंग से आदर्श की स्थापना करने वाला 'रामचरितमानस' श्रेष्ठतम साहित्य की श्रेणी में आता है।

आदिकाल में राजाश्रित साहित्यकारों का कार्य राजाओं में वीरता और सैनिकों में उत्साह बढ़ाना तथा उन्हें युद्ध में विजयी होने का प्रोत्साहन देना था। विदेशियों के निरंतर आक्रमणों से महाराणा प्रताप ने निराश होकर दासता स्वीकारने का निर्णय कर लिया था, परन्तु साहित्य पढ़ते ही उनका मन बदल गया -

"पीथल रा आखर पढ़ता ही, राणा री आँख्या लाल हुई
धिक्कार मनै, हूँ कायर हूँ, नाहर री एक दकाल हुई
हूँ भूख मरूँ, हूँ प्यास मरूँ, मेवाड़ धरा आज़ाद रहे

हूँ घोर उजाड़ा मैं भटकूँ, पण मन में माँ की याद रह्वै।''

सही समय पर राज्य की रक्षा करने की सत्प्रेरणा देने वाला साहित्य अमर हो जाता है।

भक्तिकाल निरंतर युद्ध, अशांति और उथल-पुथल का काल रहा। मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से जनता पीड़ित थी। ऐसे समय में साहित्यकारों ने जनता में कठिन परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति उत्पन्न करने के लिए भक्ति की धारा प्रवाहित की। तुलसी ने राम पर विश्वास रखने की प्रेरणा दी –

"एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।"

सूरदास ने कृष्ण का पावन नाम लेकर पीड़ा से उबरने की माँग की –

"नाथ तू अब कैं मोहि उबारो
पतितन मैं विख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारे।"

कबीरदास ने संकट में प्रभु के नाम का स्मरण करने का संदेश दिया –

"कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरिनाम।"

भक्तिकालीन साहित्य में सगुण और निर्गुण भक्ति की धाराएँ समानांतर बहीं। तुलसी ने 'अगुनहि सगुनहि नहीं कछु भेदा" कहकर सगुण और निर्गुण उपासकों को प्रेम के धागे में जोड़े रखा। भक्ति, प्रेम और एकता का प्रचार करते हुए साहित्यकारों ने समाज को दुख के अन्धकार से सुख के प्रकाश की ओर ले जाने का प्रयास किया और हिंदी साहित्य ने 'सर्वजन हिताय' की भावना का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया।

रीतिकाल के सामंती परिवेश में दरबारी कवियों ने आश्रयदाताओं की विलासी प्रवृत्ति के अनुरूप साहित्य में भोगपरक श्रृंगार का चित्रण किया। बिहारी की काव्य-पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

"कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत है, नैननु ही सौं बात।।''

अपने आचार्यत्व और पांडित्य-प्रदर्शन की होड़ में दरबारी कवियों ने अलंकारों का इतना प्रयोग किया कि वे साधन न रहकर साध्य बन गए और अलंकारों के बीच भाव विलुप्त-सा हो गया। इसीलिए केशव को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा गया। यद्यपि साहित्य के कला-पक्ष को निखारने में रीतिकालीन साहित्यकारों का योगदान अस्वीकारा नहीं जा सकता, तथापि रागमयी भावनाओं के साथ नारी को विलासिनी प्रेमिका के रूप में चित्रित करके उत्तर मध्यकाल के साहित्यकार जनता के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करने में सफल नहीं हो पाए।

लोकहित के प्रयोजन से लिखा जाने वाला साहित्य सीमित कठघरे में बंधा हुआ नहीं होता है। वह मनुष्य के संघर्ष और वास्तविक समस्याओं का चित्रण करते हुए जीवन की विविधता एवं व्यापकता के दर्शन कराता है तथा जन-जागरण का आधार बनता है। आधुनिक हिंदी साहित्य ने राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न की। 'प्रबोधिनी' कविता में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने देशवासियों को जागरण का संदेश दिया –

"डूबत भारत नाथ बेगी
जागो अब जागो।"

प्रताप नारायण मिश्र ने 'निज धर्म भी विधि जानैं, निज गौरव पहिचानैं' की माँग की, तो बालमुकुन्द गुप्त ने 'सदा रखें दृढ़ हिय मँह निज साँचा हिन्दूपन' कहते हुए संस्कृति के प्रति अनुराग का भाव जगाया।

जगद्गुरु आदि शंकाराचार्य, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, अरविन्द, बालगंगाधर तिलक आदि महापुरुषों ने अपने लेखों एवं पुस्तकों से समाज में क्रान्ति उत्पन्न की। उन्होंने हर आँख में स्वतंत्र भारत का सपना सजाया। स्वाधीनता-संग्राम के दौरान बंकिमचंद्र चटर्जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मुंशी प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों ने जनता में देश-भक्ति की भावना भरने का प्रयास किया और लोकमंगलकारी साहित्य का एक नया अध्याय रचा।

आधुनिक युग में रोमांटिक और जासूसी साहित्य का भी सृजन होता रहा है। तड़क-भड़क वाले इस साहित्य में समाज के दुराचरण को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है। इसमें बुराइयों का प्रतिबिम्ब तो दिखाया जाता है, पर समाधान बिरले ही बताया जाता है। अपरिपक्व मन वाले युवा रोमांटिक और जासूसी साहित्य से जुड़कर अश्लीलता, हिंसा, अपराध आदि विकारों में फँस जाते हैं। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में गरीबी, बेरोज़गारी, भुखमरी, पूंजीवाद, सामंतवाद आदि अनेक सामाजिक विकृतियों का चित्रण किया है, किन्तु समाज का सुधार करने का मार्ग भी दिखाया है। यही कारण है कि प्रेमचंद का साहित्य असामान्य, वज़नदार, नवीन और लोकहित साधक है।

आधुनिक बहुआयामी तकनीक के फलस्वरूप हिंदी साहित्य विविध रूपों में उभर रहा है। इस परिवर्तनशील युग में क्यों न हिंदी साहित्यकार समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वहण करते हुए ऐसा साहित्य रचें, जिससे स्थितियों का सामना करने, समस्याओं का समाधान खोजने और परिवेश के अनुसार आचरण अपनाने की समझ पैदा हो। पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं में, सोशल मीडिया में और आभासी मंच पर परोसा जाने वाला हिंदी साहित्य यदि पाठकों के दैनिक व्यवहार को निर्मल और सर्वग्राही बना सके, तो यह साहित्य-सृजन की सार्थकता मानी जाएगी।

Mk- ek/kjh jke/kkjh
miegkLfpo

अनुक्रम

लघुकथा

1.	भारत	सच्चा अनुष्ठान	श्री समीर उपाध्याय	1
2.	भारत	सामाजिक भेद	श्री सुनील गज्जाणी	1
3.	भारत	ये भी सोचो	श्री राम मूरत 'राही'	2
4.	भारत	सुरक्षा कवच	श्री विजयानंद विजय	2
5.	भारत	गऊ दान	डॉ. रमेश यादव	3
6.	भारत	इन्चार्ज	श्री संतोष सुपेकर	4
7.	भारत	सामना	श्रीमती यशोधरा भटनागर	4
8.	यू.ए.ई.	प्रथम पुरस्कार	मीरा ठाकुर	5
9.	मॉरीशस	दूसरे के नुकसान में अपना भी लाभ नहीं	डॉ. सोमदत्त काशीनाथ	5

कहानी

10.	भारत	बघेरन	श्रीमती तारावती सैनी 'नीरज'	7
11.	भारत	कहानीकार	डॉ. जगदीश पन्त 'कुमुद'	11
12.	भारत	यह कड़ी अनवरत चलती रहे	श्रीमती रोचिका अरुण शर्मा	14
13.	मॉरीशस	स्वच्छंदता	श्री दयानन्द चेंगी	17
14.	नेपाल	पहली और आखिरी चिट्ठी	वीणा सिंहा	21
15.	पूर्वी अफ़्रीका	इत्तेफ़ाक	श्री अशोक कुमार आशू	24
16.	यू.के.	आश्रय	श्रीमती शिखा वार्ष्णेय	32
17.	यू.ए.ई.	आधी माँ, अधूरा कर्ज़	डॉ. आरती 'लोकेश'	35

कविता

18.	भारत	आज की आधुनिक भारतीय नारी	वंदना रितेश सिंह	43
19.	भारत	हिन्द से प्यार	श्री नफे सिंह कादयान	45
20.	भारत	पता नहीं	डॉ. ललिता लोधा	46
21.	भारत	फिर से लौट आना	डॉ. कमलेश गोगिया	46
22.	भारत	तुम थे सुभाष	डॉ. शुचि गुप्ता	47
23.	भारत	ज़िंदगी स्वयं से	श्रीमती अरुण कमल	47
24.	भारत	वह आदिवासी औरत	श्री कमल राठौर साहिल	48
25.	भारत	कत्ल-ए-आम हो जाऊँ	सुश्री मोनिका राज	49
26.	भारत	मुसीबत	डॉ. मंजु गुप्ता	49
27.	भारत	वसंत आ गया	डॉ. कृष्णा जैमिनी	50
28.	भारत	धूप	डॉ. विनयकुमार विष्णुपुरी	50
29.	भारत	ज़िंदगी जीने की राह दिखाती	श्री भगत सिंह	51
30.	मॉरीशस	पराक्रम	सुश्री रचना देवी रामफल	51
31.	मॉरीशस	कोरोना	सुश्री हिमांशी नेमचंद	52
32.	मॉरीशस	मेरे पापा हैं सबसे अच्छे	सुश्री सान्वी काशीनाथ	52
33.	मॉरीशस	कछुए की चाल	श्री सव्यसाची काशीनाथ	53
34.	अमेरिका	संक्रमण	डॉ. अविनाश श्रीवास्तव	54
35.	अमेरिका	तन्हा-तन्हा	डॉ. दुर्गा सिन्हा 'उदार'	55
36.	कनाडा	रंग रंगीला मेला	श्रीमती युक्ता लाल	55
37.	कनाडा	आदमी	श्री परिपूर्ण सिंह रौतेला 'आनंद'	56
38.	यु.ए.ई.	मेरा घर	श्रीमती नूपुर दीक्षित दुबे	57
39.	नेपाल	आज़ादी	श्रीमती करुणा झा	58

दोहा

40.	भारत	आईने के संग : दोहों के रंग	श्री हलीम आइना	59
41.	भारत	ऐसा दीप जलाना होगा	श्री कमलेश कुमार	59
42.	भारत	हिंदी का लालित्य	श्री सत्यम भारती	60

क्षणिकाएँ

43.	भारत	जंग जागते ख्वाब यकीन उदास बेमन वजूद ख्वाहिशें सपने रात अक्स मेरी सहेली	श्रीमती शकुन्तला पालीवाल	62

हाइकु

44.	भारत	हाइकु	श्रीमति रश्मि विभा त्रिपाठी	64
45.	भारत	बगीचा	श्री रमेश कुमार सोनी	64
46.	भारत	हाइकु	श्रीमती सरिता सुराणा	65
47.	भारत	हाइकु	श्री यशपाल निर्मल	66
48.	भारत	हाइकु	शालिनी वर्मा	67

गीत

49.	भारत	सृजन	श्री संजय कुमार साहू	69
50.	भारत	गीत	डॉ. विवेक बादल 'बाजपुरी'	70

ग़ज़ल

51.	भारत	गज़लें	श्री धर्मेन्द्र गुप्त	71
52.	भारत	गज़लें	श्री अजय कुमार शर्मा	73
53.	अमेरिका	गज़ल	विनीता तिवारी	74

नाटक / एकांकी

54.	भारत	बापू नाराज़ हो जाएँगे	श्री कल्याण जग्गी	75
55.	भारत	प्रौद्योगिकी के पंखों के साथ राजभाषा हिंदी की उड़ान	डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा	79
56.	मॉरीशस	जैसी करनी वैसी भरनी	सुश्री प्रेरणा आर्यनाईक	84

निबंध

57.	भारत	महारास : गोपियों के कृष्ण-प्रेम का प्रतिफल	श्री गोपाल शरण शर्मा	88
58.	भारत	'कोरोना' के विरुद्ध महायुद्ध में अनुवादकों की भूमिका	श्री सुनील भुटानी	89
59.	भारत	हिंदी : हमारे देश का अभिमान	डॉ. अनामिका जैन	91
60.	उज़्बेकिस्तान	उज़्बेकिस्तान में हिंदी	सुश्री हुसनोरा बोटिरोवा	94
61.	अमेरिका	स्नोफ़ॉल : एक खुशनुमा एहसास	श्रीमती शुभ्रा ओझा	95

संस्मरण

62.	भारत	मोहिं बिसरत नाहीं	श्रीमती ममता माली	98
63.	मॉरीशस	पीटर बोथ पर्वत के शिखर पर विजय	श्री बलवंतसिंह नौबतसिंह	100
64.	अमेरिका	मुक्ति	श्रीमती प्रीति गोविंदराज	104
65.	अमेरिका	आनन्द धाम में आनन्द के पल	श्रीमती शशि पाधा	107
66.	यू.के.	कुछ अविस्मरणीय क्षण	श्रीमती इंदु बारौठ	109
67.	उज़्बेकिस्तान	पत्थर पर नक्काशी	श्रीमती मकतूबा मुर्तज़ाखोदजाएवा	111

यात्रावृत्तांत

68.	भारत	सर्दियों में बोलपुर	श्री रोनित गांगुली	114
69.	भारत	उत्तराखंड की वन वीथियों से	डॉ. विजया सती	116
70.	भारत	महाकवि की खोज में	सुश्री अनुपमा ऋतु	119
71.	अमेरिका	मॉरीशस : अतीत की ओर खींचती एक यात्रा	श्री अशोक ओझा	122

व्यंग्य

72.	भारत	सम्माननीय श्री	श्री राजेन्द्र ओझा	127
73.	भारत	भारत में चाय का योगदान	श्री अशोक व्यास	128
74.	कनाडा	संस्कृति चौराहे पर एक शाम	श्री धर्मपाल महेंद्र जैन	130

साक्षात्कार

75.	भारत	डॉ. स्नेहलता पाठक जी के साथ साक्षात्कार	डॉ. मृणालिका ओझा	133
76.	भारत	कथाकार विष्णु नागर से खेमसिंह डहेरिया की बातचीत	प्रो. खेमसिंह डहेरिया	135
77.	मॉरीशस	बाल-साहित्यकार डॉ. मंजरी शुक्ला के साथ साक्षात्कार	श्रीमती श्रीति रामफल	137
78.	यू.के.	एक प्रमुख हिंदी लेखक के साथ साक्षात्कार	श्रीमती मधु कुमारी चौरसिया	140
79.	ऑस्ट्रेलिया	संजीव जायसवाल संजय के साथ साक्षात्कार	श्रीमती रीता कौशल	143
80.	सूरीनाम	डॉ. लीला गोवर्धन-रामबोकस से बातचीत	श्रीमती भावना सक्सैना	146

समीक्षा

81.	भारत	पश्चिमी जर्मनी और उपभोक्तावादी संस्कृति : 'पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नज़र' यात्रावृत्तान्त के विशेष संदर्भ में	डॉ. स्मृतिरेखा नायक	150
82.	भारत	'चाणक्य के जासूस' गुप्तचरी का शास्त्र	श्री शिवानन्द उपाध्याय	153
83.	भारत	'भारत-रत्न पंडित भीमसेन जोशी : शताब्दी वर्ष के बहाने'	डॉ. मनीष कुमार मिश्रा	157

लेख

84.	भारत	कुंभ : भारतीय चिंतनधारा का राष्ट्रीय पर्व	डॉ. विनय कुमार शर्मा	162
85.	भारत	इक्कीसवीं सदी की स्त्री : भारतीयता की पोषक या विनाशक?	डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता'	166
86.	भारत	प्राचीन भारतीय संस्कृति में पर्यावरण-संरक्षण	डॉ. स्वाति चड्ढा	170
87.	भारत	हिंदी की विश्वविजयी यात्रा में प्रोफ़ेशनल का योगदान	श्री उमेश चतुर्वेदी	174
88.	मॉरीशस	मॉरीशस के गाँव-शहर के नामों का इतिहास	श्रीमती सविता तिवारी	177

सच्चा अनुष्ठान

श्री समीर उपाध्याय
गुजरात, भारत

'महेश, तुम्हें पता है, आजकल चैत्र नवरात्रि के दिन चल रहे हैं? मैं और मेरी पत्नी ने माँ दुर्गा का अनुष्ठान किया है। नौ दिनों का उपवास रखा है। नौ दिनों तक माँ दुर्गा के मंदिर में जाकर लड्डू का भोग चढ़ाने का व्रत भी रखा है।'

अजय बड़े उत्साह के साथ माँ दुर्गा के अनुष्ठान के बारे में सुनाता रहा। महेश उसे चुपचाप सुनता रहा। कुछ समय बाद अचानक महेश कह उठा - "अरे हाँ, मैं कल तुम्हारे घर गया था। भाभी जी पूजा के कमरे में बैठकर मंत्रों का उच्चारण कर रही थी। दोनों बच्चे टीवी पर सीरियल देखने में व्यस्त थे। मैंने तुम्हारी माँ से भेंट की। उनकी दवाई का समय हो गया था, तो डिब्बे से दवाई निकालकर मैंने माँ को दी। उनके अनुरोध पर मैंने फ़्रीज से फल निकालकर, उनको धोकर और काटकर एक थाली में माँ को दिया। फिर, उन्हें पीने के लिए पानी देकर मैं उनके पास बैठ गया। उन्होंने दो घंटे तक अपने पुराने दिनों की बातें मुझे बतायीं और दिल खोलकर बात की। जब मैं तुम्हारे घर से निकल रहा था, तब माँ बहुत भावुक हो गई थी।'

अजय ने आश्चर्य प्रकट किया - 'लेकिन तुम्हारी भाभी ने तो मुझे बताया ही नहीं कि तुम घर आए थे।'

'अरे दोस्त, बताएगी कैसे? वह दो घंटे तक पूजा के कमरे में माँ दुर्गा के अनुष्ठान में बैठी थी और अनुष्ठान पूरा होते ही, वहीं से यह कहकर बाहर निकल गई कि वह माँ दुर्गा के दर्शन के लिए मंदिर जा रही है। उन्हें क्या पता कि घर में कौन आया और कब चला गया? माँ की दवाई और खाने-पीने का ध्यान भी न रहा। दोस्त! घर में बैठी माँ को खुश रखो। उसकी सेवा करो। उसके लिए थोड़ा समय निकालो। इससे मंदिर में बैठी माँ अपने-आप खुश हो जाएगी।

अजय के मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। वह अवाक् रह गया।

s.l.upadhyay1975@gmail.com

सामाजिक भेद

श्री सुनील गज्जाणी
राजस्थान, भारत

माँ-बेटी आपस में बातें कर रही थीं। सेठानी को आते देख माँ स्फूर्ति से झाड़ू लगाने लगी!

"क्यों री, अपनी माँ के साथ क्या खुसुर-फुसुर कर रही थी! छोरी, तेरा ध्यान काम में कम, बातों में ज़्यादा है! है री, चल तू बता, तेरी छोरी क्या बातें कर रही थी?"

"कुछ नहीं, बस यूँ ही!"

"यूँ ही! कभी हमारे परिवार के सदस्यों को, तो कभी हमारी कोठी को देखते हुए तुम दोनों बातें कर रही थीं। तुम्हारी इस बेहूदा हरकत को देखकर ही मैं इधर चली आयी कि पूछूँ तो भला, ऐसी क्या बात है, जो तुम दोनों यूँ टुकुर-टुकुर देख बातें कर रही हो? है री, बोल ना! क्या बात है?"

"बात तो बस भाग्य की है" - बेटी बुदबुदायी!

"क्या बड़बड़ायी री? कोई मंतर था? कोई जादू-टोना कर हम पर कोई नज़र तो नहीं लगा रही हो? ऐ बोल ना!"- सेठानी एक साँस में उगल पड़ी!

"सेठानी जी, आप कैसी बातें कर रही हैं?" माँ ने सकपकाते हुए जवाब दिया!

"तो तू ही बता दे कि कैसे बात करूँ मैं!"

'जब से बेटी यहाँ काम में मेरा हाथ बटाने आयी है, तब से आपका बेटा मेरी सयानी बेटी पर भेड़िये-सी नज़र लगाए बैठा है!' माँ ने मन-ही-मन सिर्फ़ सोचा, कुछ कह नहीं पायी! बस सजल आँखों से बेटी को निहारने लगी!

"यूँ रो मत! देख री, तेरे कारण तेरी माँ कितनी शर्मिंदा महसूस कर रही है! तेरी माँ हमारे घरेलू फ़ंक्शन में अपना हाथ बटाने के लिए तुझे साथ क्या लायी, तू आते ही ताक-झाँक करने लगी, हमें घूरने लगी !"

"सेठानी जी दरअसल मेरी बेटी सामाजिक भेद की बात कर रही थी।"

"सामाजिक भेद? क्या तुझे हम अपने घर के सदस्य की तरह नहीं समझते, क्या तेरे हर सुख-दुख में काम नहीं आते! हमारी कोठी में काम करने से क्या तुझे तेरे समाज में इज़्ज़त नहीं मिलती? बता अपनी छोरी को!"

माँ चाहकर भी कुछ बोल नहीं पायी, तो बेटी चहकती हुई कहने लगी - "सेठानी जी, मैं माँ को बता रही थी कि मैं आपसे बहुत प्रभावित हूँ। कितनी अच्छी हैं आप!" यह कह उल्लसित होकर सेठानी को आलिंगन करना चाहा, तो सेठानी दुत्कारती हुई बोली - "ऐ, सुन री! अपनी बेटी को अपने संस्कार सिखा, बदलाव नहीं!" कहकर फुफकारती-सी चल पड़ी!

"माँ वे क्या कहकर तुनकती हुई चली गयीं, मैं समझी नहीं!"

"यही कि वे सामाजिक भेद बरकरार रखना चाहती है।

sgajjani@gmail.com

ये भी सोचो

श्री राम मूरत 'राही'
इन्दौर, भारत

"क्या स्नेहा तू भी? हमें स्कूल वाले बहुत कम वेतन देते हैं, फिर भी तू बच्चों को जी-जान से पढ़ाने में लगी रहती है।" सुमन ने भोजन के समय स्नेहा से कहा।

"जितना वेतन मिलता है, उतना ही पढ़ाया कर, समझी?" दीपिका ने सुमन की बात का समर्थन किया।

स्नेहा ने मुस्कुराते हुए कहा - "यार! तुम दोनों क्या फ़ालतू की बातें कर रही हो?"

"फ़ालतू की नहीं, हम दोनों तेरे और हमारे भले के लिए ही कह रही हैं।" - सुमन ने कहा।

"और नहीं तो क्या? वरना हमें क्या पड़ी है?" दीपिका ने चिढ़ते हुए कहा।

"तुम नाराज़ मत होना। मैं जानती हूँ कि तुम दोनों मेरे भले के लिए कह रही हो, लेकिन...!"

"लेकिन क्या?" सुमन ने पूछा।

स्नेहा ने दृढ़ता के साथ कहा - "यार! मैं इतनी स्वार्थी नहीं होना चाहती कि कम सैलरी मिलने की वजह से बच्चों का भविष्य खराब कर दूँ। हमें कम वेतन मिल रहा है, तो इसमें उन भोले-भाले बच्चों का क्या दोष?"

rammooratrahi@gmail.com

सुरक्षा कवच

श्री विजयानंद विजय
बिहार, भारत

मास्क से अपना मुँह-नाक ढके सुनसान सड़क पर जा रहे मनुष्य ने फ़ुटपाथ पर आराम से टाँगें फैलाकर लेटे हुए एक कुत्ते से पूछा - "यार, समझ में नहीं आता, तुम लोग इस तरह इतने चैन से कैसे रह रहे हो?"

"हम इन्सान थोड़े न हैं? हम जानवर हैं... जानवर। ये वायरस हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

एक कुत्ते ने मुँह उठाकर उसे देखा और अपनी टाँगें और फैला लीं।

"वाकई। हमारी तरफ़ देखो, हम तो मास्क, फ़ेस शील्ड और ग्लोव्स लगाकर चलते हैं। सैनिटाइज़र का भी प्रयोग कर रहे हैं। दिन भर साबुन से हाथ धोते रहते हैं। सोशल डिस्टेंस मेन्टेन करते हैं। वैक्सीन ले रहे हैं। फिर भी बीमार हो रहे हैं!

बीमार लोग अस्पताल भाग रहे हैं। मर रहे हैं। श्मशान में लाशों की लाइन लगी हुई हैं। मगर तुम लोग नंग-धड़ंग, बिना कपड़ों के सारा दिन जहाँ-तहाँ पड़े रहते हो, फिर भी सुरक्षित हो? तुम्हारी इम्यूनिटी इतनी मज़बूत कैसे है?" मनुष्य ने ईर्ष्या से कुत्ते की ओर देखते हुए पूछा।

"हे मनुष्य, सुनो!" अचानक एक कुत्ता अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ और आक्रोश में मनुष्य की ओर आँखें तरेरते हुए गुर्राया - "देखो, पहले तो तुम हमें नंग-धड़ंग बोलना बंद करो, समझे! तुम लोग कपड़े पहनकर भी हमसे ज़्यादा नंगे हो। अपना चाल-चलन-चरित्र और चेहरे को क्या तुमने देखा है, इंसानियत के आईने में...?" और वह ज़ोर-ज़ोर से उस पर भौंकने लगा।

पास ही खड़े दूसरे कुत्ते ने दाँत पीसते हुए कहा - "और रही बात सुरक्षित रहने की, तो बाहर के इस संक्रमण से ज़्यादा संक्रमण तो तुम लोगों के अंदर फैला हुआ है - नफ़रत, द्वेष, घृणा, जाति-धर्म, ऊँच-नीच का। ये सब बुराइयाँ हमारे अंदर नहीं हैं और यही हमारी इम्यूनिटी है। हम जानवर होकर भी तुम इंसानों से बहुत बेहतर हैं और तुम लोग इंसान होकर भी...!"

सड़क के सभी कुत्तों ने हिकारत भरी नज़रों से सूट-बूट वाले मनुष्य की ओर देखा और फिर सब ने अपना मुँह फेर लिया।

vijayanandsingh62@gmail.com

गऊ दान

डॉ. रमेश यादव
मुंबई, भारत

"साहब, पिंडदान का काम अभी अधूरा है। आपके बाबूजी को स्वर्ग जाने के लिए नदी पार करनी पड़ेगी। गाय की पूँछ पकड़कर, वे वैतरणी पार करेंगे। आप गऊ दान के लिए गाय नहीं लाए?"

लगभग पचहत्तर साल के महापात्र पंडितजी को सुरेश ने गौर से देखा और कहा - "गुरुजी, आपकी दक्षिणा, जो तय है, वह पूरी मिल जाएगी। सामग्री में जो भी सामान आपने लिखवाया था, जैसे पूरा अंग-वस्त्र, जूते, चप्पल, रजाई, चटाई, चारपाई, बिछौना, छाता, अनाज, तेल, मसाला आदि सब तो दान हो गया। शहर में अब गाय कहाँ मिलेगी?"

"जजमान वे ऊपर से देख रहे हैं। मुझे जो भी दान दे रहे हैं, सब उन्हीं को मिलेगा। गाय नहीं दे सकते, तो उसका दाम दे दीजिए। मैं देख रहा हूँ कि वे नदी किनारे इंतज़ार कर रहे हैं।"

काफ़ी विनय करने के बाद भी पंडितजी अपनी बात पर अड़े रहे। तब सुरेश कुछ नाराज़गी के स्वर में बोला - "गुरुजी आप ज़िद्द कर रहे हैं। अपनी उम्र का लिहाज़ करें। यहाँ मराठी समाज के पंडित जो दक्षिणा तय करते हैं, उसके बाद एक रुपया भी अलग से नहीं माँगते। आपने तो हम तीनों भाइयों से लगभग डेढ़-दो हज़ार रुपये विधि करवाते हुए देवताओं के नाम पर दान करवा दिये। आधा लिटर कच्चा घी गलगला करते हुए पी गए। भरपेट भोज करने के बाद पिताजी के नाम पर जो अतिरिक्त पूरियाँ खाईं, उसके लिए हर पूरी के सौ रुपये लिये। लोगों के सामने अब आप अति कर रहे हैं। एक काम कीजिए मुझे पिताजी के दर्शन करवा दीजिए, जहाँ वे इंतज़ार कर रहे हैं। उनसे पूछ लेता हूँ, यदि कहेंगे तो गऊ दान कर देंगे। अन्यथा जो दक्षिणा तय है, वह भी नहीं देंगे और सारा सामान हम किसी अनाथाश्रम को दान कर देंगे।"

इतना सुनते ही पंडितजी चुपचाप सारा सामान समेटने लगे।

rameshyadav0910@yahoo.com

इन्चार्ज

श्री सन्तोष सुपेकर
मध्य प्रदेश, भारत

"अरे, यह क्या है? यह पाइप लाइन कितने दिनों से फटी पड़ी है?" दफ़्तर के रास्ते पर पानी की फटी पाइप लाइन और पास में पानी से भरे छोटे से गड्ढे में रतन जी का पैर पड़ा, तो वे झल्ला उठे - "और पानी बहने से यहाँ गड्ढा भी हो गया है! इसको बंद करवाओ, यार! तुम तो इन्चार्ज हो यहाँ के।"

"अभी चार दिन पहले तो फटी है, यह पाइप लाइन। ठीक करवाते हैं। ज़रा गर्मियाँ कम हो जाएँ।"

एक रहस्यमयी मुस्कान से बोले रमन जी।

"गर्मियाँ कम हो जाएँ! इससे क्या मतलब है तुम्हारा? क्या तब तक ऐसे ही पानी बहता रहेगा?"

"सर, पाइप लाइन में पानी की सप्लाई आती ही कितनी देर है? आधा-पौना घण्टा आती है और इसमें से बहुत पतली धार फूटती है पानी की, जिससे कोई खास मात्रा में पानी व्यर्थ नहीं होता।"

"अरे भाई। लेकिन पानी फैलने से..."

"सर, सुनिए तो। इतनी उमस भरी गर्मी में इस फटी पाइप लाइन से जब पानी की एक पतली धार फूटती है, तब एक फव्वारा उठता है। उस फव्वारे में रोज़ सुबह कुछ कबूतर और चिड़ियाँ अपनी नन्ही चोंच से पानी पीती हैं। ठंडे पानी के फव्वारे में पंख फैलाकर, स्नान कर खुद को तरोताज़ा कर लेते हैं। कभी सुबह यहाँ आकर आप वह दृश्य देखिए, सर! इतना मनोहर और सुंदर दृश्य देखकर मैं इस उमस भरी गर्मी में भी ठंडक महसूस करता हूँ। अपनी नौकरी पर तो सब इन्चार्ज होते ही हैं सर, धरती के हर प्राणी को समान अधिकार मिले, इसके इन्चार्ज हम सब मनुष्य ही हैं। इसलिए मैंने इस फटी पाइप लाइन और पानी से भरे गड्ढे को फ़िलहाल ऐसे ही रहने दिया है। कुछ दिन बाद करवा देंगे ठीक इसे सर!"

santoshsupekar29@gmail.com

सामना

श्रीमती यशोधरा भटनागर
मध्य प्रदेश, भारत

लड़खड़ाते कदमों से दीवार का सहारा लेकर, किसी तरह आखिरी साँसों को कसकर, दम भरते हुए, वह खड़ा हो गया। ना जाने क्यों आईने में खुद को निहारने की प्रबल इच्छा हुई। अंतिम समय में भी चेहरे से इतना मोह! अपनी सुन्दरता से इतनी आसक्ति ! वह खुद पर ही हँस पड़ा। सामने से एक चेहरा उसकी ओर झाँका। पर वह पहचान ही न पाया।

"कौन हो तुम?" मैंने उससे पूछा।

कुछ रुठे-रुठे से, कुछ अकड़े-अकड़े से, कुछ भीगे-भीगे से स्वर में उत्तर आया - "ज़मीर हूँ, तुम्हारा। क्या पहचान रहे हो तुम मुझे?"

उसकी नज़रें और सिर दोनों ही झुक गए।

"कितनी बार मारा है तुमने मुझे?"

उसने बिना कुछ बोले सिर झुका लिया।

"एक बार देख सकोगे मुझे?"

पूरा साहस जुटाकर उसने निगाहें उठाकर आईने की ओर देखा। आईने की किरिच-किरिच बिखर गई... जो साँसें कसकर थामी थीं, एक ही आह में छूट गईं।

yashodharabhatnagar@gmail.com

प्रथम पुरस्कार

मीरा ठाकुर
आबूधाबी, यू.ए.ई.

होटल में चेक-इन करते ही डेस्क पर खड़े व्यक्ति ने कहा - "गुड इवनिंग सर।" इस शुक्रवार को हमारे होटल का एक साल पूरा हो जाएगा और इस उपलक्ष्य में हमने एक कार्यक्रम रखा है। बस, आपको करना यह होगा कि एक छोटे-से वीडियो में अपनी जीवन-साथी अर्थात् अपनी पत्नी के बारे में बताना होगा। सबसे अच्छे बने वीडियो वाले जोड़े को पुरस्कृत किया जाएगा। जीतने वाले जोड़े को मॉरीशस का रिटर्न टिकट दिया जाएगा।

"अच्छा" कहकर शशांक अपने रूम की ओर चल पड़े। शाम को हॉल के बड़े टी.वी.-पर्दे पर आए हुए सभी वीडियो को बारी-बारी से चलाया गया। एक वीडियो में एक महाशय कह रहे थे - "मेरी पत्नी कुछ नहीं करती। उसे दिन भर आराम ही आराम करना पसन्द है।" लगभग सभी वीडियो इसी तरह के थे। अंत में, एक वीडियो दिखाया गया और देखते ही स्त्री-समाज खुश हो गया। उसमें एक महाशय कह रहे थे - "मेरी पत्नी बहुत ही व्यस्त रहती है। पूरे घर की ज़िम्मेदारी उस पर ही रहती है। वह सुबह से रात तक चकरी की तरह काम करती रहती है, तभी मैं और मेरा पूरा परिवार आराम और आनंद से अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हमें घर वापस आने का उतावलापन रहता है। वही सब कुछ करती है। वही हमारे घर का प्रबंधन करती है। वही हमारे घर की निर्णायिका है, हमारे घर की संचालिका है। अब आगे क्या कहूँ, वह हमारी सब कुछ है। हम उसके बिना नहीं रह सकते हैं। किसी भी काम को उसके सहयोग के बिना पूरा नहीं कर पाते हैं।"

कहना गलत नहीं होगा कि अंत में दिखाए गए वीडियो को प्रथम पुरस्कार मिला। वह वीडियो शशांक का था।

meerasid@yahoo.com

दूसरे के नुकसान में अपना भी लाभ नहीं

डॉ. सोमदत्त काशीनाथ
वाक्रा, मॉरीशस

आज दोपहर को मैं दूकान से बिस्कुट लेकर होस्टल लौटा, तब मुझे लगा कि मुझे एक बड़ा लाभ हुआ है। पूरे पचास रुपयों का लाभ! जब दूकानदार ने मुझे मेरे खरीदे हुए बिस्कुट के पैकेट के साथ दस रुपये के सिक्के के साथ पचास रुपए का एक नोट दिया, तब मैं भाँप गया कि बूढ़े दूकानदार ने हिसाब में गलती की है। उस समय स्वार्थ ने कहा - "गलती दूकानदार की है, इसमें तुम्हारा दोष नहीं। उसे इन पचास रुपयों से कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा।" किन्तु रात के भोजन के बाद गिलास में कॉफ़ी लेकर, जब मैंने उस बिस्कुट के पैकेट की ओर हाथ बढ़ाया, तब वह पचास का नोट भी मेरे हाथ में आ गया। उसे मैंने बिस्कुट के पैकेट पर ही रख दिया था। वह बिल्कुल नया नोट था। उस नोट को देखकर मेरे मन में कई सवाल उठने लगे। सवाल नैतिकता ने पूछे थे और जवाब अनैतिकता दे रही थी। पचास रुपयों से हुए लाभ से उत्पन्न खुशी ने इतनी जल्दी अवसाद का रूप कैसे धारण कर लिया? अब कॉफ़ी और बिस्कुट की इच्छा मिट ही गई थी। मेरे मन में उठतीं आत्म-ग्लानि की लहरों ने मुझे इस प्रकार क्यों निष्चेष्ट कर रखा था? मैं सोने चला गया। सपने में वही पचास का करारा नोट आया। उसने कहा - "सुनो मुझपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं।"

"नहीं, तुम मुझे भाग्य से मिले हो। इसलिए तुम पर मेरा पूरा अधिकार है।" मैंने उत्तर दिया।

"किन्तु किसी दूसरे का दुर्भाग्य, तुम्हारा सौभाग्य कैसे बन सकता है?"

इस तर्क की काट मेरे पास नहीं थी। मैं चुप रहा। मेरी नींद खुली। बत्ती जल रही थी। वही पचास का नोट मुझे टेबल के एक छोर से झाँक रहा था। मैं उसके साथ आँखें नहीं मिला पा रहा था। उसे पीठ दिखाकर सोने की कोशिश की, किन्तु मैं असफल ही रहा।

सुबह मैं साइकिल लेकर मुखर्जी नगर पहुँचा। दूकान बत्रा सिनेमा के पास ही थी। मैंने बूढ़े अंकल से कहा - "अंकल, कल आपने मुझे पचास रुपए ज़्यादा दे दिए थे। ये लीजिए, आपके पैसे!"

"हाँ बेटा! मेरे बच्चे जब तुम मुस्कराए थे, तभी मुझे पता चल गया था कि मुझसे गलती हुई है। जब तुम चले गए तब मैंने सोचा कि मेरे बच्चे एक वक्त कम खा लेंगे। पर ईश्वर ने ऐसा होने नहीं दिया।"

"क्षमा करना अंकल। आगे से मैं अपने लाभ के लिए, किसी दूसरे की हानि नहीं होने दूँगा!"

इसके आगे मैं और कुछ नहीं कह सका।

mskashinath@gmail.com

बघेरन

श्रीमती तारावती सैनी 'नीरज'
राजस्थान, भारत

"चल निकल यहाँ से, अब तेरा यहाँ कुछ नहीं बचा। अपने दोनों बच्चों को ले जा, हमारे माथे कुछ छोड़कर मत जा।"

राधेश्याम की राख अभी ठंडी भी नहीं हुई थी और चिरौंजी को उसके जेठ-जेठानी और सास-ससुर ने घर से ज़बरदस्ती बाहर निकाल दिया। पति नाम की दीवार के गिरते ही, चिरौंजी लाचार हो गई।

उसके जीवन की सारी कल-कल पति के साथ ही बह गई।

लड़ते-झगड़ते, प्रेम के प्रवाह में साथ बहते समुंदर और नदी अलग हो गए। एक आकाश का चमकता सितारा बन गया और दूजा धरती पर सूखी मिट्टी का ढेल।

चिरौंजी अब किससे अपना दुख-सुख बाँटेगी। उसने तो आज राधेश्याम से भोर होते ही काम पर जाने के लिए मना किया था। उसका मन कुछ विचलित-सा हो रहा था। कई दिनों से सपने भी अंगारों-से आ रहे थे। उसकी देह की हर नाड़ी ने आज उसे जाने से रोका, मना किया पर राधेश्याम नहीं रुका।

"तुम औरतों की भी कोई बात में बात है?" मज़ाक में कहकर वह चला गया।

शाम को काम कर रही चिरौंजी के मुँह से अपने-आप एक गीत फूटा, जिसे उसके होंठ गुनगुनाने लगे -

"एक फ़लक में ढह जाएगी
तेरी काया की हवेली
मत कर मोसे राजा रोज़ लड़ाई
मत कर मोसे राजा रोज़ लड़ाई
एक फ़लक में सींग बता जाएगी
तेरी काया की हवेली"

लेकिन उसे क्या पता था, उसका यह गीत असली काले साए का मोमजामा पहनकर उसकी हँसी-खुशी, यौवन-शृंगार, सावन-भादो, पायल की छम-छम, मेहँदी की महक, चूड़ियों की खन-खन, बारिश की रिमझिम, फूलों की सुगंध, सब छीन ले जाएगा।

चिरौंजी को जैसे ही अपने पति की मृत्यु की खबर मिली, वह दीवट पर रखे दीये-सी बुझ गई। सामने राधेश्याम की लाश देख चिरौंजी जड़ हो गई।

वह उसके हाथ-पैर टटोल-टटोलकर देखने लगी, उसकी छाती पर हाथ फेरने लगी - "अरे क्या हुआ इनको? उठो...उठो!"

जैसे ही चिरौंजी ने राधेश्याम के सिर की तरफ़ हाथ बढ़ाया, उसके कानों से एक आवाज़ टकराई - "और तो सब सही है, पर ट्रक का पहिया सिर के ऊपर होकर निकल गया। नहीं तो शायद बच जाता।"

यह सुनते ही चिरौंजी के हाथ काँप गए। वह बेसुध हो गई।

अचानक उसे राधेश्याम दिखाई दिया। वह बोला - "चिरौंजी तुमने मुझे कितनी बार जाने से रोका था। काश... मैं एक बार रुक गया होता। सचमुच कोई भी स्त्री बेवजह कोई बात नहीं कहती। काश... मैंने तुम्हारी बात मान ली होती। खैर... जो भी हुआ अब मैं जा रहा हूँ। अपना ख्याल रखना।"

राधेश्याम को जाता देख चिरौंजी की बेहोशी एकदम टूटी। वह चीख-चीखकर विलापने लगी - "मत जाओ, मत जाओ।"

उसके माथे का मिटा सिंदूर, पुछी बिंदी, नाक की मुड़ी बाली, हाथों की टूटी-फूटी चूड़ियाँ, होंठों की विरस ललाई कलप-कलपकर रो रही थी। खुले केशों में चिंघाड़ते, बिखरी पड़ी चिरौंजी का न जाने कितनी बार थूक गले में अटक गया और स्वर भर्रा गया।

उसके जीवन का यह बिखराव उसके दुख की गवाही दे रहा था।

"अब मेरे गुल्लो-गुल्लू का क्या होगा? मेरे शाम को आने दे, कहकर इनको किसका डर दिखाऊँगी।"

हे राम जी! तूने यह क्या किया? मेरे मुकद्दर में भाटा दे मारा। अब क्या होगा? मेरे बच्चों को क्यों अनाथ कर दिया? हे राम! हे राम जी ..! वह छाती कूट-कूटकर बिलखने लगी।

राधेश्याम की मृत्यु के एक दिन बाद ही चिरौंजी को घर से बाहर निकाल दिया गया। वह रोई, घिघाई, पैरों में पड़कर गिड़गिड़ाई, उन दुष्टों को अपने बच्चों की दुहाई दी, पर वे नहीं पिघले। जैसे वह मुर्दों के आगे रहम की भीख माँग रही थी।

जो राधेश्याम के सामने रसीली बातें करते थे, उन्हीं खून के रिश्तेदारों ने उसे धक्का दिया।

चिरौंजी बोली - "मैं कहाँ जाऊँगी, अपने इन मासूम बच्चों को लेकर, इस घर के अलावा मेरा अब कौन-सा घर है, जहाँ मैं जाऊँ?"

"हमें नहीं पता, तू कहाँ जाएगी पर यहाँ नहीं रहेगी, यह तय है और कभी भी अपना यह कलमुहा मुँह वापस लेकर इस घर की चौखट पर मत आना।

पहाड़ भी पिघलकर पानी बन बहने लग जाए, चिरौंजी उनके सामने इतना रोई-पीटी, पर वे लोग रत्तीभर भी न गले, न पसीजे। बस पाषाण बने खड़े रहे।

आखिर चिरौंजी अपने दोनों बच्चों को लेकर पीहर आ गई। लेकिन पीहर में भी उसका कितने दिन रैन-बसेरा रहता।

चिरौंजी को दुखों की आँच पर जलता देख, उसके माँ-बापू के हृदय में घुन लग गया। वह घुन उन्हें भीतर-ही-भीतर खाने लगा। कई बार चिरौंजी की माँ उससे कहती -

"चिट्ठियाँ होए, तो बाँच लऊँ
मेरी लाडो
मोसे कर्म न बाँचे जाएँ,
कुँआ होए, तो जाए पाट लऊँ
मेरी लाडो
मोसे समुंदर न पाटे जाए"

और वे एक दिन अपनी बेटी की सोच-फ़िकर में इस दुनिया से विदा हो गई। उनकी मृत्यु के पश्चात् चिरौंजी के पिता खुद असहाय हो गए। वे चाहकर भी अपनी बेटी के दुखों के बादल छट नहीं पाए। अब चिरौंजी के लिए पीहर में भी भरे कुएँ रीते हो गए।

भैया-भाभियों के रोज़-रोज़ शूल से चुभने वाले बोलों ने उसका जीना दुर्भर कर दिया।

"हम क्या करें, तेरा आदमी मर गया, तो हमारे ऊपर एहसान है क्या?"

"तेरे बुरे कर्म, तू भुगत। यहाँ हमारी छाती पर क्यों शैल बनकर बैठी है? हमारे प्राण क्यों खा रही है?"

"हमारे लेखे तू अब स्याह कर, चाहे सफ़ेद कर, अब हमें बक्श दे और जा यहाँ से! हमें तुझसे कोई मतलब नहीं।"

चिरौंजी इतनी पढ़ी-लिखी नहीं थी कि कहीं जाकर नौकरी कर सके, इसलिए वह माँ के जाने के बाद पीहर में रोज़ मज़दूरी करके अपना और अपने बच्चों का खर्चा चलाने लगी और घर का सारा काम भी निपटाती। उसके बदले सिर्फ़ उसके सिर पर कंकरीट की छत थी, जिसके नीचे वह अपने दोनों बच्चों को दुलार से सुला देती थी।

लेकिन चिरौंजी को अब वह छत भी मजबूरी में छोड़नी पड़ी। उसकी वजह से उसके पिता को भी चार कड़वे बोल सुनने पड़ते थे। कई बार वह चिरौंजी के ससुराल में गए भी थे, लेकिन उन लोगों ने उनकी एक नहीं सुनी और उन्हें वहाँ से भगा दिया।

आखिर एक दिन चिरौंजी अपने बापू से बोली - "बापू मुझे कुछ तो फ़ैसला लेना ही पड़ेगा। मैं यहाँ ऐसे कब तक रहूँगी? अपने हक के लिए मैं अब ससुराल जाऊँगी।"

"बापू मोहे दीजो अनुमति
डोली इस आँगन से सजी
अर्थी पर उसी आँगन से जाएगी
निभाऊँगी अब यह रीत मैं भी
परण तेरा निभाऊँगी।
अब मैं उसी घर जाऊँगी"

इतना कहकर वह अपने बापू के सीने से लिपटकर खूब रोई।

कई साल बाद वह अपने दोनों बच्चों की ऊँगलियाँ थामे पीहर से ससुराल के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। आए भी क्यों न भला? वह भी तो इस घर की बहू थी। इस घर के एक-एक कंकड़-पत्थर पर उसका भी उतना ही अधिकार है, जितना कि औरों का है।

चिरौंजी को चौखट पर खड़ा देख उसकी सास की

त्योरियाँ चढ़ गईं और माथे पर बारह सिलवटें पड़ गईं। चिरौंजी की सास को तो वह पहले दिन से ही आँखों में खटकती थी। वह और बहुओं की तरह अपने पीछे गाड़ी भर दहेज जो नहीं लाई थी। वह तो राधेश्याम की ज़िद्द थी, नहीं तो वह कहाँ इन भिखारियों की लड़की को अपने घर की बहू बनाती। वह भन्नाते हुए बोली - "तू यहाँ कैसे आई? तेरी हिम्मत कैसे हुई मेरी चौखट पर पैर रखने की? मेरे बेटे को खा गई, उससे तुझे तसल्ली नहीं हुई, चल निकल यहाँ से और वापस मत आना। नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। हमें और इस घर को तेरी कोई ज़रूरत नहीं।"

चिरौंजी अपनी सास की कड़वी बातें सुनकर भी चुपचाप खड़ी रही। उसकी सास लगातार वैसे ही अशिष्ट शब्दों से उसे और उसके बच्चों को दुत्कारती रही। अधम, खरी-खोटी कहती रही। और न जाने क्या-क्या, पर चिरौंजी ने उन सब अक्खड़ बातों को भी कुछ कहे बिना ही पी लिया और कहा - "अपने बच्चों की खातिर मुझे घर में एक कोना दे दो, मुझे भीतर आने दो। मैं कहाँ जाऊँगी?"

अपने बच्चों को लेकर मिन्नतें करते हुए वह चौखट के भीतर आ गई। उसके भीतर आते ही उसकी सास ने उसे बाहर निकालने के लिए धक्का दिया और बोली - "मैंने मना किया था न तुझे? फिर तेरी हिम्मत कैसे हुई मेरे घर के भीतर घुसने की?"

चिरौंजी नीचे गिर गई। बच्चे अपनी माँ को नीचे गिरा देख, डरे हुए कबूतरों की तरह एक कोने में बिलखने लगे। जैसे ही चिरौंजी की सास किवाड़ बंद करने लगी, वैसे ही चिरौंजी एक घायल, अभागी, हारी और बौखलाई-सी बघेरन बन खड़ी हो गई। न जाने कहाँ से उसके निष्प्राण शरीर में दम आ गया। उसने एक हाथ से ही किवाड़ को बंद होने से रोक लिया।

फिर वह बघेरन-सी एक ही लंबी छलांग लगाकर सास के पास आकर खड़ी हो गई और वह चीखते हुए बोली - "आऊँगी, एक बार नहीं, हज़ार बार आऊँगी, कोई मुझे नहीं रोक सकता। यह घर मेरा भी है और मैं अब इसी घर में रहूँगी। नहीं तो कोर्ट-कचहरी, गाँव के पंच-सरपंच के पास, जहाँ जाना पड़ेगा, वहाँ जाऊँगी। अपना हक लेकर रहूँगी। मेरा पति मर गया, तो क्या इस घर पर मेरा अधिकार नहीं? उसे कोई नहीं छीन सकता। गुस्से में चिरौंजी की आँखें तेज़ दहकते अंगारों-सी हो गईं, जिनसे आँसुओं के रूप में गर्म खौलता हुआ लावा गिरने लगा। उसकी सास उसका यह भयानक रूप देखकर डर गई और दूसरा कोर्ट-कचहरी, पंच-सरपंच का डर। वह मैदान में हारे हुए खिलाड़ी की तरह चार कदम पीछे हटी और बोली - "मेरे ही घर में आकर मुझ ही को धमकी दे रही है।"

चिरौंजी बोली - "मैं धमकी नहीं दे रही, मैं अपना हक माँग रही हूँ। आखिर मैं भी तो इस घर की बहू हूँ।"

सास उसे झटककर बोली - "होगी तू बहू तब, जब मेरा बेटा ज़िंदा था। वह मर गया, मेरे लिए तू भी उसी दिन मर गई।"

चिरौंजी गुस्से में हाँफ़ती हुई बोली - "लेकिन सच यह है कि मैं अभी मरी नहीं हूँ, ज़िंदा हूँ... ज़िंदा! और इस घर की बहू हूँ। मुझे यहाँ रहने से कोई नहीं रोक सकता।"

"वह सास के सामने ही एक निर्भीक बघेरन-सी चाल में भीतर घर में चली गई। उसके दोनों बच्चे हिम्मती बघेरन के पीछे-पीछे चुपचाप शावकों की भाँति धीमी चाल में चले गए। सास बस उन्हें चिढ़ी-सी ताकती रही। चिरौंजी अपने कमरे में इतने सालों बाद घुसते ही चारों तरफ़ देखने लगी। उसकी आँखों से अंगारे छलकने लगे। उसका कमरा भी मानो उसे देखकर रोने लगा। वह गवाह था उन दिनों और रातों का, जो चिरौंजी और राधेश्याम ने उसमें बिताए थे। वह इन दोनों का सबसे बड़ा हमराज़ था। उसकी अलमारी में लिपटी पड़ी वे साड़ियाँ भी सिसक रही थीं, जिन्हें राधेश्याम कितने प्यार से लेकर आया था। एक कोने में शृंगार का सामान, जो उसकी खूबसूरती में चार चाँद लगा देता था। वह भी बेदम-सा पड़ा था।

चिरौंजी आज एक फटी-पुरानी साड़ी में थी। वह भी घुटनों तक चढ़ी हुई थी। एक दिन था जब वह एड़ी से नीचे साड़ी बाँधती थी। उसका बदन गेहूँ के लोथड़े जैसा गोरा, भूरा और नरम था। उसकी आँखें इतनी ही खूबसूरत थी, जितना कि एक नीला समंदर, एक नीला आसमान और अपराजिता का नीला फूल।

आज वह एक पिंजर कंकाल थी और उसकी आँखें, दुखों के ताप से भीतर धँसी हुई थीं। उसके चेहरे की रंगत आँसुओं के खारे पानी में बह गई थी।

अचानक उसकी नज़र दीवार पर लगे राधेश्याम के फ़ोटो पर पड़ी, उसके नीचे खूंटी पर उसकी बुशर्ट टंगी थी। उसने काँपते हाथों से बुशर्ट को छुआ, जैसे कि वह अपने पति का ही स्पर्श कर रही थी। फिर वह राधेश्याम की उस बुशर्ट को छाती से लगाकर बुक्का फाड़ रोने लगी -

"ये पिया मिलन की प्रीत निराली
तू सोया मैं जागी।
तेरी बाँहों के पीछे चंदनियाँ-सी हँसती थीं
अब अंधियारा मेरा साथी"

फिर वह पल में ही मन-ही-मन राधेश्याम से गुस्सा होकर बोली - "देख लो अपने घरवालों को, जिनकी बड़ाई के तुम लंबे-लंबे राग अलापते थे। देखो तुम्हारे इन अच्छे-भले घरवालों ने मेरी और मेरे बच्चों की क्या हालत कर दी है?"

अचानक बाहर से आवाज़ आई। चिरौंजी की जेठानी बोली - "अरे अभागन, तू यहाँ आ तो गई है, पर मैं देखती हूँ, तू यहाँ कैसे टिकती है? हमें कोर्ट-कचहरी का डर दिखाती है।"

जेठानी भी समझ गई थी, अब ज़मीन-जायदाद का आधा हिस्सा हो जाएगा, इसलिए वह भी पुरज़ोर लगा रही थी, ताकि चिरौंजी कैसे भी करके इस घर में नहीं रहे।

चिरौंजी कोर्ट-कचहरी, पंच-सरपंच का भय दिखाकर अपने कमरे में तो आ गई थी। लेकिन वे लोग उसे खाने-पीने से लेकर घर की किसी भी चीज़ को हाथ नहीं लगाने दे रहे थे, ताकि वह यहाँ से चुपचाप चली जाए।

चिरौंजी ने अपने उसी कमरे में एक चूल्हा बना लिया और पीहर में मज़दूरी करके जो पैसे कमाए थे, उनसे थोड़े दिन तो उसने बच्चों का भरण-पोषण कर दिया। लेकिन पैसे खत्म होने पर उसके बच्चे भूख से बिलखने लगे।

उससे अपने बिलखते बच्चे देखे नहीं गए और उसने अब यहाँ भी मज़दूरी करना शुरू कर दिया। जोकि उसके ससुराल की मान-मर्यादा के खिलाफ़ था। वह जब मज़दूरी कर अपने बच्चों का लालन-पालन करने लगी, तब घर में बातें बननी शुरू हो गईं।

"ओ ...हो! बाबू जी, क्या कहूँ इस चिरौंजी ने तो हमारी भरे बाज़ार, सरे चौराहे नाक कटवा दी है। मुझसे लोग कह रहे थे - ''देख तेरे छोटे भाई की पत्नी कैसे मज़दूरी करती हुई घूम रही है।'' हमारे घर की तो कोई इज़्ज़त ही न छोड़ी इसने, सब माटी में मिला दिया।"

रात को इस बात को लेकर सभी घरवालों ने मिलकर एक सभा बैठा दी और उसमें मुजरिम के रूप में चिरौंजी को बुलाया और कहा - "चिरौंजी तुम मज़दूरी करती-फिरती हो, इससे हमारे घर की इज़्ज़त डूब रही है, लोग न जाने क्या-क्या बातें बना रहे हैं। सारा समाज हम पर थूक रहा है। चिरौंजी तुम हमें ज़िल्लत भरी मौत मार रही हो। तुम यहाँ से कहीं और चली जाओ।"

चिरौंजी व्यंगात्मक ढंग से बोली -

"आपने एक बात तो सुनी ही होगी।
श्याम किसी को मारत नाही
नाहैं पापी श्याम
अपने आप मर जाओगे
कर-कर खोटे काम"

यह बात सुनते ही मानो सभी के होश उड़ गए। फिर कोई कुछ नहीं बोला। चिरौंजी सब जानती थी। ये लोग सिर्फ़ उसे इस घर से निकालना चाहते हैं। इसलिए वह और कुछ बोले बिना ही इस सभा से गमन कर गई। चिरौंजी ने उनकी बात नहीं मानी और रोज़ मज़दूरी करती रही। आखिर उन लोगों का यह दाव चला नहीं।

क्रुद्ध हुए बैठे चिरौंजी के ससुराल वालों को समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। कुछ ज़्यादा कहेंगे, तो वह कोर्ट-कचहरी चली जाएगी, अब यह पहले वाली चिरौंजी नहीं रही, जो आसानी से चली जाएगी। कुछ ऐसा करना होगा - "रोजड़ा भाग जाए और खेती को कोई नुकसान न हो।"

उन्होंने मिलकर रात को फिर सभा बैठा दी। वही बात कही - "तुम जो मज़दूरी कर रही हो, उसकी वजह से हमारी बहुत जग-हँसाई हो रही है। ऐसा करो तुम यहाँ से कहीं और चली जाओ, हम तुम्हें महीने का तीन हज़ार रुपया पहुँचा दिया करेंगे।"

चिरौंजी इस घर से एक बार जाने का मतलब भी जानती

थी, इसलिए उसे जाना तो था ही नहीं।

वह बोली - "आप मुझे मेरे सिर्फ़ एक सवाल का जबाव दीजिए, मैं यहाँ से अभी चली जाऊँगी।"

यह सुनते ही सबके मन में जीत का डंका बजा।

"बोलो, क्या सवाल है?" जेठ ने तुनककर पूछा।

"जो लोग भरे बाज़ार और सरे चौराहे मेरी मज़दूरी करने की बात कहकर आपकी बेइज़्ज़ती कर रहे हैं, क्या आपने उनसे एक बार भी यह बोला कि हम उसे खाने-पीने से लेकर घर की किसी भी चीज़ को हाथ नहीं लगाने दे रहे हैं। अब बताओ जब बेचारी को हम खाने-पीने को नहीं देंगे, तब वह मज़दूरी नहीं करेगी, तो क्या करेगी? कैसे अपने दिन काटेगी? ऐसे कैसे अपने बच्चों को मरने देगी?"

यह बात सुनते ही सबके मन में बज रहा जीत का डंका टूट गया और सन्नाटे ने उस सभा को घेर लिया।

...और रही मेरी मज़दूरी करने की बात, जिससे तुम्हारी मान-मर्यादा भंग होती है, तो मेरे बच्चों को शिक्षा, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने को दीजिए मैं एक दिन मज़दूरी करने नहीं जाऊँगी। आप ऐसा नहीं करेंगे, तो मजबूरन मुझे मज़दूरी करनी पड़ेगी। क्या उस दिन आपकी इज़्ज़त की धज्जियाँ नहीं उड़ी, जिस दिन मेरे पति के जाते ही, आप लोगों ने हमें लताड़कर यहाँ से भगा दिया था। खराब खाने की तरह फेंक दिया।

कहते-कहते उस दिन की बात याद कर चिरौंजी की आँखें उसी बघेरन-सी हो गई, जिसका तेज उस सभा में बैठे लोगों को भस्म कर देने को तैयार हो गया। एक भयंकर तूफ़ान के बाद बिखरा टूटा वह वक्त उसकी आँखों में तैर गया।

"जब मैं अपने बच्चों को लेकर आप लोगों के पैरों में गिड़गिड़ा रही थी, तब नहीं हुई इस घर की बेइज़्ज़ती?" यह सुनते ही सब लोगों को साँप सूँघ गया।

चिरौंजी अपने उबलते हुए आँसू पोंछती हुई बोली - "या तो आप मेरे बच्चों को शिक्षा और खाना-पीना दीजिए, नहीं तो मुझे अपने बच्चों के भविष्य की खातिर मज़दूरी करनी पड़ेगी और सब यह सोच रहे हैं कि मैं यह घर छोड़ दूँ, तो मैं ऐसा कतई नहीं करूँगी। जितना घर तुम्हारा है, उतना ही घर मेरा है। कान खोलकर सुन लीजिए। मैं यही रहूँगी, यही! अब मैं पहले जैसी चिरौंजी नहीं हूँ, आपके दिए दुख-दर्द ने मुझे एक बघेरन बनने पर मजबूर कर दिया है। माना मेरा बीता कल आज जैसा काँटों भरा नहीं था, लेकिन आज जैसा है, मेरा भविष्य वैसा नहीं होगा। मेरा और मेरे बच्चों का भविष्य अब उज्ज्वल होगा।"

फिर वह उसी बघेरन जैसी साहसी चाल से सभा से चली गई। उस सभा में बैठे सभी लोग आज इस बघेरन के सामने हार चुके थे।

taravatisaini.neeraj@gmail.com

कहानीकार

डॉ. जगदीश पन्त 'कुमुद'
उत्तराखंड, भारत

आई ऑन डिजिटल ज़ोन के गेट नम्बर 2 के बाहर बड़ी संख्या में लोग एकत्र थे। लोहे का भारी-भरकम गेट बंद था, लेकिन हर कोई जल्दी-से-जल्दी इस गेट के पास पहुँचना चाह रहा था। इसी के चलते धक्का-मुक्की की स्थिति बनने लगी थी, ऐसा नहीं था कि वहाँ पर किसी राजनैतिक दल द्वारा चुनावी लाभ के लिए मुफ़्त में कोई सामान बाँटा जा रहा हो या किसी सेलिब्रिटी से मिलने के लिए भीड़ बेताब हो रही हो, जैसा कि अधिकांश स्थितियों में देखने को मिलता है। यहाँ अनेक स्थानों से आई.आई.टी. की प्रवेश-परीक्षा देने पहुँचे भावी इंजीनियर्स और उनके साथ अपने कर्तव्य का बखूबी निर्वहण करते उनके पालकों की भीड़ थी। सभी को गेट पर चिपकी हुई लिस्ट में अपना रूम व सीट नम्बर देखने की जल्दी थी। अपने निर्धारित समय पर गेट खुला, तो प्रवेशार्थियों की भीड़ अंदर प्रवेश करने लगी, बार-बार मना करने के बावजूद कई अभिभावक बच्चे के साथ-साथ गेट तक जा रहे थे, जिससे अनावश्यक व्यवधान उत्पन्न हो रहा था। गेटमैन की बार-बार अपील करने का भी जब कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब वह झल्लाकर बोला - ''अभी तो अपने बेटों के लिए सहारा

बन रहे हो, जब ये ही तुम्हें लात मारेंगे, तब सब समझ में आ जाएगा।" गेटमैन की इस बात का कुछ असर दिखाई दिया। वैसे भी इस ढंग से कही गयी बात का असर लोगों के दिमाग पर जल्दी होते देखा गया है। कुछ लोग बड़बड़ाते हुए, तो कुछ भुनभुनाते हुए वहाँ से किनारे हो गए। अब बच्चे आसानी से परीक्षा-केन्द्र में प्रवेश कर रहे थे। समय-सीमा पूरी होने पर परीक्षा समाप्त होने तक के लिए गेट को बंद कर दिया गया।

सड़क की दूसरी ओर एक कोने में चाय का ठेलीवाला था, जो अब पानी गर्म करने लगा था। थोड़ा-सा आगे एक व्यक्ति मौसंबी के जूस की रेड़ी लगाये था, वहीं दीवार के पास एक ने चटाई बिछाकर उसमें पान-मसाला, गुटखा, सिगरेट आदि सजा रखे थे, ये सभी मौसमी दूकानदार थे। परीक्षार्थियों और उनके अभिभावकों को भविष्य की चिंता थी, तो इन दूकानदारों का वर्तमान भी इनसे अलग नहीं था।

मैं भी खुद को भीड़ से अलग करता हुआ सड़क की दूसरी ओर एक ऐसी चहारदीवारी पर जा बैठा, जिसकी ईंटें उससे बेवफ़ाई कर गई थीं, उनके खिसकने से दीवार का कद घट गया था, हालाँकि इससे मुझे तो सुविधा हुई, लेकिन ईंटों का उद्देश्य सुविधा देना तो नहीं रहा होगा। खैर मैं तसल्ली के साथ दीवार पर बैठ गया और टाइम पास करने के लिए युग के अनुरूप मैंने जेब से मोबाइल निकाला और अंतर्जाल की आभासी दुनिया की सैर करने लगा। यह सोशल मीडिया भी गज़ब की चीज़ है, एकांत में कोलाहल उत्पन्न कर देती है और भीड़ में एकांत। कुछ देर बाद जब मैं इस आभासी दुनिया से बाहर आया, तब देखा कि मेरी बायीं ओर एक महिला शांत मुद्रा में बैठी है। उसने हल्के और हरे रंग का सलवार-कुर्ता पहना हुआ था, जिसपर हल्की-सी कढ़ाई भी की हुई थी। उसने अपने बालों को बड़े अच्छे ढंग से पीछे को क्लिप किया हुआ था, पैरों में मामूली-सी चप्पलें थीं। दुबली-पतली काया की इस महिला की उम्र का अंदाज़ा लगाना थोड़ा मुश्किल था। उसकी रंगत सांवली थी, बड़ी-बड़ी आँखों के नीचे पड़े काले घेरे उम्र को अधिक दर्शाने का काम कर रहे थे, माँग में भरा हुआ सिन्दूर उसके सुहागन होने की गवाही दे रहा था। मैंने थोड़ा समय व्यतीत करने के लिए पूछ लिया - "कहाँ से आई हैं आप?"

"जी, बदरपुर से" उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"किसे टेस्ट दिलाने आई हैं?"

"जी बेटे को।"

"बदरपुर तो यहाँ से नज़दीक ही है।"

"जी दो स्टेशन आगे पड़ता है, यहाँ से। वहाँ से फिर ऑटो करके जाना होता है घर तक।"

"कब से रहते हैं आप लोग यहाँ?" मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा।

"वैसे तो हम लोग मूलतः बिहार से हैं, लेकिन लगभग 25 वर्षों से हम दिल्ली में रह रहे हैं। पहले हम लोग लाजपतनगर में किराये पर रहते थे, बाद में हमने बदरपुर के जैतपुर में एक प्लॉट लिया और वहीं मकान बनाकर रहने लगे" उसने काफ़ी सहजता से कहा।

"कैसा लगता है आपको दिल्ली में?" मैंने पूछा, तो थोड़ी देर वह सोचनीय मुद्रा में आ गयी, फिर बोली - "अच्छा-बुरा क्या कहें, जीवन-यापन और बच्चों का भविष्य जहाँ ठीक-ठाक रहे, वहीं अच्छा है। इनके पापा की मामूली-सी प्राइवेट नौकरी है, मैंने सिलाई का काम सीख रखा है, तो घर में ही लोगों के कपड़ों की सिलाई करने से थोड़े पैसे आ जाते हैं।"

"काफ़ी परेशानियाँ उठानी पड़ती होंगी आपको। बच्चे कितने हैं, आपके?"

"जी दो बच्चे हैं, बेटी लेडी हार्डिंग कॉलिज से एम.बी.बी.एस. की पढ़ाई कर रही है, बेटा 12वीं में है, साथ ही कोचिंग भी कर रहा है, फिट्जी से।"

इस उत्तर से मैं थोड़ा अचंभित हुआ, क्योंकि वेशभूषा और पहनावे से यह बिल्कुल नहीं लग रहा था कि इस परिवार के बच्चे ऐसे उच्च संस्थानों से भी सम्बन्ध रख सकते हैं। फिर सामान्य मानव वृत्ति भी यही है कि वह व्यक्ति के पहनावे आदि से ही उसके जीवन स्तर का आकलन कर लेता है और मैं भी इससे अछूता नहीं था। अपने भीतर चल रहे प्रश्नों के समाधान के लिए मैंने उससे पूछा -

"इतना खर्चा कैसे वहन कर लेते हैं, आप लोग?"

"सर, सब एडजस्ट करना पड़ता है, परेशानियों का सिलसिला तो अंतहीन है। हाँ, परेशानियों के कारण बदलते रहते हैं, हमें जो परेशानियाँ उठानी पड़ीं, मैं नहीं चाहती कि

बच्चे भी उनसे दो-चार हों। हमारे यहाँ बेटियों की पढ़ाई पर ध्यान नहीं दिया जाता। मैं भी आगे पढ़ना चाहती थी, लेकिन इंटर की परीक्षा दी ही थी कि घरवालों ने शादी करवा दी। अब बेटी बड़ी हुई, तो उसके पापा उसकी शादी की बात करने लगे। बेटी पढ़ने में अच्छी है, मैं बोली इसे पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा करना है। अगर ऐसे शादी ही करनी थी, तो दिल्ली में रहने की ज़रूरत क्या थी, हम वहीं गाँव में रहते। ऐसे ही हम दोनों में काफ़ी बहस हुई, लेकिन मैं नहीं मानी। मेडिकल की परीक्षा में लड़की की अच्छी रैंकिंग रही और उसे यहीं दिल्ली के लेडी हार्डिंग कॉलिज में सरकारी सीट से दाखिला मिल गया है। यहाँ मामूली-सी फ़ीस है। वह हम आराम से भर देते हैं। बेटे ने फिट्जी वालों का स्कॉलरशिप टेस्ट निकाल लिया था, तो उसे कोचिंग के साथ स्कॉलरशिप भी मिलता है। हमें बहुत ज़्यादा खर्च नहीं करना पड़ रहा है।"

हम काफ़ी देर से बातों में लगे थे, चाय की तलब भी अब लगने लगी थी। मैंने उससे कहा - "चलो थोड़ी चाय पीते हैं।"

वह उठी फिर न जाने क्या सोचकर बोली - "आप पीजिए।"

मैं उसके संकोच को समझते हुए चाय की ठेली पर गया और चाय के दो कप ले आया। हम दोनों चाय पीने लगे। वह अब काफ़ी सहज नज़र आ रही थी, मैंने बातों का सिलसिला बढ़ाते हुए कहा - "अब तो आपकी चिंता लगभग समाप्त हो रही है, बेटी डॉक्टर बनने जा रही है। बेटा भी इंजीनियर बन ही जाएगा।"

उसने मुस्कराते हुए कहा - "मैं बोली थी न, परेशानियाँ खत्म नहीं होती हैं। अब देखिए बेटे पर हमें विश्वास है कि आई.आई.टी. की प्रवेश-परीक्षा निकाल लेगा, लेकिन सरकार ने फ़ीस को बढ़ाकर एक साल के लिए दो लाख रुपये कर दिए हैं। बच्चा होशियार है, पर गरीब आदमी इतनी फ़ीस कहाँ से भरेगा। खैर मैंने तो सोच लिया है कि एजुकेशन लोन करा दूँगी। बेटी बोलती है बिना पी.जी. के कोई भविष्य नहीं है, पी.जी. में सीटें कम होती हैं, उसमें भी आरक्षण। हम राजपूत हैं, इसलिए बहुत मुश्किल है। हर तरफ़ आरक्षण ने सवर्णों के लिए कई रास्ते बंद कर दिए हैं। वहीं पद के हिसाब से काम भी नहीं हो पाता है। 80 नम्बर लाने वाले को एड्मिशन नहीं मिलता और 40 नम्बर वाला एडमिशन पा जाता है, लेकिन उसका दिमागी स्तर तो 40 नम्बर का ही हुआ सर। तभी तो ऑपरेशन में ऐसे डॉक्टर कभी कैंची तो कभी कोई और चीज़ अंदर छोड़ देते हैं। माना पी.जी. कर भी ली, तो फिर नौकरी और शादी की चिंता।"

"आरक्षण के चलते सामान्य वर्ग के लिए परेशानी तो है ही, लेकिन भूल तो किसी से भी हो जाती है। ज़रूरी नहीं कि वह आरक्षित वर्ग की ही गलती हो।" मैंने उसकी बात से कुछ सहमत होते हुए कहा।

"अच्छा एक बात बताओ, आपने बच्चों को इतने अच्छे से कैसे शिक्षा दिलाई?" मैंने उसके पारिवारिक जीवन को कुरेदते हुए पूछा।

"सर बच्चे इंग्लिश मीडियम में पढ़े हैं। हमने तो कक्षा 6 से 'ए बी सी डी' सीखे। हमने 'दो इकम दो' पढ़े और ये लोग 'टू वंजा टू' जानते हैं। मैंने इनकी किताब और टीचर का पढ़ाया हुआ समझ-समझकर इनको पढ़ाने की कोशिश की। कभी ट्यूशन नहीं लगाया। मैंने बच्चों को पूरा समय दिया। हमारे घर में टी.वी. है, लेकिन मैं कभी कोई सीरियल नहीं देखती, क्योंकि हम टी.वी. देखेंगे, तो बच्चों का मन भी करेगा, फिर उन्हें कैसे मना करेंगे। मकान में दो ही कमरे हैं। एक कमरा हमने दोनों बच्चों को दे दिया, ताकि चाहे कितनी ही देर तक पढ़ते रहें, कोई डिस्टर्ब न हो। अब तो पढ़ाई के लिए बहुत अधिक सुविधा हो गई है। हम लोग तो चार भाई-बहन एक ही लालटेन की चारों ओर बैठकर पढ़ाई करते थे।"

हमारी बातों का क्रम जारी था, तभी गेट में कुछ हलचल-सी हुई। शायद पेपर खत्म हो गया था। परीक्षार्थी बाहर आने लगे थे, उसकी नज़र अब गेट की ओर थी। फिर मेरी ओर देखकर बोली - "अब बेटा आता ही होगा। आपके साथ बातों में तो समय का पता ही नहीं चला।"

"मुझे भी आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई। हमारे पास अधिक समय होता, तो भी पता नहीं चलता" मैंने उससे सहमति जताते हुए कहा।

जाते हुए वह अचानक रुकी और बोली - "मैंने तो आपसे पूछा भी नहीं कि आप क्या करते हैं।"

कहानीकार हूँ...

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें थोड़ी और बड़ी-सी हो गयीं।

jpkumud@gmail.com

यह कड़ी अनवरत चलती रहे

श्रीमती रोचिका अरुण शर्मा
चेन्नई, भारत

सुबह के दस बजे और नाश्ता खाते ही नवविवाहिता रिया की सास ने कहा "शाम को पन्नालाल सेठिया भवन में दीपावली का कार्यक्रम है, जो प्रतिवर्ष दीपावली के एक हफ़्ते बाद होता है। साड़ी एवं गहने पहनकर तैयार हो जाना। वैसे तो मैं तुम्हें पहनावे के लिए कोई रोक-टोक नहीं करती, लेकिन यह अपने समाज का कार्यक्रम है। पूरे साल में एक ही बार दूर और पास के सभी रिश्तेदारों एवं मित्रों से मिलना होता है।" अब कहाँ बड़े शहरों में रोज़-रोज़ मिलना-मिलाना।

"जी मम्मी" कहकर रिया अलमारी में से अपने साड़ी-ब्लाउज़ निकालने लगी। पिछले पाँच माह पूर्व ब्याह कर आयी, रिया ने तह में रखी साड़ियों में से पहनने के लिए एक साड़ी निकाल ली और साथ में पहनने के लिए गहने भी निकाल लिये।

रोज़ घर में सलवार-कुर्ता और दुपट्टा पहनकर रहने वाली रिया शाम को साड़ी, गहने पहन पूरे भारतीय परिवेश की बहुरानी-सी दिख रही थी। हाथों में भरी-भरी चूड़ियाँ, पाँवों में पायल और बिछिया। उसके देवर नागेश ने उसे देखा, तो बोला "आज तो भैया आपको पहचान भी नहीं पाएगा, इतने गहनों और साड़ी से सज-धजकर जो जा रही हैं"

वह मुस्कुराकर अपने सास-ससुर के साथ ऑटो रिक्शा में बैठकर पन्नालाल सेठिया भवन को रवाना हो गयी।

वहाँ पहुँचकर उपस्थित सभी रिश्तेदारों से मिली, उनके पैर छुए और आशीर्वाद लिया।

कुछ ही समय में सांस्कृतिक कार्यक्रम आरम्भ हुआ।

भवन में एक स्टेज बना हुआ था और सामने बैठने के लिए सुन्दर कुर्सियाँ लगी हुई थीं। अक्सर यहाँ शादी-ब्याह एवं अन्य उत्सव आयोजित किये जाते थे। रिया व उसकी सास सबसे आगे की कतार में जाकर बैठ गयीं और कार्यक्रम का आनंद लेने लगीं।

अपनी ही जाति के बच्चे और युवा सभी सुन्दर पोशाकों में सजे-धजे हुए थे और एक से बढ़कर एक प्रस्तुतियाँ दे रहे थे। तालियाँ बजाते उसके हाथ और मुस्कुराते होठ उसके मन की खुशी को चेहरे पर परिलक्षित कर रहे थे। थोड़ी ही देर में रिया का पति हृदयेश भी वहाँ कार्यक्रम में आ पहुँचा। कॉलिज में पढ़ने वाले युवा लड़के-लड़कियों ने देशभक्ति के एक कार्यक्रम की प्रस्तुति दी, जिसमें, अंत में, एक सैनिक शहीद हो जाता है। इस प्रस्तुति का अंत देख भवन में उपस्थित सभी लोगों की आँखें भर आयीं।

रिया के मायके में भी कुछ करीबी रिश्तेदार फ़ौज में हैं। प्रस्तुति को देखकर उसका मन भर आया। कार्यक्रम में उपस्थित लोग प्रस्तुति देने वाले बच्चों के नाम लेकर कुछ पुरस्कारों की घोषणा कर रहे थे। ये पुरस्कार जैसे ग्यारह सौ, इक्कीस सौ, इक्यावन सौ, इस तरह से बोलियाँ लगा कर दिए जा रहे थे।

रिया भी अपने पति हृदयेश से बोली - "हम भी कुछ पुरस्कार राशि इन बच्चों के लिए घोषित करते हैं न, कितनी अच्छी प्रस्तुति दी है इन्होंने।"

हृदयेश ने भी उन बच्चों के नाम ग्यारह सौ रुपये की घोषणा मंच पर करवा दी।

समाज के उच्च पदों पर आसीन लोग हृदयेश की वाहवाही करने लगे ।

रिया, उसका पति एवं पूरा परिवार बहुत ही प्रसन्नचित्त हो घर लौटे।

रिया अपनी सास के साथ रिश्तेदारों के वैवाहिक एवं अन्य कार्यक्रमों में अक्सर आती-जाती थी।

विवाह पूर्व अपने मायके में भी तो वह अक्सर ऐसे कार्यक्रमों में जाती रही थी।

जीवन भर सामाजिक गतिविधियों से दूर रहकर पढ़ाई-लिखाई में व्यस्त रहे उसके पति अब रिया के साथ इन कार्यक्रमों में अक्सर नज़र आते। यदि ज़्यादा समय के लिए न आते, तो कार्यक्रम समाप्ति के समय उन्हें कार से लेने ज़रूर पहुँचते।

हृदयेश को देखते ही समाज के उच्च पदों पर आसीन लोग उसकी तारीफ़ों के पुल बाँधते नज़र आते।

"बहुत ही मेहनती है हृदयेश, तभी इतनी अच्छी कंपनी में ऊँचे ओहदे पर कार्यरत है। ईश्वर की कृपा से कमा भी खूब अच्छा रहा है। माता-पिता के तो दिन ही पलट गए हैं। जब बेटा इतना अच्छा कमा रहा है, तब अपने समाज के बच्चों के लिए भी तो कुछ करे। कुछ दान-चंदा ट्रस्ट में दे, ताकि समाज के गरीब बच्चों का उद्धार करने के काम आये।"

हृदयेश मुस्कुराकर कह देता - "जब समय आयेगा तब मैं स्वयं ही दे दूँगा।"

हृदयेश के माता-पिता का सीना भी गर्व से फूल जाता और अब उन्हें इन कार्यक्रमों में पहले से अधिक मान-सम्मान मिलने लगा था।

रिया को भी सभी नये-पुराने लोगों से मिलकर अच्छा लगता, क्योंकि वह तो मायके के भरे-पूरे परिवार से आयी थी, जहाँ अक्सर आने-जाने वाले लोगों का मज़मा ही लगा रहता था। लेकिन ससुराल में लोग घर पर कम ही आते, महानगरों की भागमभाग वाली ज़िंदगी और फ़्लैट सिस्टम, जिसमें बस खिड़कियों की ग्रिल के बीच से झाँको और कैदियों के समान बाहर देखो। कभी उड़ते पंछी देख मुस्कुरा देती, तो कभी हवाई जहाज़ की आवाज़ को सुन उसे आसमान में ढूँढने की कोशिश करती।

करीब तीन वर्ष इसी प्रकार बीत गए थे। हृदयेश और रिया के घर में एक नन्हे से मेहमान का आगमन भी हो गया था। रिया का ज़्यादा समय बच्चे की देखभाल में जाता और सामाजिक कार्यक्रमों में आना-जाना अब धीरे-धीरे कम होने लगा था। हृदयेश भी अपने काम-काज में व्यस्त ही रहता।

उसके सास-ससुर ने सामाजिक मेल-जोल जारी रखा और यही उनका मन लगाने का एकमात्र साधन था। महिलाएँ सज-धजकर बाहर भी तो आना-जाना चाहती हैं न! सारी ज़िंदगी बच्चों की परवरिश में लगी रही हृदयेश की माँ भी पहन-ओढ़कर अपने शौक पूरे कर लेती।

इस दीपावली समाज के उच्च अधिकारी गण हृदयेश से मिलने एक साथ उनके घर आ पहुँचे थे। रिया ने उनकी खूब आवभगत एवं खातिरदारी की। बातों ही बातों में एक अधिकारी जिन्हें वह आदरपूर्वक चाचा जी पुकारती थी, ने हृदयेश से कहा - "हृदयेश बेटे! खूब नोट छाप रहे हो, पर समाज में चंदा देने के नाम पर तुम्हारी अंटी ढीली नहीं होती।"

उनकी बात सुनकर हृदयेश ढीठ बनकर हँसता रहा। लेकिन उसने चंदा देने के लिए हामी नहीं भरी। रिया को यह सब बहुत शर्मिन्दगी भरा महसूस हो रहा था। वह हृदयेश से नज़रें मिलाने की कोशिश कर रही थी, ताकि उसे इशारे से कह सके कि दे दो न कुछ रुपये बच्चों की शिक्षा के नाम पर। लेकिन उसका प्रयास सफल न हुआ।

खैर, मेहमान मिल-जुलकर कुछ देर में विदा हुए। उनके जाने के बाद रिया ने ही हृदयेश से बात शुरू की "हृदयेश इतनी क्या कंजूसी, हमें ईश्वर ने खूब दिया है। कैसे तुम ढीठ बने मुस्कुराते रहे, पर रुपये देने के नाम पर टस-से-मस न हुए? जात-समाज के लोगों के सामने ऐसा व्यवहार अच्छा लगता है क्या? सब थू-थू करेंगे हम पर। समाज में इज़्ज़त बनाने के लिए जेब भी ढीली करनी पड़ती है। तुम्हें घर आये मेहमानों को खाली हाथ नहीं लौटाना चाहिए था।"

"सब समझता हूँ मैं, तुम मुझे ज़्यादा ज्ञान मत दो।" हृदयेश खीजकर बोला।

"खीज क्यों रहे हो हृदयेश? मैंने कुछ गलत तो नहीं बोला और नाही चाचाजी ने कुछ गलत कहा। समाज के बच्चों के उत्थान के लिए ही तो चंदा माँग रहे थे। वह भी कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती तो नहीं कर रहे थे तुम पर। यदि उच्च आय वर्ग मदद को आगे ना आये, तो गरीबों का भला कौन करेगा? तुम्हें उनके साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था। और कुछ नहीं तो भविष्य के लिए कुछ आश्वासन ही दे देते उन्हें।"

"तुम समझती नहीं इन लोगों को रिया, बहुत भोली हो। मैं भला उन्हें क्या आश्वासन दूँगा, वे स्वयं ही बहुत होशियार हैं और दुनिया भर में आश्वासन ही तो देते हैं बस। यह जो समाज के गरीबों के लिए चंदा जमा किया जाता है न, गरीबों तक पहुँचता नहीं। उच्च वर्ग ही मौज उड़ाता है सभी फंड्स की।"

"कैसी बातें करते हो हृदयेश तुम? इस चंदे की रसीद भी तो देते हैं ये लोग। फिर उच्च वर्ग तो इनसे मदद माँगने से रहा, चंदा तो गरीबों के ही काम आयेगा न?"

"जाने दो रिया, मैं तुमसे इस बारे में बहस नहीं करना चाहता।" हृदयेश ने रिया की बात काटते हुए कहा।

रिया भी अपना-सा मुँह लेकर रह गयी थी। लेकिन उसने

आज हृदयेश को अपनी नाराज़गी दिखायी थी कि हृदयेश ने उसकी बात भी नहीं रखी और उससे रुखा व्यवहार भी किया।

हृदयेश रिया की नाराज़गी से असहज महसूस कर रहा था। सदा हँसती-मुस्कुराती घर में चहकती रहने वाली चिड़िया मानो मौन धारण कर बैठ गयी थी। जैसे-तैसे हृदयेश ने चुप्पी धारण कर दो दिन तो काटे, लेकिन अब रविवार आ गया था और उसे दफ़्तर भी नहीं जाना था। पहाड़-सा दिन बगैर रिया से बात किए काटे भी तो कैसे? सो हृदयेश ने उसे बाहर ले जाने की योजना बनायी और बहाना लिया बेटे का।

"सुनो रिया हमारे बेटे को हम कई दिनों से खुले में बाहर नहीं लेकर गए हैं, आज हम उसे लेकर बगीचे में जाएँगे, तुम झटपट तैयार हो जाओ।"

रिया बच्चे को बाहर ले जाने के नाम से बहुत प्रसन्न हो गयी और स्वयं तैयार होकर उसने बेटे को भी तैयार कर लिया।

पार्क में दोनों चुपचाप साथ चल रहे थे, बेटे को हृदयेश ने गोद में लिया हुआ था और उसी ने चुप्पी तोड़ते हुए बात शुरू की।

"तुम जानती नहीं रिया, मैंने अपना बचपन बहुत तंगी में गुज़ारा है। पिताजी तो छोटी-सी नौकरी करते थे। एक बार छँटनी में उन्हें काम से निकाल दिया गया था। हम तीन भाई-बहन और कमाई का कोई साधन नहीं। स्कूल फ़ीस तो दूर की बात है, घर में खाने के भी लाले पड़ गए थे। चार वर्ष बगैर नौकरी के पिताजी के साथ हम सब पर दुखों के पहाड़ टूटे। घर में राशन-पानी की मुसीबत आ गयी थी। जो चाचाजी घर आये थे और समाज के उच्च पदों पर आसीन, जो लोग कार्यक्रमों में चमकती गाड़ियों में आते हैं और बड़ी-बड़ी घोषणाएँ करते है, वे सभी पिताजी के चचेरे-ममेरे भाई हैं। ये सभी शुरू से ही आर्थिक रूप से संपन्न रहे हैं। पिताजी के बचपन में ही उनके माता-पिता स्वर्ग सिधार गए थे। इसीलिए वे ज़्यादा पढ़-लिख नहीं पाये और छोटी-सी नौकरी कर रहे थे। तनख्वाह ज़्यादा नहीं थी, इसीलिए बचत भी कुछ खास नहीं थी।

ऐसे में ये रिश्तेदार ही हमारी आखिरी उम्मीद थे। पिताजी इन सबके पास नौकरी माँगने के लिए गए। हमारी पढ़ाई-लिखाई के लिए रुपये उधार भी माँगे। लेकिन हमें किसी से कोई मदद नहीं मिली। हारकर हमने सड़क किनारे सब्ज़ी की दुकान लगाई। पिताजी, माँ, मेरा छोटा भाई सब मिलकर वहाँ काम करते। मेरी बड़ी बहन घर संभालती और मैं पढ़ाई करता। बड़ी मुश्किल से घर खर्च चलने लगा था। हम सरकारी स्कूल में पढ़ने लगे थे। उसके बाद किसी पड़ोसी ने हमारी मदद की और बताया कि पास ही के एक विद्यालय में स्कॉलरशिप की योजना शुरू की गयी है और स्कूल वाले पढ़ाई में कुछ होशियार बच्चों को मुफ़्त शिक्षा मुहैय्या करवाएँगे। मेरी माँ मुझे वहाँ लेकर गयी, मुझे एक लिखित परीक्षा देनी पड़ी। उसमें मैं प्रथम आया और मुझे वहाँ स्कॉलरशिप से पढ़ाई करने का अवसर प्राप्त हुआ। जिस महान इन्सान ने स्कॉलरशिप के रुपये स्कूल वालों को दान में दिए थे, उसी की बदौलत मैं अच्छे विद्यालय में पढ़कर अच्छी नौकरी हासिल कर पाया हूँ।

जब हमारे बुरे दिन थे, तब समाज के ये लोग हमारे आस-पास भी नहीं फटकते थे और नाही हमें अपने पास फटकने देते थे। तब क्या शिक्षण फ़ंड में से कुछ मदद ये हमें नहीं कर सकते थे? क्यों हमें दर-दर भटकना पड़ा?

रिया हृदयेश के मन की भावना अब भली-भाँति समझ चुकी थी - "तुम ठीक कहते हो हृदयेश! दुनिया उगते सूर्य को नमन करती है। अब मैं तुमसे नाराज़ नहीं, इस बार ये लोग घर आएँगे और रुपयों की बात करेंगे, तो मैं ही इन्हें जाने के लिए कह दूँगी। हमें चंदा जहाँ देना होगा हम स्वयं वहाँ देंगे, इन्हें क्या हक है हमारे रुपयों पर नज़र रखने की?" कहते-कहते रिया ने अपने बेटे को गोद में ले लिया था।

अभी कुछ ही दिन बीते रिया के पिताजी का फ़ोन आया। बात-ही-बात में उन्होंने बताया कि तुम्हारे चाचा ससुर का फ़ोन आया था और वे कह रहे थे कि अपने बेटी-दामाद को समझाओ कि वे समाज में आया-जाया करें और शिक्षण फ़ंड में कुछ मदद करें।

उफ़! आप तक पहुँच गए वे? रिया का पारा चढ़ गया था।

"पापा क्या बताऊँ हाथ धोकर पीछे पड़े हैं हमारे ये लोग, आपने उन्हें क्या जवाब दिया पापा?"

"मैंने उन्हें खूब डाँटा और कहा कि यह मेरे बेटी-दामाद का निजी मामला है कि वे कहीं चंदा दें या ना दें। आपको मुझे इस बारे में फ़ोन नहीं करना चाहिए था। दूसरी बात यह कि आप किस शिक्षण फ़ंड की बात करते हैं? मुझे खूब अच्छी तरह से याद है कि हमारे ही समाज का एक फ़ौजी अफ़सर पायलट की ट्रेनिंग के लिए समाज से कुछ आर्थिक मदद लेना चाहता था, तो आपके संगी-साथियों ने यह कहकर इनकार कर दिया था कि "आप तो ठहरे फ़ौज में, न जाने कब गोली आर-पार हो जाए, ऐसे में आपके द्वारा लिया उधार कौन वापस चुकाएगा? कोई गारंटी देने वाला तो होना चाहिए आपके लिए। शर्म आनी चाहिए आपको एक तरफ़ आप समाज में गरीबों के मसीहा बनकर चंदा माँगते फिरते हैं और दूसरी तरफ़ इसी समाज के बच्चे जो फ़ौज में जाएँ उसे गोली लगने की बात उसके मुँह पर कह मदद से इनकार कर देते हैं।"

"वाह पापा ! आपने भी खूब कहा।" रिया ने फ़ोन पर ही अपने पापा की पीठ थपथपायी।

"फिर क्या बोले वे पापा?"

"मैंने उन्हें कुछ बोलने लायक छोड़ा ही नहीं।" रिया के पापा ने पूरे जोश में आकर कहा।

अब रिया के सामने सच्चाई उजागर हो गयी थी। हृदयेश से उसकी नाराज़गी पूरी तरह से खत्म हो गयी थी।

जब हृदयेश दफ़्तर से घर लौटा, रिया ने पापा से हुई बात उसे खूब ठहाके लगा-लगाकर बतायी ।

दोनों काफ़ी देर तक इसी विषय पर बात करके हँसते रहे।

अगले दिन हृदयेश बोला - "एक दिन छुट्टी लेकर अपने बचपन के विद्यालय जाता हूँ, जहाँ मैंने स्कॉलरशिप लेकर पढ़ाई की। वहाँ के प्रिंसिपल से मिलकर बात करता हूँ कि एक बच्चे की शिक्षा के लिए मैं वहाँ चंदा देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि गरीबों को शिक्षा-दान की यह कड़ी टूटे नहीं, अनवरत चलती रहे।"

रिया उसके लिए चाय का कप हाथ में लिए खड़ी गर्व से मुस्कुरा रही थी।

sgtarochika@gmail.com

स्वच्छंदता

श्री दयानन्द चेंगी
लेस्पेराँस-पितों, मॉरीशस

मीना और राजू की शादी में देश-विदेश से सगे-संबंधी भाग लेने आए थे। शादी बड़ी धूम-धाम और हर्षोल्लास से मनाई गई थी। सभी ने खूब मनोविनोद और मौज-मस्ती की थी। लोग खुशी से उछल रहे थे। उस दिन सालों बाद लोग एक-दूसरे से मिले थे। शादी का बंधन जन्मों-जन्मों का एक अटूट पवित्र रिश्ता होता है। ऐसा माना जाता है कि वर-वधू सात परिक्रमा करके, सात जन्मों तक साथ निभाने की कसमें खाते हैं। शादी के बाद पति-पत्नी अपने गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके जीवन की गाड़ी को एक साथ चलाना शुरू करते हैं। दोनों साथ मिलकर गृहस्थ आश्रम का भार उठाते हैं, तो परिवार में सुख-शांति बनी रहती है। लेकिन दुर्भाग्यवश किसी-किसी की गाड़ी बीच रास्ते में उन्हें धोखा दे जाती है। ज़िन्दगी का सफ़र साथ कट नहीं पाता है। पति-पत्नी बिछड़ जाते हैं। जीवन में निरुत्साह एवं निराशा का संचार हो जाता है।

मीना और राजू की शादी को कई साल बीत चुके थे, मगर मीना की गोद सूनी रही। वे संतान के सुख से वंचित रहे। पति-पत्नी के व्यवहार से लगता था कि वे दोनों एक-दूसरे को बहुत प्यार करते थे। खुश नज़र आते थे। मन की बात अब मन ही जाने! भगवान जाने! घर के बुज़ुर्ग आँख बंद करने से पहले अपनी गोद में अपने नन्हे-मुन्ने पोते-पोती को गोद में खिलाकर स्वर्गीय सुख का रसास्वादन करना चाहते थे। वे उत्सुक थे। उलटे-सीधे सवाल करने बैठ जाते थे। हर वक्त दिमाग चाटते रहते थे।

मीना और राजू के यहाँ किसी भी चीज़ की कमी नहीं थी। घर-आँगन, खान-पान, नौकर-चाकर, मोटर-ड्राइवर, हर

तरह की सुख-सुविधा और ऐश-ओ-आराम। क्या नहीं था, बस एक संतति के अतिरिक्त? ईश्वर ने चाहा, तो यह कमी भी एक दिन पूरी हो जाएगी। मीना को माँ-बाप के समान सास-ससुर मिले थे। मीना अपने सास-ससुर की आँखों की पुतली थी। वह घर की बहुरानी थी। सारा परिवार उसे चाहता था। सास-ससुर तो बहुरानी से, अपनी सगी बेटी से भी ज़्यादा प्यार जताते थे। मीना ने एक सीधा-सादा, संयुक्त, धार्मिक, शाकाहारी और अनुशासित परिवार में कदम रखा था। वहाँ हर काम संयम-नियम, अनुशासन और समय की पाबंदी के साथ किया जाता था। रोज़ सुबह-शाम पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन आदि होता था। एक कुलवधू का कर्त्तव्य बनता है कि वह अपने पति के कुल की हर रीति-रिवाज़, कुल-परंपरा और मान-मर्यादा को जीवन-पर्यंत अच्छी तरह से निभाए और पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाए। पर मीना इन सभी रीति-रिवाज़ों से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। धर्म-कर्म, रीति-रिवाज़ आदि किस वस्तु का नाम है, उसे कुछ भी पता नहीं था। पहले से ये सब कभी नहीं जाना था। उसके मायके में इनका इस तरह से निर्वाह नहीं होता था। उसके लिए सब कुछ नया था। ये सब उसके वश की बात नहीं थी। वह जानना भी नहीं चाहती थी। मीना पढ़ी-लिखी बहुत बड़े घर की बहु-बेटी थी। आसानी से सीख सकती थी। पर नहीं! शहर में जन्मी, पाश्चात्य परिवेश में पली हुई रईस माँ-बाप की सबसे छोटी संगमरमर की मोहनी मूरत थी। लाड़-प्यार ने उसे सिर पर चढ़ा रखा था। वह ज़िद्दी, घमंडी और मनमौजी थी। घूमना-फिरना और फ़ैशन के पीछे भागना किशोरावस्था से ही उसकी आदत थी। वह हमेशा आपे से बाहर रहती थी। मायके में उसके सामने माँ-बाप का कोई ज़ोर नहीं चलता था। पर ससुराल में उसका ज़ोर नहीं चलता था, इसीलिए वह दुखी थी।

मीना का परिवार एक सुसंपन्न खानदानी ज़मींदारी परिवार था। परिवार के लोग घमंडी स्वभाव के थे। गाँव वालों की नज़रों में वे लोग खलते थे। वर्षों पहले गाँव छोड़कर वे शहर आ गए थे। शहर आते ही उन्होंने अपना रंग-रूप बदल लिया था। शहरी बाबू, 'जेंटलमैन' हो गए थे। रीति-रिवाज़, वंश-परंपरा, सभ्यता-संस्कृति आदि गाँव में ही छोड़कर आए थे। शहर में ये सब निभाना अपना अपमान जैसा प्रतीत होता है। उन्होंने अपनी मातृभाषा से भी मुख मोड़ लिया था। कहीं शहर के लोग उन्हें गँवारू न समझ बैठे। वे टीम-टाम और चकाचौंध वाली दुनिया में जीने लगे थे। पैसा ही इनका भगवान था।

मीना के ससुराल और नैहर के बीच ज़मीन-आसमान का अंतर था। ससुराल उसके लिए एक पिंजरे से कम नहीं था। एक उड़ती चिड़िया को अचानक पिंजरे में बंद कर दिया गया था। यहाँ वह एक ही जगह इधर-से-उधर फुदकती थी। बाहर की दुनिया से कटकर रह गई थी। चहारदीवारी में छटपटाती थी। सब कुछ होते हुए भी एकदम सूनापन महसूस करती थी। वह एक अनजान-अनचाही ज़िन्दगी व्यतीत कर रही थी। ससुराल के रस्मो-रिवाज़ों को निभाना उसके लिए टेढ़ी खीर थी। वह तो ऊब गई थी यहाँ के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान और दिनचर्या से। अपनी शादी उसे बरबादी लगने लगी थी। बस दिन-रात इसी सोच में रहती थी कि कब इस काल-कोठरी से भाग निकलेगी।

एक दिन जब मीना अचानक बीमार पड़ गई थी, तब पूरे परिवार ने उसके इलाज के लिए एक 'क्लिनिक' में उसकी भर्ती की थी, जिससे कि उसे अच्छी-से-अच्छी स्वास्थ्य-सेवा प्राप्त हो सके। एक शल्य-चिकित्सा का प्रबंध किया गया था। ऑपरेशन सफल रहा। रोज़ सुबह-शाम लोग उसे देखने जाते थे। क्लिनिक से घर आई, तो घर पर भी उसकी खूब सेवा की गई। राजू ने अपना कर्त्तव्य पूरी तरह से निभाया था। मीना के अब माँ बनने की शुभ घड़ी आ गई थी। मीना और राजू की मन्नतें अब पूरी होंगी। सभी को खुशी हो रही थी। सबसे ज़्यादा खुशी बुज़ुर्गों को हो रही थी। जीते-जी अपने वारिस का मुख तो देख लेंगे। मीना के लिए अब दुनिया भर का सुख उसकी गोद में होगा। मुन्ना के आने से घर-आँगन में बहार-ही-बहार छा जाएगी। अब कोई उस पर उँगली नहीं उठाएगा।

मीना की माँ एक दिन उसे देखने आई। दो-तीन दिन बेटी के यहाँ ठहरकर माँ ने उसकी खूब सेवा की। एकाएक उसके मन में ख्याल आया कि क्यों न मीना को दो-तीन दिनों के लिए अपने यहाँ ले जाकर उसकी देखभाल की जाए। वायु-परिवर्तन भी हो जाएगा, मन भी बहल जाएगा और वह जल्दी स्वस्थ भी हो जाएगी। ससुराल के लोगों को आपत्ति नहीं हुई।

मीना के जाने की बात पक्की हो गई। जल्दी-जल्दी सभी प्रबंध हो गए। उसकी विदाई खुशी-खुशी की गई थी।

मीना के जाते ही घर-आँगन में सन्नाटा छा गया था। सबके होठों पर एक ही सवाल था कि 'मीना कब लौटेगी?' मीना के बिना घर सूना-सूना लगता था। उसका न होना, सबके लिए बेचैनी थी।

मीना के जाते ही 'कोरोना कोविड-19' जैसी महामारी के कारण देश भर में नाकाबंदी चालू कर दी गई थी। घर से निकलना बिल्कुल मना था। पूरी दुनिया 'कोविड-19' जैसी संक्रामक महामारी से ग्रस्त थी। जनता परेशानियाँ झेल रही थी। लाखों लोग स्वर्ग सिधार गए। पर मीना के लिए 'कोरोना' शुभ साबित हुआ। उसके मन की बात सार्थक हुई। उसकी तमन्ना अब पूरी होगी। मीना को ससुराल के कैद से मुक्त होने का सुनहरा मौका हाथ लग गया था। उसमें जीने की चाह जागी। 'कोरोना' ने उसका भला किया। 'कोरोना कोविडाय नमः' उसने कसम खाई कि अब वह उस कैद में फिर वापस नहीं लौटेगी। दुनिया चाहे इधर-से-उधर हो जाए, मगर वह वापस नहीं जाएगी। उसके अनुसार वहाँ का अनुशासन, रीति-रिवाज़, रस्में, परंपराएँ आदि बहुत ही कड़क हैं; सख्त हैं और असहनीय हैं। बड़ी मुश्किल से उसने जान छुड़ाई है।

मायके की पुरानी आदतें, जो वर्षों से ससुराल में दबकर रह गई थीं, फिर से उजागर हो उठी थीं। वह स्वभाव से विवश थी। वह फिर से अपनी पहले जैसी हरकतों पर उतर आई थी। अब न कोई पाबंदी, न कोई रोक-टोक, न आगे-पीछे कोई पहरा और न कोई अनुशासन। वह एकदम स्वतंत्र थी। मीना बहुत ही खुश नज़र आ रही थी। जैसे अब खुले आसमान में उड़ने लगी। वह अपनी पिछली ज़िन्दगी में फिर से वापस लौट आई। जीने की राह मखमली हो गई।

नाकाबंदी हटा लिए जाने के बाद, राजू जब मीना को घर वापस लाने के लिए गया, तब उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मीना ने घर वापस लौटने से साफ़ मना कर दिया। ससुराल की यादें दिमाग में अभी ताज़ा थीं। पति भी सिर्फ़ नाम का पति रह गया था। हो सकता है वह एक अच्छा इन्सान है। एक अच्छा पुत्र है। माँ-बाप का आज्ञाकारी है। मगर वह अपने माँ-बाप और परिवार का सुनता है। मीना ने उसे पल्लू से बाँधने की बहुत कोशिश की, मगर असफल रही। इसी पर मीना खीजती थी, कुछ बोलना चाहती थी, पर मन की बात लबों तक आते-आते मन ही में अटककर रह जाती थी। वह मन-ही-मन पति को कोसती रहती थी। यह कुण्ठा एक सुप्त ज्वाला बनकर रह गई थी, जो विस्फ़ोट होने की चरम सीमा पर आ गई थी। उसने न लौटने की ज़िद्द ठान ली थी। राजू का चेहरा उतर गया। जब हँसने-गाने का दिन आया, तब बाग ही उजड़ गया। खिलती बगिया फिर मुरझा गई। बेचारा निराश होकर सिर खपाते-खपाते अकेला घर लौटा था।

राजू को अकेला पाकर उसके माता-पिता हैरानी में पड़ गए। राजू सारा किस्सा सुनाकर अपने कमरे के अंदर चला गया। वह सोने का प्रयत्न कर रहा था, मगर नींद कहाँ से आती। पलंग पर इधर-से-उधर करवटें बदलता रहा। दिमाग में तरह-तरह की उलटी-सीधी बातें दौड़ने लगी थीं। "आखिर क्या बात हो गई, कुछ समझ में नहीं आता। क्यों लौटना नहीं चाहती?" राजू की माँ ने एक दिन मीना को 'मोबाइल' से फ़ोन किया। मीना ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने सबको बेचैन कर रखा था। सबको दुविधा में डाल रखा था। हर पल ध्यान उसी की ओर खिंचा चला जाता था। घर के बुज़ुर्ग एकदम उदास हो गए थे। पता नहीं अरमान पूरा हो या न हो। राम जाने!

एक दिन मीना अचानक अपनी माँ-बहन और अपने बहनोई के साथ एक बड़ी मोटर में आई और अपना सारा सामान बटोरने लगी।

राजू ने उससे पूछा - "तुम क्या कर रही हो?"

उसने तपाक से जवाब दिया - "मैं यहाँ नहीं रह सकती। यहाँ मेरा दम घुटता है। मेरी ज़िन्दगी यहाँ नर्क बनती जा रही है। इस नर्क से मैं छुटकारा पाना चाहती हूँ। तुम भी साथ चलो। हम दोनों मेरी माँ के यहाँ आराम से रहेंगे। वहाँ भी किसी चीज़ की कमी नहीं है। सब कुछ है। यहाँ के नियमों के साथ जीना मुश्किल है।"

मीना अपनी सफ़ाई में मुक्तकण्ठ बोलती गई। उसकी ज़ुबान कैंची की तरह चलने लगी थी। उसकी बातें काँटों की तरह दिल में चुभती थीं। राजू को कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

"आखिर क्या हो गया है इसे?" राजू ने उसे समझाने की लाख कोशिश की, मगर वह न मानी। राजू को दिन में तारे नज़र आने लगे थे। राजू का परिवार मीना को समझाते-समझाते थक गया।

"अपना बसा-बसाया घर छोड़कर मत जाओ! कुछ भी हो, आखिर एक विवाहित स्त्री के लिए उसके पति का घर ही उसका स्वर्ग होता है। गृहस्थी में दुख-सुख, मान-अपमान, खुशी-गम, आँसू आदि स्वाभाविक हैं। मगर अपना घर-द्वार नहीं छोड़ना चाहिए। समय के साथ सब कुछ ठीक हो जाता है।" इतना समझाने-बुझाने पर भी उसने एक भी नहीं सुनी, एक न मानी। उसकी आकृति में कठोरता झलक रही थी। मानो अब कच्चा खा जाएगी।

राजू उसके सामने बाँह पसारकर गिड़गिड़ाया – "अगर जाने-अनजाने में मुझसे कोई भूल हो गई हो, तो मैं हाथ जोड़कर तुमसे क्षमा की भीख माँगता हूँ। मान जाओ! मत जाओ! आखिर ऐसा कौन-सा गुनाह किया है, जिसकी इतनी बड़ी सज़ा दे रही हो? बोलो तो जानूँ!"

मीना ने सब कुछ अनसुना कर दिया। कुछ भी सुनना-समझना नहीं चाहती थी। पीठ दिखाकर चली गई। उसने तो पहले से ही यहाँ न रहने की बात मन में ठान ली थी। वह उस रंगीन दुनिया से सम्पर्क स्थापित कर चुकी थी, जहाँ से पीछे लौटना नामुमकिन था। मीना अपने रंग में रंगी रही। टस-से-मस नहीं हुई। अपनी ज़िद्द पर चट्टान की तरह अटल रही। तनिक भी ना पिघली।

किस चीज़ की कमी थी यहाँ, जो उसे नहीं मिली। उसकी सभी माँगें पूरी की जाती थीं। सब कुछ ठोकर मारकर आव देखा न ताव, सबका दिल तोड़कर उलटे पाँव नैहर में जा बैठी।

उसके रवैये के कारण घर में मातम छा गया। सभी की भूख मर गई। घर की इज़्ज़त मिट्टी में मिल गयी। शर्म से सिर झुक गया। सभी लोग असमंजस में पड़ गए। "क्या हो गया इस छोकरी को? वह अपना बसा-बसाया मंदिर तोड़-फोड़कर किस कारण चली गई? मीना को किस बात से खीज थी? किसी को नहीं पता!"

मीना एक ऐसे पति को बाणों की शय्या पर तड़पता छोड़ चली गयी, जो न शराबी है, न जुआरी है, न व्यभिचारी है, न कभी उस पर हाथ उठाया और नाही कभी ऊँचे स्वर में कुछ कहा हो। फिर ऐसे पति को मीना ने क्यों छोड़ा?

बहू को सास-ससुर और बुज़ुर्गों ने सिर का ताज माना था। उस पर बहुत ही नाज़ था। उसे किसी भी तरह की आँच आने नहीं देते थे। उसे सदैव हवा-पानी-धूप से बचाते रहे। आज उसी बहू ने पीड़ा दी। पति को यादों के मेले में अकेला छोड़ दिया। सास-ससुर और बुज़ुर्गों को ये मनहूस दिन देखने पड़ेंगे। कभी किसी ने सोचा न था।

शादी के बाद पहली बार मीना ने दो-तीन महीने से ज़्यादा ही मायके में गुज़ारे थे। वह इतनी फिसल क्यों गयी? हर बात का उलटा जवाब देने लगी थी। उसका रंग-रूप, रहन-सहन, वेश-भूषा पहले जैसा नहीं रहा। उसने पाश्चात्य सैलानियों के जैसा हुलिया बना रखा था। लगता था कि अल्हड़ नदी ने बाँध तोड़ दिया हो। खुलकर-जमकर जीने लगी थी। कहते हैं न - "जहाँ पड़े चरण, बनता वैसा आचरण।"

मीना ने बिन पतवार की नाव में ज़िन्दगी का सफ़र काटने की चाह में शादी का पवित्र रिश्ता तोड़ दिया था। भूल गई सभी नाते और साथ रहने की खायी गयी कसमें। शादी के बंधन से मुक्त हो गई। मीना के लिए शादी सिर्फ़ एक अग्नि फेरा है। दो जिस्मों का मिलन है।

मीना ने अपना बोरिया-बिस्तर बाँधा और हमेशा के लिए नैहर में जा बैठी। माँ-बाप कुछ नहीं बोल सकते थे। नैहर में मीना पूरी तरह से आज़ाद है। अपनी मर्ज़ी की रानी है। किसी की परवाह नहीं। जब चाहो, जहाँ चाहो खुलेआम विचरण करना। ऐश-मौज-मस्ती करना, यही उसकी असली ज़िन्दगी है। आखिर में वह यही चाहती थी - 'स्वच्छंदता।'

खैर एक शादी-शुदा जवान बेटी मायके में आकर पड़ी रहेगी, तो लोग तो कहेंगे ही ... किस-किसका मुँह बंद करेंगे? दुनिया इतनी छोटी हो गई है कि यह खबर "कोविड-19" महामारी की तरह पूरे विश्व में फैल गई। सभी लोग खबर लेने लगे...।

पहली और आखिरी चिट्ठी

वीणा सिन्हा
काठमांडू, नेपाल

घर का दरवाज़ा बंद था। शायद माँ सो रही थी। कुछ देर आवाज़ देने के बाद माँ ने दरवाज़ा खोला। माँ सुमित को देखकर कहने लगी - "अरे सुमित बेटा, तुम कब आए? मुझे तो पता ही नहीं चला। मैं कब सो गई...। कमबख्त बुढ़ापे में भी इतनी गहरी नींद आती है क्या?" कहते हुए अंदर बिस्तर पर जाकर बैठ जाती है और माँ गहरी साँसें लेने लगती है। कुछ देर शांत रहने के बाद सुमित को पास में रखी कुर्सी पर बैठने का इशारा करती है। सुमित के बैठते ही माँ कहने लगी - "जीना-मरना तो विधि का विधान है। यहाँ अमर होने के लिए कोई थोड़े आया है बेटा! मैं भी एक दिन मर जाऊँगी, किसी को पता भी नहीं चलेगा...।"

कुछ देर मौन रहने के बाद सुमित की ओर गौर से देखते हुए पुनः कहने लगी - "तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ। तुम मेरी बात मानोगे?"

'हाँ... हाँ कहो न माँ, क्या कहना चाहती हो?" - बड़ी देर से माँ की बात सुन रहे सुमित ने उन्हें आश्वस्त किया।

माँ कहने लगी - "देखो सुमित बेटा अगर मैं मर गई, तो यह खबर मेरे बेटे अमित को नहीं देना, वरना वह बहुत दुखी होगा। उसका दिल टूट जाएगा। वह जी नहीं पाएगा। सुमित बेटा मैं नहीं चाहती कि वह वापस घर लौटकर आए और उसे इस बात का दुख हो कि अब उसकी माँ उसका इंतज़ार नहीं कर रही है। बेटा वह बिल्कुल अकेला हो जाएगा।" कहते-कहते माँ का गला भर आया।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह पुनः कहने लगी - "जानते हो सुमित बेटा, पिता की मौत के बाद अमित मुझमें ही अपने पिता की छवि देखता था। उसे माता–पिता का प्यार मैं ही देती आ रही हूँ। ऐसे में उसे पता चलेगा कि माँ भी उसे इस दुनिया में अकेला छोड़कर चली गई, तो तुम्हीं बताओ कि उस पर क्या बीतेगा?" वह फूट-फूटकर रोने लगी।

सुमित ने उठकर सांत्वना देने के लिए माँ का हाथ पकड़ लिया। लेकिन माँ का हाथ तो बर्फ़ जैसा ठंडा था। सुमित का पूरा शरीर ही कंपकपा गया।

माँ आँचल से अपनी आँखें पोंछ रही थी। सुमित कहने लगा - "माँ मत रोइए, आप तो बिल्कुल स्वस्थ हैं। छुट्टी मिलते ही अमित आपसे मिलने ज़रूर आएगा।"

माँ कुछ नहीं बोली। थोड़ी देर तक सुमित माँ के पास यूँ ही बैठा रहा। उसके बाद घर वापस जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

पूरे रास्ते में सुमित के दिलो-दिमाग में माँ की कही बातें गूँजती रहीं। माँ आज इस तरह क्यों बात कर रही थी। बीमार जैसी तो दिख नहीं रही थी। शायद बुढ़ापे का असर हो, इसी कारण डर रही थी। वह सोचने लगा - "बुढ़ापा... अभी उसकी उम्र भी तो ज़्यादा नहीं हुई है। 55-56 से ज़्यादा की तो दिखती नहीं है। तो क्या माँ को अपनी मृत्यु का आभास हो रहा है!"

वह सप्ताह में दो-तीन दिन उससे ज़रूर मिलने आता था, लेकिन माँ कभी भी इस तरह की बातें नहीं करती थी। फिर क्यों आज?...

घर में पत्नी थी नहीं, मायके गई हुई थी। अतः खाना आदि उसे ही बनाना पड़ रहा था। खाना खाने के बाद कुछ इधर-उधर का काम करते हुए, जब सुमित बिस्तर पर सोने गया, तब पुनः माँ और अमित की बातें याद आईं।

अमित, सुमित का जिगरी दोस्त था। दोनों का बचपन और स्कूल-कॉलिज का जीवन साथ–साथ खेलते और पढ़ते बीता था। अमित अपने माता–पिता की एकलौती संतान था। जब वह पाँच साल का था, तब उसके पिता की मृत्यु हो गई थी। वे आर्मी में थे। उसके बाद तो अमित की ज़िम्मेदारी माँ ने अकेले ही उठायी। दूसरे विवाह के लिए अनेक प्रस्ताव आए। मायके और ससुराल दोनों ओर से दबाव भी आया, लेकिन माँ ने विवाह करने से इंकार कर दिया। अमित ने स्कूल और कॉलिज की पढ़ाई स्थानीय शहर में ही पूरी की, ताकि वह माँ की देखरेख कर सके। कॉलिज में अमित की जान-पहचान सुरभि से हुई। दोनों में खूब पटती थी। दोनों के स्वभाव और

रुचि भी समान ही थी। अभिनय, कला, साहित्य और पर्यटन उनके पसंदीदा विषय थे।

कॉलिज खत्म करने के बाद माँ की इच्छा थी कि अमित शहर में ही नौकरी करे और माँ-बेटे दोनों एक साथ रहें। अमित माँ के कहने के अनुसार एक बैंक में नौकरी करने लगा। माँ बहुत खुश थी। घर आने-जाने वाले सभी से अमित की बड़ाई करते नहीं थकती थी। लेकिन अमित घर में प्रायः चुपचाप ही रहता। माँ से बहुत कम बातें करता। माँ को लगता कि बेटा जवान हो गया है। बढ़िया नौकरी करने लगा है, तो अब उसकी शादी कर देनी चाहिए। उसने रिश्तेदारों तथा जान-पहचान वालों से अमित के ब्याह के बारे में भी चर्चा चलानी शुरू कर दी थी। एक दिन अमित से भी इस संबंध में चर्चा की - "बेटा मैं तुम्हारे विवाह के लिए लड़की ढूँढना शुरू कर दूँ क्या?"

अमित मौन रहा। उसकी कोई प्रतिक्रिया न देने पर माँ ने चुप रहना ही ठीक समझा।

एक दिन अमित सुमित को बुलाकर ऑफ़िस के कैंटीन में ले गया और चाय-पकौड़े मँगवाए। उसके बाद वह चुपचाप बैठा रहा, मानो कुछ कहना चाह रहा था, लेकिन तय नहीं कर पा रहा था कि कैसे और कहाँ से शुरुआत करे। उसको असमंजस में पड़ा देख सुमित ने ही बात करना शुरू किया - "क्या बात है अमित तुम उदास दिख रहे हो? कोई उलझन है, तो बेफ़िक्र कह डालो। मैं तो तुम्हारा जिगरी यार हूँ, मुझसे कैसी झिझक!"

सुमित की बातें सुनकर अमित का मुँह खुला और वह कहने लगा - "हाँ, बताने के लिए ही तो तुम्हें यहाँ बुलाया है।"

उसके बाद अमित कहने लगा - "सुमित तुम्हें पता है न सुरभि अभिनय के क्षेत्र में अपना करियर बनाने काठमांडू गई है। आज उसने फ़ोन किया था। वह बेहद खुश थी। कह रही थी कि उसके पास एक फ़िल्म में लीड रोल का प्रस्ताव आया है। उसने यह भी कहा कि मैं भी काठमांडू आ जाऊँ। मुझे भी उस फ़िल्म में एक रोल दिलाने के लिए निर्देशक से बात की है। लेकिन तुम्हें तो पता ही है कि मैं माँ के कारण यहाँ नौकरी कर रहा हूँ। वरना मुझे नौकरी-वौकरी करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। माँ के कारण मैं यह शहर छोड़कर जा नहीं पा रहा हूँ। इस छोटे से शहर में अभिनय का कोई स्कोप नहीं है। मुझे तो यहाँ रहने में ही घुटन महसूस होती है।"

अमित बोले जा रहा था - "मेरा करियर ही चौपट होता जा रहा है। मित्र तुम मेरे भाई जैसे हो...।" कहते-कहते अचानक वह चुप हो गया। कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा।

सुमित, अमित के मनोभाव को पढ़ने का प्रयास करने लगा कि वह आखिर उससे क्या चाहता है, लेकिन समझ नहीं सका। तब सुमित, अमित की ओर उन्मुख हुआ - "ठीक है भाई, तुम बताओ इस संबंध में मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ? अमित अत्यंत ही धीमे स्वर में कहने लगा - "दोस्त क्या तुम कुछ दिनों तक मेरी माँ की देखभाल कर सकते हो? मैं भी राजधानी काठमांडू में जाकर अपना भाग्य आज़माना चाहता हूँ।"

सुमित कुछ नहीं बोला, लेकिन जाने से पहले उसने इतना आश्वासन ज़रूर दिया - "ठीक है, अगर तुम जाना चाहते हो, तो जाओ। तुम्हारी माँ, मेरी माँ जैसी ही है। तुम्हारे न रहने पर उनका ख्याल रखने की कोशिश करूँगा।"

इतना सुनते ही, अमित सुमित का हाथ पकड़कर रुआँसा होते हुए कहने लगा - "भाई तुम्हारा यह एहसान आजीवन याद रखूँगा। मैं जल्दी ही माँ को भी अपने साथ ले जाऊँगा...।"

कुछ ही दिन बाद अमित ने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और माँ को भी काठमांडू जाने का अपना निर्णय सुना दिया। उसका निर्णय सुनकर माँ भौंचक्की-सी रह गई, लेकिन उसने कोई विरोध नहीं किया। अमित काठमांडू चला गया।

बेटे के जाने के बाद माँ को कभी किसी ने हँसते हुए नहीं देखा। वह हमेशा कामों में अपनी व्यस्तता दिखाने की कोशिश करती। अमित के जाने के बाद वह प्रायः माँ से मिलकर हाल-चाल पूछने जाता। सुमित को देखते ही माँ पूछती - "बेटा, अमित की कोई खबर आई है? सुमित ना में सिर हिला देता।" माँ अपने कामों में व्यस्त हो जाती।

दो महीने हो गए थे, अमित को काठमांडू गए हुए। एक दिन जब सुमित माँ से मिलने गया, तब माँ को बेहद खुश देखा। माँ भी सुमित को देखते ही, भागती हुई रसोईघर में गई और मिठाई से भरा प्लेट लेकर बैठक में आई। "लो खाओ

बेटा, मुँह मीठा करो! आज कुरियर से अमित की चिट्ठी आई है।" माँ ने ब्लाउज़ से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया।

सुमित लिफ़ाफ़े को उलट-पलट कर देखने लगा। अमित का ही भेजा लिफ़ाफ़ा था।

बेटा ज़रा पढ़कर सुनाओ न, माँ का आग्रह सुनकर सुमित ने लिफ़ाफ़े को फाड़कर, चिट्ठी को बाहर निकाला और पढ़कर माँ को सुनाने लगा। चिट्ठी माँ को संबोधित थी। लिखा था - "माँ, मैं ठीक हूँ। आशा है, तुम भी स्वस्थ हो। काम ढूँढने में लगा हूँ। मेरा संघर्ष जारी है। स्थायी रूप से काम मिलने के बाद मैं तुम्हें भी काठमांडू ले आऊँगा। आशा करता हूँ कि सुमित तुम्हारा ख्याल अच्छी तरह से रख रहा होगा। मैं शीघ्र आने की कोशिश करूँगा। माँ अपना ख्याल रखना। तुम्हारा बेटा, अमित!"

चिट्ठी पढ़ना समाप्त होते ही, माँ आँसू पोंछते हुए सुमित के हाथों से लिफ़ाफ़ा लेकर कमरे में चली गई। उसके बाद से जब भी सुमित मिलने जाता माँ से ज़रूर पूछता - "अमित की कोई चिट्ठी आई है? यह सुनकर माँ अमित की वही चिट्ठी उसके आगे बढ़ा देती।''

"अरे माँ यह तो...।"

"तुम पढ़ के सुनाओ न" - माँ के आग्रह को वह टाल नहीं पाता और वही चिट्ठी पढ़कर सुनाने लगता। माँ पूरी चिट्ठी सुनने के बाद उसे लेकर कमरे में चली जाती।

यह क्रम पिछले पाँच वर्षों से लगातार जारी था। अब तो चिट्ठी फटने की अवस्था में पहुँच गई थी। लेकिन माँ उस लिफ़ाफ़े को बड़ी जतन से संभालकर पढ़ाने के बाद रख लेती...।

इन्हीं सब बातों को याद कर-करके सुमित कब सो गया पता भी नहीं चला। सुबह उठने में उसे काफ़ी देर हो गई थी। जल्दी-जल्दी तैयार होकर वह ऑफ़िस भागा। दिनभर काम में व्यस्त रहने के बावजूद उसे माँ की याद आती रही। ऑफ़िस के बन्द होते ही वह चल पड़ा अमित के घर।

घर का दरवाज़ा बंद था। उसने आवाज़ लगाई, लेकिन माँ दरवाज़ा खोलने नहीं आई। उसने दरवाज़े को धक्का देने के लिए जैसे ही हाथ बढ़ाया वह खुल गया। घर में अजीब-सा सन्नाटा छाया हुआ था। माँ कहीं दिख नहीं रही थी। सुमित उनके कमरे में घुसा। माँ बिस्तर पर सोयी हुई थी। वह आवाज़ देने लगा - "माँ, माँ... कई बार आवाज़ देने पर भी जब माँ नहीं उठी और न ही कोई जवाब आया, तब उसे शक होने लगा। वह कमरे से बाहर निकल आया। घर से बाहर जाकर पड़ोसियों को बुला लाया।

सब ने माँ को उठने के लिए ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ दी, लेकिन माँ...। तभी एक पड़ोसी कहने लगा – "क्या मुर्दा भी जवाब देता है। यह तो कब की मर चुकी है। इनके बेटे को खबर कर देनी चाहिए।" अमित को खबर करने की बात सुनकर सुमित को माँ की कही आखिरी बात याद आने लगी...।

वह माँ के करीब जाकर बैठ गया। तभी उसकी नज़र माँ के हाथों पर पड़ी। मुट्ठी बंद थी। वे कोई कागज़ पकड़ी हुई थी। उसने माँ की बंद मुट्ठी को खोला - अरे यह तो वही चिट्ठी है, अमित की चिट्ठी! जो उसने पहली और आखिरी बार माँ के नाम लिखकर भेजी थी।

माँ का अंतिम संस्कार सुमित ने बड़े ही भारी मन से कर दिया और अस्थि-कलश अमित के घर में माँ के बिस्तर पर रखकर वापस आ गया।

समय बीतता गया, लेकिन न अमित आया और नाही उसकी कोई खबर ही आई।

लगभग छह महीने बाद अखबार में एक खबर छपी, जिसमें लिखा था 'कलाकार सुरभि अपनी नयी फ़िल्म के प्रमोशन के लिए गृह शहर आ रही है।' वह खबर पढ़ने के बाद सुमित ने सुरभि से मिलने का निर्णय लिया। यद्यपि उसे पता था कि कलाकार सुरभि से मिलना आसान नहीं होगा, लेकिन मिलना ज़रूरी भी था। जिस दिन कार्यक्रम था, सुमित ने ऑफ़िस से छुट्टी ले ली और निश्चित समय पर कार्यक्रम स्थल पर पहुँच गया। वैसे उसे विश्वास नहीं था कि सुरभि से मुलाकात हो पाएगी। काम और नाम मिलने के बाद पुराने दोस्तों को लोग कहाँ पहचानते हैं। फिर सोचने लगा - "प्रयास करने में हर्ज़ ही क्या है?"

भीतर प्रवेश के लिए टिकट की व्यवस्था थी। वह भी टिकट खरीद रहा था, तभी शोर मच गया कि सुरभि जी आ

गई हैं। वह भी शोर की ओर भागा और सुरभि को अपनी गाड़ी से उतरते देखा। सुमित सुरक्षा घेरे को तोड़ते हुए सुरभि के करीब पहुँच गया।

सुरभि उसको देखकर पहचान गई और मुस्कुराते हुए उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया। लेकिन सुमित ने बेरुखी से उसके हाथ को झटक दिया और एक स्वर में कहने लगा - "सुरभि, मैं तुमसे बात करना चाहता हूँ।"

"ठीक है, कार्यक्रम खत्म होने के बाद होटल में मिलते हैं। मेरियट होटल में आ जाना। मैं वहीं ठहरी हुई हूँ।" यह कहकर वह आगे बढ़ गई। कार्यक्रम खत्म होने से पहले ही सुमित हॉल से निकल गया और मेरियट होटल पहुँचकर सुरभि का इंतज़ार करने लगा। थोड़ी देर में सुरभि की गाड़ी भी आ पहुँची। होटल में रिसेप्शन पर इंतज़ार कर रहे सुमित को कमरे में बुलाया। कमरे में प्रवेश करते ही सुमित रूखे स्वर में सुरभि से पूछने लगा - "अमित कहाँ है?"

सुरभि को उसका यह व्यवहार देखकर आश्चर्य हुआ। लेकिन उसने अपने आप को संयमित रखते हुए सुमित को पीने के लिए ठंडा पानी दिया। सुमित पानी पीने के बाद कुछ शांत हुआ, तब सुरभि ने जो बताया उसे सुनकर वह सन्न रह गया। सुरभि बता रही थी कि अमित काठमांडू आने के बाद काम की खोज में बहुत परेशान रहता था। वह प्रायः कहता - "काम मिलते ही माँ को अपने पास बुला लूँगा। इसी बीच वह सड़क-दुर्घटना में बुरी तरह ज़ख्मी हो गया। लगभग दस दिनों तक उसे होश नहीं आया। जिस दिन होश आया वह कहने लगा - "देखो सुरभि मुझे कुछ हो गया, तो मेरी माँ को मत बताना। वह मेरा इंतज़ार कर रही है। अगर मैं मर गया तब भी मत बताना। वह बर्दाश्त नहीं कर पाएगी। मेरी माँ मुझे बहुत प्यार करती है। मैं नहीं चाहता कि उसे कुछ हो। जिस दिन अमित से मेरी बात हुई, ठीक उसी रात को उसकी मौत हो गई।"

सुरभि की बातें सुनकर सुमित को तो पहले विश्वास ही नहीं हुआ, लेकिन सुरभि ने अपने मोबाइल में अमित के अस्पताल में भर्ती और अंतिम संस्कार की तस्वीरें दिखाईं, तब उसे विश्वास करना ही पड़ा कि अमित अब इस दुनिया में नहीं रहा। सुमित ने अमित की माँ की मौत के बारे में सुरभि को जानकारी दी। बहुत देर तक सुरभि और सुमित एक-दूसरे का हाथ पकड़े रोते रहे।

सुमित होटल से निकलकर सीधे अमित के घर जा पहुँचा और माँ के अस्थि-कलश के सामने बैठकर फूट-फूटकर रोने लगा। जब मन हल्का हुआ, तब उसने निश्चय किया कि माँ की अस्थियों को अब नदी में प्रवाहित कर देना चाहिए। माँ के अस्थि-कलश का किसको इंतज़ार है? अमित का - यानि उस बेटे का, जो इस दुनिया से उससे पहले ही विदा ले चुका था...!

thepublicmonthly@yahoo.com

इत्तेफ़ाक़

श्री अशोक कुमार आशू
पूर्वी अफ़्रीका

अनीता को अब रंजीत के नाम की हिचकियाँ भी नहीं आती थीं, जिससे उन हिचकियों से उसे अहसास हो सके कि रंजीत आज भी उसे याद करता है। क्योंकि रंजीत अब अनीता को बिल्कुल भी पसंद नहीं करता था। दरअसल, वह अब अनीता से नफ़रत करता था। हाँ, यह अलग बात है कि एक समय में रंजीत अनीता को बहुत पसंद करता था। उस समय अनीता रंजीत के दिल के सबसे करीब थी। उसकी सबसे अच्छी दोस्त और सबसे अज़ीज़ थी। अनीता भी रंजीत की हर इच्छा, आदत और पसंद-नापसंद से परिचित थी।

उन दोनों का जीवन विशाल समुद्र जैसा ही रहा था। समुद्र की गहराइयों से बेपरवाह लहरों जैसा बचपन, जिसने अठखेलियाँ तो कीं, पर कभी किसी किनारे के बाँध को नहीं तोड़ा। दोनों का लहरों की तरह उद्दाम नवयौवन। जिस ओर ऋतुओं की हवाएँ चलती थीं, उन दोनों का मन विचलित हो, उसी ओर उड़ चलता था। उन दोनों के यौवन की लहरें हर पल मस्ती करती रहती थीं। लेकिन प्रकृति का यह शाश्वत

सत्य है कि लहरों के अनंत सागर में कोई किसी का मित्र नहीं होता है। अनीता और रंजीत ने हर लहर के संग कुछ पल जीए-मरे और अपनी कहानियों को पुनर्जन्म तक ले जाकर आगे बढ़ाया। लेकिन ज्वार-भाटे जैसा आगे के गृहस्थ जीवन को झेलना उनके लिए संभव नहीं हो पा रहा था। और रही-सही कसर नियति ने पूरी कर दी। हालात यहाँ तक हो गए कि ज्वार का इंतज़ार करते-करते भाटा भी थक गया और जैसे ही ज्वार ने लहरों से मिलन किया, भाटा अपने रास्ते से दूर निकल गया। कोई अनजान-सा पारखी जौहरी ज्वार को ले उड़ा। भाटा बीच समंदर में दूर तक जाता अठखेलियाँ करता और मस्त होकर ज्वार का इंतज़ार करता। उसे अभी भी गुमान था कि ज्वार अभी भी उसके संग है। अचानक भाटा को अनुभव हुआ कि वह किसी शांत जलाशय में नितांत अकेला विसर्जित हो गया है। चारों ओर शांत वातावरण, न लहरें, न पवन, न तूफ़ान, न सीप, न मोती, न जौहरी और न पारखी। बस था, तो केवल भाटा। अब उसे अपने एकाकीपन का अहसास हुआ और चुपचाप समंदर के किनारे आकर मूक-सा अनंत शून्य में निहारने लगा।

समंदर का ऋतुजनित व बाध्य सूर्यास्त, गुज़रा हुआ सरल असूचित-सा दिवस, गहराती शाम और गहरी होती अकेली रात, जिसमें स्वप्नों ने भी अब आना छोड़ दिया था। क्योंकि रंजीत के मन-मंदिर के निर्जल बंजर में अब उगने को बचा ही क्या था। एक दुर्दांत, लेकिन प्रेम-युक्त अतीत रंजीत को अतीत की परिक्रमा के लिए विवश कर रहा था। रंजीत शून्य में बुदबुदा रहा था। लेकिन बहते पवन के झोंकों में उसकी आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं था। लेकिन रंजीत को अनीता का सान्निध्य मिला, भले ही कुछ पल के लिए, इसका वह आजीवन आभारी रहेगा। उसके आत्मीयता-भरे प्यार से न सिर्फ़ रंजीत के जीने का ढंग बदला, बल्कि उसमें आत्मविश्वास की ज्वाला भी जगाई। अनीता के साथ रहकर ही रंजीत ने सीखा कि कैसे बोलना है, कैसे चलना है, कैसे बैठना है, कैसे कपड़े पहनने हैं, किससे कैसा बर्ताव करना चाहिए। अनीता से मिलने से पहले रंजीत समझता था कि उसकी ज़िंदगी सिर्फ़ किताबों के लिए बनी है। लेकिन अनीता ने रंजीत को किताबों की दुनिया से बाहर निकालकर जीवन का कुछ यथार्थ भी सिखाया। उसके साथ रहते हुए कभी-कभी रंजीत को यह अहसास होता था कि शायद वह उसके लायक नहीं है। पर अनीता ने इसका कभी अहसास नहीं होने दिया। हमेशा खिलखिलाना और मस्ती करते रहना अनीता की फ़ितरत थी। दरअसल, अनीता एक उदार हृदय वाली उर्वशी थी।

अनीता की उदारता से रंजीत उसकी ओर और आकर्षित होता रहता और दिल से उससे प्रेम कर अपने नसीब पर इतराता रहता था। जब कभी रंजीत उसके साथ होता, तब उसे लगता कि वह दुनिया का सबसे भाग्यशाली इन्सान है। अनीता की सुरीली आवाज़ में गाया गया वह गीत - "न तुम हमें जानो, न हम तुम्हें जाने, मगर लगता है कुछ ऐसा मेरा हमदम मिल गया... "रंजीत को हमेशा याद आता। अनीता की हँसी में ही रंजीत को सारी दुनिया नज़र आती थी। उसके शरीर से आते इत्र की खुशबू रंजीत को उसके करीब होने का अहसास देती थी। रंजीत को याद है कि जब उसने अनीता के जन्मदिन पर "कैन लव हैपन ट्वाइस" किताब दी थी, तब उसने अचरज भरी नज़रों से रंजीत को देखा था और उसकी हथेली को दबाते हुए शुक्रिया कहा था। अगले दिन उसी गुलमोहर के पेड़ के नीचे अनीता ने उदास मन से कहा था - "बहुत इमोशनल कहानियाँ हैं, मुझे डर लगता है, कहीं तुमसे बिछड़ न जाऊँ।"

कहते हैं न कि प्रेम को नज़र लगते देर नहीं लगती और हुआ भी ऐसा ही। रंजीत की किस्मत में अनीता नहीं थी। शायद अनीता को इस बात का अहसास हो गया था। उसने कुछ दिन पहले से रंजीत से बात करना बंद कर दिया था। वह रंजीत के मैसेज का जवाब अब कम ही देती थी। बहुत प्रयास करने पर अनीता ने बस इतना ही बताया कि वह कुछ व्यस्त है। फिर एक दिन वह रंजीत की ज़िंदगी से बहुत दूर चली गयी। रंजीत मन-ही-मन बस इतना ही बोल सका - "अनीता, तुमने मुझे इतना बड़ा धोखा क्यों दिया?"

लेकिन रंजीत के जीवन की फ़सलें अब कट चुकी थीं और चिड़ियाँ दाने चुगकर फुर्र हो चुकी थीं। बस केवल ज़मीन बची थी और बची हुई ज़मीन की एक ही योग्यता है कि वह हमेशा मौजूद रहती है और गायब कभी नहीं होती है।

हमेशा चुलबुली और हँसती-मुस्कुराती रहने वाली लड़की ने कैसे रंजीत को शून्य में छोड़ दिया, जबकि रंजीत उसकी ही पसंद था। रंजीत ने आइने में अपने-आपको देखा, फिर उसकी तस्वीर को देखा। आज वह खुद को कुछ अजीब पा रहा था। बेहद गुमसुम लाल-लाल आँखों में भरी आँसुओं के साथ कुछ बुदबुदाया और अनीता को मन-ही-मन हमेशा के लिए 'गुड बाय' कहा। 'गुड बाय' बोलने में उसे मानो सदियों का समय लगा। होंठ कई बार काँपे। आज पहली बार रंजीत को अनीता अपराधी लग रही थी। उसे लग रहा था मानो अनीता की तस्वीर भी उससे नज़र नहीं मिला पा रही थी। आज पहली बार रंजीत को दिल के सूनेपन का आभास हो चला था। भर्राई आवाज़ से उसने अनीता की तस्वीर को देखकर बस इतना ही कहा - "हमेशा खुश रहना और अपना ख्याल रखना।"

और इतना कहते हुए रंजीत की आँखों ने जवाब दे दिया था। फ़रवरी की शाम थी और मीठी ठंड भी थी। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। लेकिन दिल के अंदर का आक्रोश ज़रा भी कम न हुआ। अपने बड़े से कमरे में वह बहुत बेचैनी से इधर-उधर टहल रहा था। लगा मानो सब कुछ खत्म हो गया ज़ोर-ज़ोर से दीवार पर मुक्के मारने लगा। जब पूरी तरह थक गया, तब उसी अवस्था में बिस्तर पर लेट गया। कहीं दूर से आ रही गाने की आवाज़ - "बेताब दिल की तमन्ना यही है..." आवाज़ में रंजीत की सिसकियाँ दब-सी गयीं।

अनीता के कहे आखिरी शब्द क्या थे? वह तो रंजीत को याद नहीं था, पर पहला शब्द आज भी याद है। वे शब्द जब कभी रंजीत के कानों में गूँजते, वह घबराकर इधर-उधर देखता। शायद कहीं सच में आस-पास आकर तो नहीं बोल रही है। पर हमेशा की तरह ये उसका भ्रम ही होता। रंजीत को अनीता से बहुत कुछ कहना बाकी था। प्यार की कई बातें अभी भी बतानी थीं। पर अब शायद नहीं बता पायेगा। एक चीज़ की कमी आज तक, जो सबसे ज़्यादा महसूस हो रही है, वह है अनीता के फ़ोन का आना। आज भी रंजीत की नज़र बार-बार मोबाइल पर चली ही जाती कि शायद उसका कॉल आया हो, पर ये सब भ्रम था। रंजीत के पास अनीता के नाम की हिचकी, तो बंद हो गयी थी, पर सिसकी आज भी बची हुई थी। कभी-कभी वह मन-ही-मन बुदबुदाता और कहता - "अनीता, अब ज़िंदगी तुम्हारे बिना बहुत सूनी-सूनी लग रही है। दिल में बहुत तेज़ दर्द हो रहा है। देखो मैं बच्चों की तरह रो रहा हूँ, पर मुझे पता है अब न तुम आओगी, नाही तुम्हारा कॉल आएगा। लेकिन तुम्हारे साथ बिताए हुए एक-एक पल याद आ रहे हैं। दिल से जितना भी तुम्हें भुलाने की कोशिश करता हूँ, तुम मुझे उतनी ही ज़्यादा याद आती हो। तुम्हारी मुस्कुराहट, तुम्हारा सुर्ख गुलाबी चेहरा सब मुझे बहुत कचोटता है। हर पल ऐसा लगता है, जैसे मेरा सब कुछ खो गया है।"

पर कहते हैं न कि समय का एक नियम ही बदलना है और वह हर इन्सान के साथ होता है। फिर ऐसा तो रंजीत के साथ भी होना ही था। उन दर्द भरी यादों को भूलकर वह सामान्य जीवन में आ गया। रंजीत अब भूल चुका था कि कभी अनीता से भेंट हो पाएगी या कभी मुलाकात भी होगी। ऐसा नहीं था कि अब रंजीत देवदास बनकर घूम रहा था, बल्कि वह अपने सपने को पूरा करना चाहता था। इस दौरान उसकी मुलाकात शुभ्रादेवा से हुई। पता ही नहीं चला कि रंजीत और शुभ्रादेवा कब करीब आ गए। उसने रंजीत की ज़िंदगी को फिर से खुशियों से भर दिया। शुभ्रादेवा ने रंजीत को वह हर चीज़ दी, जो अनीता ने कभी नहीं दिया। शायद वह अनीता से भी ज़्यादा रंजीत को प्रेम करती थी। अब शुभ्रादेवा रंजीत को हर मामले में अनीता से अच्छी लगती थी।

रवांडा की राजधानी किगाली के जीनोसाइड म्यूज़ियम में घूमते हुए रंजीत को अचानक अनीता की याद आ गयी। प्रेम की पीड़ा उसे कहीं-न-कहीं आज भी तिरस्कार, अपमान, मानहानि और धोखा लग रहा था। उसे अहसास हो रहा था, मानो रवांडा में हुए जीनोसाइड में उसकी भी पूर्ण हत्या कर दी गयी हो। अचानक रंजीत के पैर में हीलस्पर का दर्द हुआ। दर्द तो कई दिनों से हो रहा था, पर वह उस पर ध्यान नहीं दे रहा था। आज उसकी छुट्टी थी, तो उसने सोचा क्यों न डॉक्टर से दिखवा दे। यही सोचकर वह किंग फ़ैज़ल हॉस्पिटल, किगाली चला गया और काउंटर पर फ़ीज़ जमा कर गेस्ट एरिया में विज़िटर्स चेयर पर अपनी बारी का इंतज़ार करने लगा। फिर एक पल ऐसा आ गया, जो एक अजूबा और

विस्मय से कम नहीं था। रंजीत की बगल वाली कुर्सी पर एक लड़की दुपट्टे के पल्लू से बार-बार अपनी आँख पोंछ रही थी। भारतीय परिधान में सिमटी उस लड़की की सिसकियाँ रुक नहीं रही थीं और अविरल होती आँसुओं की धारा ने रंजीत को कुछ सोचने पर मजबूर कर दिया। अफ़्रीका के इस छोटे से देश में एक भारतीय लड़की, वह भी हॉस्पिटल में रो रही थी। चूँकि वह किगाली में चार सालों से रह रहा था, उसके मन में इच्छा हुई कि वह उस लड़की से कुछ पूछे और यदि कुछ मदद हो, तो करे। लेकिन वह थोड़ा असहज हो रहा था। वह हिम्मत कर उस लड़की को देख रहा था, उस लड़की के दुपट्टे में कुछ खून के दाग भी थे। रंजीत यह देखकर सिहर-सा गया। उसे लगा कहीं यह लड़की टूरिस्ट तो नहीं, जिस पर कुछ लोगों ने आक्रमण कर दिया हो। यह सब वह सोच ही रहा था कि हॉस्पिटल का एक स्टाफ़ उस लड़की के पास आया और अंग्रेज़ी में बोला - "मैडम, ओ पॉज़िटिव ब्लड इज़ नॉट अवेलेबल इन दिस हॉस्पिटल। यू हाव टू अरेंज द ब्लड इम्मीडिएटली। योर हस्बैंड इज़ वैरी क्रिटिकल।"

उस लड़की ने रोते हुए अपना सिर उठाया और बोला - "सिस्टर, आई डू नॉट नो एनी पर्सन इन रवांडा। हाउ कैन आई मैनेज ब्लड? सिस्टर प्लीज़ हेल्प मी।"

रंजीत ने उस लड़की की आवाज़ सुनी, तो चौंक गया। वह आवाज़ कुछ जानी-पहचानी सी लग रही थी। अचानक वह उठकर उस लड़की की ओर देखने लगा। और देखते ही चौंक गया। सामने अनीता खड़ी थी। अचानक उसके पैरों के नीचे की ज़मीन खिसक गयी। हाथ-पैर फूल गए। शरीर को काठ मार गया। अनीता ने एक पल उसको देखा और अवाक् हो गयी। रंजीत को भरोसा नहीं था कि सात साल बाद अनीता से मुलाकात होगी, इस देश में और इस हाल में। उसने ज़्यादा कुछ नहीं बोला और सिस्टर को बोला - "सिस्टर माय ब्लड ग्रुप इज़ ओ पोसिटिव। कैन आई डोनेट?"

नर्स ने कहा - "प्लीज़ फ़ॉलो मी।"

यह कहकर वह सिस्टर के पीछे चलने लगा। अनीता कुछ भी नहीं बोल पायी, उसे बस देख भर सकी। सब कुछ इतना जल्दी हुआ कि उसे रंजीत को कुछ बोलने का मौका ही नहीं मिला। रंजीत अपने पैर का दर्द भूलकर नर्स के पीछे-पीछे भागा जा रहा था। फ़िलहाल उसके मन में अनीता के लिए कुछ भी नहीं था। सात साल से जिस अपमान और तिरस्कार को मन में लिए, वह जी रहा था, वह अचानक प्रेम में परिणत हो चुका था। ब्लड रूम में जाकर उसने ब्लड दिया और जूस का पैकेट लेकर वापस बाहर आया। अनीता गेट के बाहर ही खड़ी मिल गयी। अनीता ने सिर उठाया और रंजीत की ओर देखा और अचानक डबडबायी नज़रों से उसकी ओर देखकर फफक-फफककर रोने लगी। रंजीत बस इतना ही पूछ सका - "तुम यहाँ कैसे ?"

"मैं हस्बैंड के साथ मसाई मारा केन्या आयी थी। रवांडा के बारे में बहुत सुना था कि यह अफ़्रीका का सिंगापुर है। इसी कारण लौटते समय किगाली आ गयी। आज लौटने की फ़्लाइट थी। होटल से जैसे ही निकली कि एक टैक्सी से एक्सीडेंट हो गया। मैं यहाँ किसी को जानती नहीं थी। टैक्सी वाले ने ही हॉस्पिटल पहुँचा दिया।" एक साँस में ही अनीता ने सब कुछ बता दिया।

"चलो, आओ बैठो। सब ठीक हो जाएगा। डॉक्टर बात कर रहे थे कि ब्लड बहुत निकल गया है। लेकिन ब्लड चढ़ जाएगा, तो ठीक हो जाएगा। तुम चिंता मत करो।"

यह कहकर रंजीत अनीता को कैंटीन के पास ले जाकर दो कॉफ़ी का आर्डर किया। अनीता बस उसको देखती जा रही थी। कॉफ़ी पीते हुए बस धीरे से बिना उसकी ओर देखे पूछा - "तुम यहीं रहते हो?"

रंजीत ने आहिस्ते से, उसकी ओर देखा और बोला - "हाँ।"

दोनों के पास मानो शब्दों की कमी हो गयी थी। सात साल बाद मिले थे, लेकिन सात शब्द भी शेष नहीं थे दोनों के पास। दोनों के हृदय में भावना और संवेदना थी, लेकिन संवेदना के पत्ते को हिलते देखना और उसे अनुभव करने की बात उन दोनों की ज़ुबान पर नहीं आ रही थी। दरअसल स्त्री और पुरुष सदा से दो भाषाओं में संवाद करते आ रहे हैं। स्त्री कुछ कहती है, पुरुष कुछ सुनता है। पुरुष कुछ चाहता है, स्त्री कुछ और समझ रही होती है। दैहिक भाषा और भाव-भंगिमाओं के पाठ में भी यह अंतर महसूस होता है। दोनों का प्रेम तो अबोध मन पर कब से अंकित था। दोनों आज

तक उम्र के इस पड़ाव पर भी उसी छवि को पोसते रहे और उसी काल में लौट जाने की कामना पालते रहे। इसी मनोरम छवि के कारण ही एक-दूसरे के प्रति कटुता नहीं आ सकी। रंजीत इस अनजान स्थल पर अनीता के प्रति अपने दायित्व बोध के कारण मौन था, तो अनीता का मन उसी पुराने दौर में लौट जाने की इच्छा रखता था। दोनों ही चुप थे। मौन भाषा से बंधे हुए थे। कुछ देर बाद डॉक्टर अन्दर से निकलकर आये और बोले सब ठीक है, बस कुछ दिन रेस्ट की ज़रूरत है। उस समय अनीता की खुशी देखने लायक थी। अनीता के चेहरे की खुशी देखकर रंजीत भी बहुत खुश हुआ। डॉक्टर ने यह भी कहा कि अभी तीन-चार दिन अस्पताल में ही रहना पड़ेगा, क्योंकि स्टिचर्ज़ काफ़ी लगे हैं। अनीता चुपचाप सुन भर रही थी। उसे संतुष्टि थी कि रंजीत के रूप में किगाली में उसको जानने वाला कोई था। अनीता ने डॉक्टर से पूछा - "कैन आई मीट माय हसबैंड?" डॉक्टर ने कहा - "नॉट नाउ, मे बी इन इवनिंग। ही विल बी शिफ़्टेड इन द वार्ड। देन यु कैन मीट।"

शाम होने में अभी चार-पाँच घंटे थे। रंजीत को कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह अनीता से क्या बोले। अनीता बस अपने पति के बारे में सोच रही थी। उसे इस बात का अहसास तो था कि रंजीत उसके समीप है, लेकिन रंजीत अभी कहीं उसके दिलो-दिमाग में नहीं था। वैसे भी आज का तकरीबन हर इन्सान आभासी और असल दुनिया के बीच ऐसी ही ऊहापोह में उलझा है कि पास होकर भी पास नहीं रह पाता है। दरअसल, जीवन में ऐसे कई पल आते हैं, जब हमें यह पता नहीं चल पाता है कि हम किस दिशा में जा रहे हैं। यह ऐसा दौर होता है, जब हमें लगता है कि हमारे आसपास के सारे लोग हमारी मन:स्थिति को समझने में असफल हो चुके हैं। यही हाल अभी रंजीत और अनीता दोनों का था। इसी ऊहापोह के बीच रंजीत ने बात आगे बढ़ाते हुए पूछा -

"तुमने कुछ खाया या नहीं?"

''हाँ, सुबह ब्रेकफ़ास्ट किया था। ''

''लेकिन, अब तो काफ़ी समय हो गया, चलो कुछ खा लो।''

''नहीं मुझे भूख नहीं है।''

''लेकिन भूख तो लगी होगी न। बगल में ही मेरा घर है। दस मिनट लगेंगे। खाना खाकर फिर वापस आ जाएँगे।''

अनीता ने उसकी ओर देखा पर बोली कुछ नहीं। रंजीत ने अनीता के मौन को उसकी अस्वीकृति मानी और चुपचाप दोनों शाम होने का इंतज़ार करने लगे।

शाम को अनीता के पति को वार्ड में शिफ़्ट किया गया, अब वे खतरे से बाहर थे। अनीता उसे देखते ही, उससे लिपट गयी। रंजीत को कुछ अजीब लगा और उसने अपना सिर झुका लिया। एक पल के लिए रंजीत ने अनीता के पति अजय को देखा और पता नहीं क्यों रंजीत को अजय से जलन होने लगी और उसने अपने आँसू को पलकों के अन्दर दबा लिया था, जो किसी को पता नहीं चल सका। लेकिन अनीता जैसे ही अपने पति से रंजीत का परिचय करवाने के लिए मुड़ी वह रंजीत की बोझिल पलकों से रुबरु हो चुकी थी। रंजीत से परिचय, उसने यह कहकर कराया कि रंजीत उसके साथ पढ़ता था।

शाम के सात बज चुके थे। आठ बजे के बाद अस्पताल में रोगी का कोई भी अटेंडेंट नहीं रह सकता था। अतः अनीता को भी अब कहीं-न-कहीं रहना था। वह होटल जाना चाहती थी, पर अजय की सहमति से अनीता रंजीत के साथ उसके घर जाने को सहमत हो गयी थी। अनीता सुबह से बहुत परेशान थी। लेकिन डॉक्टर के आश्वासन और पति के होश में आने के बाद वह थोड़ी सहज हुई थी। उसे अब भूख भी लग रही थी, लेकिन अस्पताल के कैन्टिन में खाने लायक कुछ नहीं था। रंजीत भी उसके पास था और वह कई बार अनीता को घर चलने का आग्रह कर चुका था। अंततः अनीता रंजीत के साथ उसके घर जाने के लिए सहमत हुई। रंजीत ने कार स्टार्ट की। अनीता गेट खोलकर बगल वाली सीट पर बैठ गयी। दोनों गुमशुम थे। रंजीत नाराज़ ज़रूर था, लेकिन अभी नाराज़गी का वक्त नहीं था। अनीता सहमी-सी थी और रंजीत के किसी भी प्रश्न के उत्तर के लिए तैयार नहीं थी। रास्ते भर दोनों चुपचाप रहे। सड़कों पर स्ट्रीट लाइटों की रोशनी में कभी-कभी वे एक-दूसरे को देख पा रहे थे।

अनीता ने बस इतना ही पूछा - ''मम्मी कैसी हैं?''

“ठीक है। पहले तुमको बहुत याद करती थी। लेकिन

अब तुम्हारे बारे में नहीं पूछती है।"

अनीता फिर कुछ पूछ भी नहीं पाई।

थोड़ी-थोड़ी ठंड बढ़ती जा रही थी। अब बादल भी ऊँचा उठ रहा था और वातावरण में ठंडक बढ़ती जा रही थी। जंगल की तरफ़ से आती हुई हवा के झोंकों से शरीर में बार-बार सिहरन आ जाती थी। कार में रेडियो पर पश्चिमी संगीत धीमी आवाज़ में चल रहा था।

किगाली के सिटी अपार्टमेंट के चौथे माले पर अनीता ने रंजीत के घर में प्रवेश किया, तो उसने घर को एक सरसरी निगाह से देखा और पहला सवाल यही किया - "रंजीत तुम अकेले रहते हो? तुम्हारी पत्नी कहाँ है?"

रंजीत ने अनीता को कोई जवाब नहीं दिया, फिर जब कभी मौका मिला अनीता ने यही सवाल किया। आखिर हारकर अपनी आँखों से दूर छत को देखते हुए रंजीत ने कहा कि उसने अभी तक शादी नहीं की। अनीता एकटक उसकी ओर देखती रह गयी थी। पता नहीं, वह क्या सोच रही थी। दिन भर की परेशानी और भूख होने के बावजूद भी अनीता ने कुछ खास नहीं खाया। नाही रंजीत से बात की। बस हर पल निगाह बचाकर रंजीत को देखती रही।

अगले दिन रंजीत अनीता को अस्पताल छोड़कर ऑफ़िस चला गया और फ़्लैट की चाभी अनीता को दे दी। अस्पताल में अजय अब बिल्कुल ठीक था। इसी कारण, उन्होंने अनीता को घर जाकर आराम करने को कहा। अनीता अस्पताल में कुछ देर रहने के बाद फ़्लैट पर आ गई। चूँकि उसके पास कोई काम तो था नहीं, इसी कारण वह घर को थोड़ा संयोजित करने लगी। रंजीत के कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। उसने सबको ठीक किया। एक अलमारी के कोने पर कुछ तस्वीरें थीं। उन तस्वीरों में रंजीत के माता-पिता और बहन की तस्वीरों को तो अनीता ने पहचान लिया, लेकिन एक तस्वीर में एक झील के किनारे रंजीत के साथ एक लड़की खड़ी थी। अनीता कुछ असहज होकर उस तस्वीर को देखने लगी। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। दिन भर इसी उधेरबुन में गुजरा कि यह लड़की कौन है और रंजीत के साथ उसकी तस्वीर क्यों है? शाम को जब रंजीत घर आया, तब अनीता ने न चाहते हुए भी उससे पूछ ही लिया कि यह कौन है? रंजीत ने लंबी साँस लेते हुए अनीता को देखा और कहा - "अनीता, तुमने तो मुझे मझधार में छोड़ दिया था। तुम्हें तो सहारा मिल गया था, लेकिन मैं क्या करता? उस दौरान शुभ्रादेवा ने ही मुझे सहारा दिया। और यह तस्वीर यहीं रवांडा की है।"

अनीता कुछ बोली नहीं, बस देखती रही रंजीत को और फिर धीरे से कहा - "खाना बन गया है, आओ खाना खा लो।"

आज जीवन में रंजीत पहली बार अनीता के हाथ का बना खा रहा था, लेकिन बस मौन था। तीन दिन अस्पताल में रहने के बाद अजय को डिस्चार्ज कर दिया गया और रंजीत उसे अपने घर ही ले आया। अगले दिन अजय ने अनीता से कहा - "यहाँ एक झील बहुत फ़ेमस है, चाहो तो देख आओ। अनीता मना करती रही, लेकिन अजय के दबाव और रंजीत के आग्रह के बाद वह मान गयी। रंजीत और अनीता दोनों लंच के बाद झील देखने निकल गए। आज अनीता काफ़ी खुश थी, क्योंकि अजय लगभग ठीक हो चुका था।

झील के किनारे लगे बेंच पर दोनों बैठ गए, जहाँ से उन्हें पूरी झील दिखाई दे रही थी। आसमान को देखकर ऐसा लग रहा था कि उसके नीले छिलके कोई धीरे-धीरे उतार रहा हो। हवा जैसे किसी घोड़े पर सवार हो भागी जा रही थी। एक अनजान देश में, दो साये जो बहुत साल पहले एक होना चाहते थे, आज एक ही बेंच पर अलग-अलग बैठे थे। देखने में युवा जोड़ा, तो कोई नहीं कह सकता था, लेकिन युवा से कम भी नहीं थे। वे दोनों आपस में बात नहीं कर रहे थे, बस खामोशी से सूरज को झील के आगोश में जाते देख रहे थे। उस समय उन दोनों के बीच की खामोशी झील के नीरव शांत खामोशी से ज़्यादा खामोश थी।

"यह वक्त भी क्या बेवफ़ा चीज़ है, जब होता है, तब पता नहीं लगता, जब पता लगता है, तब पास होता नहीं है।" अनीता ने एक गहरी साँस छोड़ते हुए कहा।

"क्यूँ वक्त कहाँ गया? यहीं तो है। बैठे तो हैं, तुम्हारे साथ फ़ुरसत से" रंजीत ने जवाब दिया।

"लेकिन बहुत कुछ पीछे छूट गया, मैं वह कर ही नहीं पायी, जो करना चाहती थी!" यह कहते हुए अनीता ने रंजीत की तरफ़ देखा। रंजीत उस समय अनीता को ही देख रहा था। रंजीत की नज़र अनीता की बिंदी पर गयी, जो उसके

ललाट के बीच में बिल्कुल नहीं थी।

"ऐसा क्या देख रहे हो?" अनीता ने पूछा।

रंजीत ने उसकी बिंदी ठीक करते हुए कहा - "तुम आज भी बिंदी के मामले में बेपरवाह हो।"

रंजीत ने जैसे ही उसकी बिंदी को ठीक करने के लिए हाथ बढ़ाया कि अनीता की आँखें बंद हो गईं और करीब दस सेकंड के लिए बंद ही रहीं और जब खुलीं, तब रंजीत मुस्कुराकर कह रहा था कि अब बिंदी परफ़ेक्ट है। इन दस सेकंड में दोनों ने एक-दूसरे की साँसों की गर्माहट को महसूस किया।

"कुछ भी कहो तुम आज भी एकदम गाइड की वहीदा रहमान दिखती हो।"

अनीता ने मुस्कुरा भर दिया और कहा - "हाँ, तभी तो गुरुदत्त बर्बाद हो गया।"

इस बात पर रंजीत थोड़ा सीरियस हो गया, लेकिन अनीता ने चुलबुली बनकर प्यारे से लम्हे की खामोशी तोड़ते हुए कहा - "भुट्टे नहीं खिलाओगे?"

सामने ही एक भुट्टा वाला था, जो फ़ोटोग्राफ़र भी था। वह काफ़ी देर से उन दोनों की कई तस्वीरें इस आस में ले चुका था कि कोई एक तस्वीर तो उन दोनों को पसंद आएगी और उसकी बिक्री होगी। रंजीत ने दो भुट्टे देने को कहा। अनीता पैसा देने लगी, तो रंजीत ने उसका हाथ झटक दिया। अनीता मान गयी और मस्ती के अंदाज़ में उसने कहा - "हाँ, अब तो बहुत पैसा आ गया होगा तुम्हारे पास। कुछ मुझे भी दे दो, बहुत काम आएँगे मेरे।''

रंजीत कुछ बोल नहीं पाया। वह पहले भी अनीता के डाँटने का जवाब कभी नहीं दे पाता था और उसने हमेशा यही चाहा था कि अनीता उसको डाँट-डाँटकर ही ज़िन्दगी भर प्यार करती रहे। तभी भुट्टे वाले ने अनीता से उसका मोबाइल नंबर माँगा, ताकि वह उनके फ़ोटो को व्हाट्सएप्प कर सके। अनीता ने अपना मोबाइल नंबर दे दिया। रंजीत ने कुछ ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। दोनों बातचीत में व्यस्त हो गए।

"रंजीत सही में बहुत कुछ पीछे छूट गया है। तुम अब नज़र मिलाकर आँखों-आँखों में बात करना भूल गए हो।"

रंजीत कुछ जवाब नहीं दे पाया, बस इतना ही कहा - "अनीता, प्रेम की स्वीकार्यता इतनी उन्मुक्त है क्या?"

"नहीं रंजीत - औरत को उसके ही सपनों से बाहर निकाल दिया जाता है। प्रेम तो एक कोमल अनुभूति है। पर प्रेम चीर देता है। प्रेम टीस देता है। प्रेम दर्द देता है। व्याकुलता और विकलता देता है। लेकिन यही प्रेम संबल और बल भी देता है। खंडित होकर अखंड होने का संकल्प और ऊर्जा भी देता है। कैसे मैं बचपन में एक शरारती और नटखट लड़की थी, लेकिन जब ब्याह की बात आई, तो कैसे मुझे घर की बहू की भूमिका में आना पड़ा। लेकिन रंजीत तुम जानते हो, इन्सान अपना पहला प्रेम कभी नहीं भूलता है।"

"लेकिन अनीता, तुम्हें पता तो होगा ही कि सुख की एक मियाद होती है। आज मैं तुमसे हारकर खुश हूँ। कल शायद मैं तुमसे जीतना चाहूँ। आज तुम पलकें झुकाए बैठी हो। कल शायद तुम मेरा इंतज़ार करो। प्रेम का दरिया कभी एक-सा नहीं बहता। कोशिश बस इतनी हो कि पहली मुलाकात की खुशबू हमारे बीच अंत तक ठहरी रहे। तुम्हारे जाने के बाद मैं एक सामान्य प्रेमी की तरह टूटा नहीं, बल्कि सबल हुआ। मेरी इस सबलता को शुभ्रादेवा ने और मज़बूत किया। जब तक मैं तुम्हारे साथ था हम दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। लेकिन समय की धारा में हम दूर हो गए। मैंने अपने आपको सहेजा, मज़बूत किया और शुभ्रादेवा ने मुझे टूटने नहीं दिया। तुम आज भी हर पल मेरे ज़ेहन में हो, लेकिन धुंधली तस्वीर के रूप में। आज मेरी ताकत शुभ्रादेवा है।" रंजीत ने कहा।

रंजीत के इस वाक्य से अनीता ने अपना सिर रंजीत की तरफ़ बढ़ाते हुए बोला "ओह रंजीत... तुम बिल्कुल सही हो। प्रेम एक विराट ब्रह्म है। जहाँ अहं शून्य होता है न, वहीं प्रेम पूर्ण होता है। आज भी जब कभी मैं समंदर किनारे जाती हूँ, तब समंदर की हर लहर से तुम्हारा हाल पूछती हूँ। तुम्हारे पसंद के गीत 'अजनबी तुम जाने-पहचाने से लगते हो...' गाती हूँ। फिर चुप हो जाती हूँ। क्योंकि गाकर चुप हो जाना एक मजबूरी है। मजबूरी मतलब अस्तित्व की शर्त और अनिवार्यता है। बेशक एक बार मिलना चाहूँगी शुभ्रादेवा से और खुद से उसकी तुलना भी करूँगी।"

अब अनीता को रंजीत से कोई शब्द कहने की ज़रूरत नहीं थी। आँखों-आँखों में अनीता ने कुछ कहा, जिसका अर्थ

सिर्फ़ रंजीत ही समझ सका। रंजीत कुछ बोल नहीं सका और सिर्फ़ इतना बोला - ''चलो घर चलते हैं, अजय इंतज़ार कर रहे होंगे।''

आज अजय और अनीता को भारत लौटना था। अब अजय पूरी तरह ठीक था। सुबह में अजय रंजीत के साथ ही अस्पताल गया, ताकि आखिरी स्टीच क्लीयर हो जाए। जब रंजीत लौटकर आया, घर में बहुत-सी चीज़ों का स्थान बदल गया था। रंजीत के सारे कपड़े सलीके से रखे हुए थे। किचन भी पूरी तरह साफ़ था। ड्रॉइंग रूम में लगी उसकी तस्वीर पर शायद अनीता ने ही सिन्दूर का टीका लगा दिया था। इसका अर्थ रंजीत नहीं समझ पाया। अनीता अपना सामान पैक कर रही थी। पता नहीं कुछ सोचकर रुक भी जाती थी और बीच-बीच में पुतलियों की कनखियों से रंजीत की ओर देख भी रही थी। हाँ एकाध बार उसने अनीता को अपने दुपट्टे को आँख में लगाते देखा था, शायद अनीता की आँखों में आँसू आ गए थे। अनीता कुछ बोलना चाह रही थी, पर बोल नहीं पा रही थी। रंजीत ने ही माहौल को हल्का करते हुए कहा - "अजय, जब हम लोग कॉलिज में थे, तब अनीता को फ़िरोज़ी रंग का सूट बहुत पसंद था। अब पहनती है कि नहीं?"

यह सुनकर आँसू की बूंदे अनीता के कपोल पर आ गए थे। रंजीत का मन कर रहा था कि अनीता के आँसू को अपने हाथों से पोंछ दे। पर रंजीत अपना दायरा जानता था। अजय ने मुस्कुरा भर दिया। अजय ने रंजीत को धन्यवाद कहा और गले से लगाया, लेकिन अनीता तो बस रंजीत को देख रही थी। वह हँसने का बहाना कर रंजीत के पास आयी और उसके गालों को जोर से दबाते हुए बोली - "तुम्हारा भी पोल खोल दूँगी। नीला दुपट्टा किसको गिफ़्ट दिए थे? जाती हूँ इंडिया और जाकर फ़िरोज़ी रंग में सेल्फ़ी भेज दूँगी। देखते रहना जीवन भर।"

अब सब सहज थे और मुस्कुरा रहे थे। लेकिन टीस अब भी बाकी थी।

अनीता का प्लेन उड़ने वाला था। रंजीत भी एयरपोर्ट से जल्द-से-जल्द घर पहुँचना चाहता था। रास्ते में सोच रहा था कि अब, जब अनीता साथ नहीं है, तब ये मौसम भी पतझड़-सा लग रहा है। वह जो प्यार की डाली पर खुशियों के हरे पत्ते निकलकर कभी झूम रहे थे, जिन्हें वह भूल गया था, आज जब अनीता नहीं हैं, तब वह खुशियों के पत्ते यादें बनकर सूखकर, उस डाली से नीचे गिर गये हैं। रंग बदलने लगा है पत्तों का और वे फीके से पड़कर गिर रहे हैं। फिर से हरे होने की नाकाम कोशिश में कितनी बार वे सूखी पत्तियाँ गीली हुई होंगी आँसुओं की बारिश से। लेकिन शाख से टूटे पत्ते वापस शाख पर नहीं लगते हैं, वापस से हरे नहीं होते हैं। अब इन पत्तों को संभालकर वह क्या करेगा। ये सूखकर इतने नुकीले हो गये हैं, जो चुभते हैं, रंजीत के दिल में। कब तक यह दर्द वह सहेगा ? एक तूफ़ान की कमी है, जो उन पत्तों को उड़ाकर रंजीत से दूर कर दे, तोड़ दे उस डाली को जिसके हरे होने का सपना वह हर रात देखता है। तभी व्हाट्सएप्प पर कोई मैसेज आता है। यह मैसेज अनीता का था। एक तस्वीर भी थी। तस्वीर झील के किनारे की थी, जिसमें वह अनीता की बिंदी ठीक कर रहा था। शायद भुट्टे वाले फ़ोटोग्राफ़र ने खींच लिया था। साथ में लिखा था - ''भारत पहुँचकर फ़िरोज़ी सूट में सेल्फ़ी भेज दूँगी। तुम्हारा दिया हुआ नीला दुपट्टा, आज भी मेरे पास ही है। सहेज कर रखी हूँ। और हाँ, शुभ्रादेवा से शादी कर लेना। मैं आऊँगी तुम्हारी शादी में।"

aashuashok2009@yahoo.co.in

आश्रय

श्रीमती शिखा वार्ष्णेय
लन्दन, यू.के.

सूरज आज निकला नहीं था। अक्टूबर का एक दिन था। सिया एक बड़े-से मग में अपनी ग्रीन टी में बेसिल का एक पत्ता डालकर पीछे वाले बगीचे में अलस्सबाह ही बैठ गयी थी। वहाँ एक पेड़ को काटकर बनाई गई बेंच, उसे बहुत पसंद है। अच्छी ठिठुरन थी। घास पर अभी भी ओस ठहरी हुई थी। पेड़ अपने पत्तों को त्याग चुके थे और अब ठंडी हवा के झोंकों का सहारा ले, अपनी सूखी टहनियों से सिया को छूने की कोशिश कर रहे थे। सिया को हल्की ठंड महसूस हो रही थी, पर उसका मन अंदर जाकर जैकेट लेने का नहीं हुआ। यूँ भी उसे ठंड पसंद थी। गर्मी उसे उलझन देती थी और ठिठुरन जीवन में डटे रहने का हौसला।

"अरे नहीं बेटा! कहाँ-से-कहाँ ले जा रही है बात। तुझ जैसी प्रेक्टिकल बच्ची से मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी। देख हर उम्र और अवस्था की अपनी ज़रूरतें होती हैं। अलग सुविधाएँ चाहिए होती हैं। अब तू देख। जब हम पढ़ते हैं, कॉलिज में, तब हमें क्या चाहिए होता है? बस एक हॉस्टल का कमरा! सोने भर को। तब हमारी ज़िन्दगी में सबसे महत्त्वपूर्ण होता है - पढ़ना, घूमना और दोस्तों के साथ समय बिताना। फिर एक उम्र आती है, जब हम अपने एक साथी के साथ एक छोटा-सा घर चाहते हैं। फिर बच्चे आते हैं, जीवन में तो ज़रूरत एक बड़े घर की होती है। जहाँ खेलने की जगह हो, पास में स्कूल हो, पार्क हो। हमारा सामाजिक परिवेश बदलता है। है कि नहीं? हमने भी ऐसा ही किया न? बोल अब। क्या गलत कह रही हूँ मैं?"

सिया ने सुमी को शांत करने की कोशिश की।

"फिर बच्चे बड़े होते हैं, अपनी-अपनी ज़िन्दगी में आगे बढ़ते हैं। अपना ठिकाना, बसेरा बनाते हैं, तो फिर माँ-बाप भी दूसरी अवस्था में प्रवेश करते हैं। उनकी भी ज़िन्दगी बदलती है, ज़रूरतें बदलती हैं। उन्हें अब अलग तरह की सुविधाओं की ज़रूरत पड़ती है। मैं और तेरे पापा वैसे भी, तो कुछ समय के बाद एक छोटे-से सुविधा-संपन्न अपार्टमेंट में रहने जाने का सोचा ही करते थे न!"

"हाँ, तो ठीक है। मैं दूँगी आपको जो सुविधा चाहिए।" सुमी फिर खीजकर बोली।

"ओफ़ोह! तू यह तो देख नहीं रही कि उस जगह पर कितनी सुविधाएँ हैं। डॉक्टर की, काम की, मनोरंजन की सब तरह की सुविधा कैम्पस में ही है। अपनी ही उम्र के लोगों के बीच रहूँगी, तो मन भी लगेगा न मेरा। उन लोगों ने एक पार्ट-टाइम जॉब भी दे दिया है मुझे वहीं। एक बुक क्लब चलाने का। मेरी रुचि का काम है, पैसे मिलेंगे वह अलग से। अब तेरे घर में रहूँगी, तो तुम दोनों अपने काम पर जाओगे या मेरी निगरानी करोगे। मुझे कहीं आना-जाना हो, कुछ करना हो, तो क्या मैं बैठी रहूँ? तुम लोगों के इंतज़ार में। कभी मुझे किसी मेहमान को बुलाना हो तो? मेरी कोई प्राइवेसी नहीं है?"

सिया ने आखिरी दाव फेंका। इस 'प्राइवेसी' शब्द पर आज की पीढ़ी बहुत भरोसा करती है। अब शायद सुमी मान जाए।

सिया को समझ में नहीं आ रहा था कि वह कैसे सुमी को समझाए। चार साल पहले पति रोहित के जाने के बाद उसे अब इस घर में रहने में ही जाने क्यों उलझन होती है। सुमी के घर जाकर रहना तो फिर दूर की बात।

पहले तो वह कोई भी बहाना बनाकर सुमी के घर आ धमकती थी। उस तीन कमरों वाले घर में सुमी अपने साथी के साथ रहने लगी थी। अच्छी नौकरी थी दोनों की, तो अपने माँ-बाप के घर से कुछ ही दूर दोनों ने यह घर ले लिया था, जहाँ सिया गाहे-बगाहे पहुँच जाती थी। कभी कोई व्यंजन बनाकर ले जाती और रात को वहीं रुक जाती। कभी सुमी की छींक फ़ोन पर सुनकर कहती - "अरे तेरी तबियत ठीक नहीं? मैं आती हूँ।"

वह अपने दो जोड़ी कपड़े और टूथ-ब्रश लेकर उसके पास भाग आती। सुमी का साथी हँसता, खूब चिढ़ाता उसे "मम्मी का मन पापा के साथ नहीं लगता, बहाने ढूँढती रहती हैं, यहाँ आने के।"

सिया भी हँस देती - "हाँ तो? मेरी बेटी का घर है। ज़्यादा

बोला न, तो यहीं आकर बस जाऊँगी।" और सिया झट से सुमी के लिए सूप बनाने के लिए उसकी रसोई में घुस जाती। सुमी का बचपन सिया के सामने चलचित्र-सा घूमने लगा। इतनी हाइपर-एक्टिव बच्ची थी सुमी, जाने कहाँ से अचानक टपक जाती, जाने कैसे उसका मन भाँप जाती। ज़रा सिया का मन उदास-सा हुआ नहीं कि आकर उससे चिपक जाती। पता नहीं कैसे उसके मन के हर भाव का भान हो जाता था उसे। बड़ी हुई, तो अचानक ही किसी दिन घर आते समय सिया के लिए फूल ले आती या सिया की पसंद का केक। पता नहीं कैसे इस लड़की को उसके मूड का पता चल जाता था। उसकी इसी खासियत के चलते सिया ने लाड़ से उसका नाम बिल्ली रख दिया था। पहले-पहले तो सुमी अपने इस नाम से चिढ़ती थी, बाद में उसे इसमें मज़ा आने लगा। उसने खुद ही सिया के फ़ोन में अपना नाम बिल्ली फ़ीड किया था।

अब न जाने क्या नया तोता पाल रखा है, शनिवार के लिए इसने। यूँ तो सिया को उसके घर जाने या उसके दोस्तों की पार्टी में शामिल होने से कोई गुरेज़ नहीं है। बल्कि उसके सभी दोस्तों के साथ खूब हिलमिल जाती है वह। पर फिर भी कभी-कभी उसे लगता है कि सुमी ज़बरदस्ती उसे अपने आयोजनों में शामिल करती है। शायद उसे अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास होता है या फिर मम्मी के उसके साथ न रहने का क्षोभ। बचपन में जब सिया बात-बात पर उसे छेड़ने के लिए कहती - "अभी तो चिपकी रहती है, बड़ी होगी तो पास नहीं फटकने देगी।"

इसपर तुरंत सुमी बोलती - "क्यों बड़े होकर पर उग आते हैं? जहाँ मैं रहूँगी वहाँ आप भी मेरे साथ रहेंगी।

उसकी इस बात पर रोहित उसे चिढ़ाते - "अच्छा ! बिल्ली अपने बिल्ले के साथ चली जाएगी एक दिन, तो क्या मम्मी को दहेज में ले जाएगी"

"दहेज अवैध है, समझे! दहेज में कुछ नहीं जाएगा। मम्मी बस मम्मी की तरह मेरे साथ रहेगी।" तुरंत तुनककर सुमी बोलती।

फिर बीच में माहौल संभालने के लिए सिया को ही आना पड़ता। "हाँ। और क्या। मैं तो इसी के साथ रहूँगी। कोई कुछ भी कहे, कुछ भी करे।" पर मन-ही-मन सिया सोचती कि वैसे दिन कभी न आएँगे। जब उसे अपनी बेटी या किसी के भी साथ रहने को मजबूर होना पड़े।

वास्तव में, जब सुमी ने अपना घर लिया था, तब अपनी ज़रूरत से अधिक तीन कमरों का लिया। उसमें एक कमरा अकथित रूप से मम्मी का था। किन्तु उस समय सिया का उसके साथ शिफ़्ट होना असंभव ही लग रहा था। परंतु अचानक हुई रोहित की मृत्यु के बाद सुमी उसे अपने साथ शिफ़्ट होने के लिए पीछे पड़ी रहती थी। जाने कैसे-कैसे ऊटपटाँग बहाने बनाकर सिया उसे चार साल तक टालती रही थी। कभी कहती - "अरे तेरे कबूतरखाने में नहीं रहा जाएगा मुझसे। बड़े घर की आदत है न।"

कभी कहती - "अच्छा अगले साल आ जाऊँगी, थोड़ा सामान तो संभालने दे यहाँ का।" सुमी को उसके बहाने समझ में आते थे, पर फिर वह थोड़े आड़े-तिरछे मुँह बनाकर मान जाती थी। उसे लगता था कि एक दिन तो मम्मी को वह अपने पास ले ही आएगी। कभी तो सिया के बहाने खत्म होंगे! आखिर वह भी सिया की ही बेटी थी। वह अपनी माँ को अच्छी तरह से जानती थी।

सिया का स्वाभिमान अहम् की सीमा को बस छूता-सा ही था। वह हमेशा स्वाभिमान की सबसे ऊँची सीढ़ी पर होती और ज़रा-सा भी किसी पर आश्रित होना या किसी का उसके कामों में दखल देना, उसे झट उछालकर अहम् की पहली सीढ़ी पर चढ़ाने के लिए तैयार हो जाता। वह हमेशा से अपने बूते पर जी रही थी और अपनी ज़िंदगी में किसी की भी दखलंदाज़ी उसे तानाशाही लगती थी। चाहे वह देखभाल या परवाह के नाम से की जाए या प्रेम के नाम पर। सिया से बर्दाश्त नहीं होता।

रोहित से भी जब तब उसकी इसी बात पर झड़प हो जाती थी। तब यही सुमी इसी 'प्राइवेसी' और 'स्पेस' का तर्क देकर रोहित को समझाती थी।

सिया हमेशा से अपने जीवन की मालकिन स्वयं रही है। अब रोहित के जाने के बाद क्या उसका जीवन भी खत्म हो गया? उसकी तो अभी ज़िन्दगी बाकी है। वह क्यों किसी के भी आश्रय में रहे। बेशक सुमी उसकी बेटी है और बहुत प्यार करती है उससे। परन्तु उसकी भी तो अपनी ज़िन्दगी है। वह

क्यों उस पर बोझ बने और अपनी जीवन-शैली को बदले?

सिया को समझ में नहीं आता था कि ये 'ओल्ड एज होम' या 'वृद्धाश्रम' नाम की जगहों को लेकर समाज ने इतना बवंडर क्यों मचाया हुआ है। उस दिन सुमी भी बस इसी नाम पर 'हाय तौबा' मचा रही थी। ऐसे कह रही थी जैसे कि वह किसी मिट्टी की झोंपड़ी में रहने जा रही हो।

'सीनियर सिटीज़न होम' कहती, तो शायद ज़्यादा समझ आता उसे। 'वृद्धाश्रम' तो लोग ऐसे इस्तेमाल करते हैं, जैसे जहन्नुम हो। या फिर वहाँ रहना कोई महापाप हो। सिया को तो वहाँ रहते लोग भी इतने ही प्रसन्न और जीवन से भरपूर लगते हैं। बल्कि कभी-कभी तो ये लोग अपने जीवन से ज़्यादा सुखी और संतुष्ट नज़र आते हैं। यह तो सच है कि एक उम्र के बाद जीवन को अधिक और अलग तरह की सुविधाएँ चाहिए। अलग तरह से देखभाल की ज़रूरत होती है, जिसे इस तरह के संस्थान बेहतर तरीके से पूरा करते हैं। तो फिर क्या गुरेज़ होनी चाहिए ऐसे स्थानों में रहने से, अपनी ज़िन्दगी अपने हिसाब से जीने में? बाकी रही अपनों की बात! वे अपने तो अपने ही रहेंगे न! मिलते-जुलते रहेंगे, ज़रूरत पड़ने पर साथ भी रह सकते हैं। वैसे ही मिलते रहेंगे, जैसे अब मिला करते हैं। यही सब बार-बार समझाकर आखिरकार सिया ने सुमी को मना ही लिया था और इस सुविधा-संपन्न 'सीनियर सिटीज़न अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स' में एक अपार्टमेंट ले लिया था। सुमी ने भी जब यहाँ की व्यवस्था देखी, तब, "चलो ठीक है, आप ऐसे खुश हो, तो यही सही।" कहकर अपनी सहमति दे दी थी।

"और क्या फिर कल तेरे बच्चे होंगे, तेरे घर पर रहूँगी, तो वे नानी के घर कैसे आएँगे-जाएँगे?" सिया ने इतराकर कहा और वह अपने ही बचपने वाले तर्क पर हँस पड़ी।

दरवाज़े की घंटी बजी, तो सिया ख्यालों से वर्तमान में लौटी। दरवाज़ा खोला, तो वहाँ उन्हें गाँव की सैर पर ले जाने वाले वैन के ड्राइवर ने मुस्कुराकर पूछा - "मैम? हम चलने के लिए तैयार हैं।"

"बस दो मिनट में आई।" सिया ने भी मुस्कुराकर कहा और आकर फटाफट अपने बैग में सामान रखने लगी।

वैन कैम्पस के फाटक के पास ही खड़ी थी। सब लोग उसमें अपनी-अपनी सीटों पर जम गए थे। ड्राइवर ने सबसे सुरक्षा पेटी लगाने का आग्रह किया और गाड़ी चल पड़ी। दो घंटे की यात्रा के बाद हँसते, बतियाते स्त्रियों और पुरुषों की यह टोली अपने गंतव्य पर पहुँच गई। एक पार्क में एक अच्छा-सा कोना तलाशकर सबने अपना-अपना पिकनिक ब्लेंकेट बिछाया और वे अपनी-अपनी टोकरी खोलने लगे। नीता आंटी ने अपने डिब्बे से थेपले निकालकर रखे, रिया ने सब्ज़ियों वाले सैंडविच। जॉर्ज बढ़िया सलाद लेकर आया था और मार्था मीठी पाई। सिया ने भी अपनी बनाई हुई खस्ता कचौड़ियाँ निकालकर रख दीं। तभी मरिया ने अपनी वाइन की बोतल भी निकाली और सभी ज़ोर से "चियर्स" कहकर चिल्लाए।

सिया गर्व से उन हँसते-खिलखिलाते जीवन्त लोगों को निहार रही थी, जिन्होंने किसी मजबूरी से या हताशा से नहीं, बल्कि अपनी जीवन गरिमा और खुशी से जीने के लिए यह विकल्प चुना था। उन्होंने आश्रय नहीं, अपने लिए एक घर चुना था!

shikha.v20@gmail.com

आधी माँ, अधूरा कर्ज़

डॉ. आरती 'लोकेश'
दुबई, संयुक्त अरब अमीरात

आज सुबह अपनी हवेली से निकल छोटी माँ की हवेली में आई, तो गहमा-गहमी मची हुई थी। दोनों हवेलियों के मध्य दालान वाला एक नाटा-सा दरवाज़ा ही पार करना था, जिसे पार करते ही आज नज़ारा कुछ बदला हुआ मिला।

बरामदे की अच्छी तरह धुलाई-पुछाई की गई थी। बाहर गार्डन और बरामदे की छोटी-सी बगिया के कुछ मृतप्राय-मुरझाए पौधों की जगह मौसमी फूलों वाले नए पौधों को दी गई थी। अनार, अमरूद, नीम, गुलमोहर के सूखे पत्तों को बटोरकर दोनों हवेलियों के मध्य, किनारे पर बने कम्पोस्ट पिट के हवाले कर दिया गया था। बोटनी की प्राध्यापिका होने के नाते मैं पर्यावरण को लेकर सजग रहती थी। बगिया में नई बहार-सी खिल आई थी।

माली सेम की सूखी बेल को बाँस की खरपच्चियों के जाल से उतारने पर तुला था। वे अकड़े हुए मुड़े-तुड़े तने अपना स्थान छोड़ने को तैयार नहीं थे। मैंने देखा कि अंगूर की नाज़ुक बेल सेम की सूखी-सख्त टहनियों का सहारा लेकर ऊपर चढ़ रही थी। अत: मैंने उसे सेम की बेल को उखाड़ने से रोक दिया। खीरा, ककड़ी, तुरई और टिंडे की बिखरी तथा उलझी बेलों को करीने से स्थान-स्थान पर बाँधकर सुंदर रूप दे दिया।

अंदर की रौनक भी चमक रही थी। हवेली के कोने-कोने में सजी हुई हर वस्तु को झाड़-पोंछकर पुन: व्यवस्थित किया गया है। बैठक सुगंधि से महक रही थी।

"रुद्रा! यह वही 'बखूर' बर्नर है न, जो रिधवान दुबई से लाया था?" मैंने बैठक में प्रवेश करते हुए छोटे भाई से पूछा।

"अरबी 'ऊद' भी दुबई की है जीजी! जो बर्नर में सुलग रही है। ...रिधवान तो अब दुबई का ही हो गया है।" रुद्रा के पहले वाक्य से दूसरे तक के सफ़र में चहकता स्वर निष्प्राण हो गया था।

"अरे! इस मनीप्लांट के पीले पत्ते भी तोड़ दो।" छोटी माँ की आवाज़ उभरी।

वे हमेशा की तरह वहीं बैठी हुई थीं... उसी विशेष कुर्सी पर।

"शशि! मुझे पेशाब के लिए तो ले चल ज़रा!" मुझे देखते ही वे बुदबुदाईं।

अपनी रिटायरमेंट के बाद से मैं छोटी माँ के आस-पास बनी रहती थी। उनके अनकहे शब्द उनकी आँखों में तैरना शुरू करते, तो मैं हरकत में आ जाती थी। वे बस मुझे देख भर लेतीं और मैं समझ जाती थी कि उनके ब्लैडर की क्या स्थिति है। मैं कॉलिज की प्रिंसिपल बनकर रिटायर हुई थी। युवा छात्र-छात्राओं की आँखों से ही उनकी सभी करतूतें पढ़ लिया करती थी, अच्छी भी और बुरी भी। यही पढ़ाई छोटी माँ को सँभालने में मेरे काम आ रही थी। मैं लपककर उनके पास पहुँच गई।

"अरे मेरी बाँह तोड़ देगी री शशि!" वे कहती रह गईं और मैं आव-ताव देखे बिना उनकी बाँह पकड़कर उन्हें खींचती हुई दौड़ी। मधुमेह की रोगी, सत्तर की काया, छोटा कद, दुर्बल तन; मैं उन्हें गोदी उठा के भी ले जा सकती थी। उनसे दुगुनी कद-काठी की थी मैं। वे परावलम्बी न महसूस करें - यह उनके मानसिक संतुलन के लिए लाभप्रद है।

आज घर में मची उथल-पुथल के चलते संभवत: उनके इशारे पर ध्यान देने से मैं चूक गई थी। उनके ये बोल सीधा खतरे के निशान से ऊपर बहती धारा के ही संकेत थे। बाथरूम से लौटकर छोटी माँ को उनकी कुर्सी पर बिठाते हुए मैंने कुशल दायित्व-निर्वहण की एक लम्बी साँस छोड़ी।

जिस कुर्सी पर पिताजी बैठा करते थे, वह उनके जाने के बाद से खाली रहती थी। छोटी माँ उस पर किसी को नहीं बैठने देती थीं। उसी कुर्सी पर रुद्रा की पत्नी भवानी आज सुनहरे किनारे वाली चम्पई रंग की धोती रख गई थी। मैं छोटी माँ को धोती में लपेटने लगी।

"शशि जीजी! आज छोटी माँ को डायपर पहना देना।"

रुद्रप्रताप की पत्नी भवानी का निर्देश आया। मैं उनकी धोती के पल्लू को करीने से जमाने में लगी थी।

रुद्रप्रताप मुझसे 10 साल छोटा था। छोटी माँ उसे 'बड़ा' कहकर बुलाया करती थीं - "जा, बड़े को बुला ला", "बड़ा यह काम कर देगा", "बड़े से पूछ लो" आदि। और 'छोटा' पुकारा जाने वाला भानुप्रताप मुझसे 15 साल छोटा था। अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई का एक प्रोजैक्ट करने वह सिंगापुर की कम्पनी में इंटर्नशिप के लिए गया था। उसे कंपनी भा गई और बड़ी बात यह कि कंपनी को वह भा गया, तो वह वहीं बस गया। अपनी मलेशियन पत्नी और दो बेटों के साथ उसने अपनी दुनिया वहीं बना ली है। सबकी अपनी-अपनी छोटी-सी दुनिया है। दुनिया अब छोटी भी, तो हो गई है। पिछले साल छोटी माँ बीमार हुई, तो वह थाईलैंड के दौरे पर था। वहीं से फ़्लाइट लेकर अगले ही दिन आ पहुँचा। छोटी माँ की बुझी आँखों की चमक उसे देखकर लौट आई थी। शायद उनके मन में जीने की साध 'छोटे' को देखकर ही जागी थी। उसके दोनों बेटों की अपने हाथों से शादी करने का मोह उन्हें उर्जावान बनाए हुए था। ये दोनों पोते अभी स्कूल ही में थे।

"जीजी! डायपर निकाल लाता हूँ पैकेट में से। मीडियम साइज़ का ही आएगा न इन्हें?" रुद्रा जैसे जल्दी-से-जल्दी छोटी माँ को डायपर पहनवा देना चाहता था।

"अब इनका क्या साइज़ रुद्रा! आने को तो स्मॉल भी फ़िट हो जाएगा।" मैं उनके पैरों में चप्पल पहनाती हुई बोली।

"बात फ़िटिंग की नहीं जीजी!... लीकेज की है!" रुद्रा ने ऐसे नाक-भौं सिकोड़ीं, जैसे कि लीकेज हो चुकी हो और वह दुर्गंध से मरा जा रहा हो।

पिछले साल की बीमारी के बाद छोटी माँ बहुत झटक गई थीं। उनके डायपर का ही आकार घटकर लार्ज से मीडियम नहीं हुआ था, उनके रौबीले अस्तित्व का आकार भी सिमट गया था। उनके दिनभर बड़बड़ाने पर कई पहरे लग चुके थे।

मुझे रिटायर हुए पाँच साल हुए थे। कॉलिज की दो साल की एक्स्टेंशन की मनुहार को मैंने अस्वीकार कर दिया था। रुद्रा और भवानी मेरी रिटायरमेंट से अपनी सुविधा की आस लगाए हुए थे। छोटी माँ जब किसी की भी नहीं सुनतीं, तब मेरी बात चुपचाप मान लेती थीं। तब ऐसा लगता था कि वे कोई छोटी बच्ची हैं, छोटी माँ नहीं। या यूँ कहें कि मैं जानती हूँ कि उन्हें कैसे किसी बात के लिए मनाना है। फिर भी उन्हें डायपर पहनाना तो एक युद्ध लड़ने जैसा ही था। वे पैरों की सेना को इतना अकड़ा लेती कि उन्हें डायपर के बीच से निकाल ले जाना किले को फ़तह करने के बराबर ही होता।

"छोटी माँ! डायपर पहन लोगी?" उनकी अनुमति नहीं, आवश्यकता पर मेरा बल अधिक था। डायपर उन्हें दुश्मन दिखाई देता था। ज़ोर-ज़बरदस्ती से पहन लेतीं, तो मौका देख बाथरूम में उतार फेंक आतीं।

"अरी! इत्ती-सी थी तू शशि! इत्ती-सी... जब तुझे मेरी गोद में डाला। तेरा नाम बड़ी माँ ने रखा था... मैं सूर्यबाला और तू शशिबाला! तू कोख में कब पड़ी पता नहीं चला। पर गोद पड़ी का खूब याद है मुझे। फिर तो एक के बाद एक कई बच्चे गिरे। कच्ची उम्र थी न! तब इत्ते साल बाद बड़ा पैदा हुआ।" छोटी माँ की अतीत की कैसेट एक बार चल पड़ती, तो पूरी टेप खत्म होने पर ही रुकती थी। घर के बच्चे-बच्चे को 'बच्चा गिरना', 'कोख पड़ना' जैसे शब्दों का गूढ़ अर्थ पता हो गया था। अब तो शर्म भी आती थी, इस किस्से को सुनकर। कभी अगर यह कोख पुराण मेरे किशोर पोते-पोतियों के सामने खुल जाता, तो मैं उन्हें पढ़ने भेज दिया करती थी।

"हाँ छोटी माँ! मुझे पता है कि मैं कब पैदा हुई... रुद्रा कब हुआ और भानु कब! हम सबको सब मालूम है।... तुम डायपर पहनोगी?... पहनाऊँ डायपर?... पहन लोगी आज?" मैंने स्वर थोड़ा ऊँचा कर युद्ध से पहले साम-दाम-दंड-भेद के हथियार चलाने चाहे।

"अरी चिल्ला क्यों रही है? मैं कोई बहरी थोड़े ही हूँ।" कहकर छोटी माँ ने नाराज़गी से मुँह फेर लिया।

"शशि जीजी! कामाख्याप्रसाद आ रहे हैं। अरिहंत के रिश्ते की बात करने।... कहीं कोई तमाशा न हो जाए आज। वे मानेंगी भी नहीं। दूसरे कमरे में बैठेंगी भी नहीं। आपका यहाँ होना बहुत ज़रूरी है... नहीं तो, छोटी माँ को आप अपनी हवेली में ले जातीं।" रुद्रा की परेशानी चेहरे पर छलक रही थी।

पिताजी बहुत बड़े ज़मींदार थे। बड़ा रुतबा था उनका।

भानु के जन्म के बाद से ही वे बीमार रहने लगे थे। सालभर में चल बसे। अट्ठावन के पिताजी के गुज़रते ही अट्ठाइस की छोटी माँ विधवा हो गईं। पिताजी अपनी सारी जायदाद छोटी माँ और मेरे नाम आधी-आधी कर गए थे। नानी, जिन्हें हम सब 'बड़ी माँ' कहते थे, उनका हाथ मेरे हाथ में देकर, उन्होंने मुझसे उनका ख्याल रखने का वचन लिया था। 'बड़ी माँ' एकमात्र 'वस्तु' थीं, जो पिताजी को दहेज में मिली थी।

हम तीनों भाई-बहनों की पढ़ाई उनकी छोड़ी हुई ज़मीन-जायदाद के कारण सुगमता से हुई। एक-दूसरे के साथ सटी हुई दो बड़ी हवेलियाँ, एक छोटी माँ के नाम और एक मेरे नाम कर दी गई। मैं दसवीं में पढ़ने वाली अपने मालिकाना हक से अनजान थी। ऐसे अनूठे बँटवारे पर न छोटी माँ ने आपत्ति की, न बड़े होने पर रुद्रा या भानु ने ही सम्पत्ति का दावा ठोंका। वे चाहते, तो अपना बराबर का हिस्सा माँगते और कोर्ट-कचहरी में मामला घसीटते। शायद मैं ऐसी नौबत आने से पहले ही कलह से बचने के लिए हवेली उनको सुपुर्द कर देती। मैंने इन पर ममता लुटाई, तो इन्होंने भी हमेशा जीजी कहकर सम्मान दिया; ममता का मान रखा। कागज़ों पर बँटवारा दरो-दीवारों पर हावी नहीं हुआ।

मैं रुद्रा और भानु का ध्यान रखती और छोटी माँ, 'बड़ी माँ' का। मैं बस उनके पास बैठकर बंगाल के अकाल की भीषण कहानी सुना करती थी। बारहवीं पास करते ही मैं दिल्ली के इंद्रप्रस्थ कॉलिज में पढ़ने चली गई। वापस कोणेश्वर नगर में प्राध्यापिका बनकर ही आई, तो छोटी माँ ने मेरे नाम की हवेली की साफ़-सफ़ाई करवा, रहने के साधन जुटाए। कोचिंग कक्षाएँ लेने से मेरे पास बहुत से छात्रों व प्रोफ़ेसरों का आना-जाना लगा रहता था। फिर भी अपना कर्त्तव्य समझ मैंने बड़ी माँ को अपनी हवेली में रखना चाहा, तो उन्होंने इन्कार कर दिया। वे कहतीं कि बेटी के घर का अन्न ग्रहण नहीं कर सकती। मैं हँसती कि यह पाप तो आप छोटी माँ के घर में भी कर रही हैं। वे कहती कि सूर्या तो मेरे पिछले जन्म की माँ है। बात हँसी-हँसी में टल जाती। छोटी माँ उनकी सेवा जी-जान से करती रही। मैं अपने परिवार, कॉलिज की नौकरी और कोचिंग सेंटर पर ध्यान केंद्रित करती रही।

बड़ी माँ को गुज़रे दस साल हो गए हैं। उनके जाने के बाद से छोटी माँ बीमार रहने लगी, जबकि उनके सामने तक खूब भली-चंगी थीं। वे तब से ही सफ़ेद धोती पहनने लगी हैं, जो बड़ी माँ ने उन्हें नहीं पहनने दी थी। विधवा छोटी माँ सदा रंगीन कपड़ों में रहतीं। बिंदी, लिपस्टिक, चूड़ी-पाजेब-बिछुए आदि सब पहने रहीं। केवल सिंदूर ही उन्हें त्यागने दिया था।

"लो जीजी! पहनाओ छोटी माँ को डायपर।" रुद्रा की आवाज़ से जैसे मेरी तंद्रा टूटी। रुद्रा डायपर लिए सिर पर खड़ा था। मैं उन्हें और डायपर को लेकर बाथरूम की ओर चल दी।

"इत्ती-सी थी तू जब बड़ी माँ ने तुझे मेरी गोद में डाला और कहा कि तुझे मैंने जन्म दिया है।... बता शशि! आज कैसी तो हालत हो गई है कि बेटी से गू-मूत करवाना पड़ रहा है।" छोटी माँ की आँखों की कोर गीली हो उठी थीं।

"तुम किसी सेविका को टिकने भी तो नहीं देती हो। वह दाई माँ विमला तो खूब अच्छी सेवा-टहल करती थी तुम्हारी। पर तुम्हें वह भी रास नहीं आती थी। उसे भी तुमने गाली दे-देकर भगा दिया। उस लड़की सरिता को तो तुम्हारी पसंद से ही रखी गई थी, तुमने उसे भी दुत्कार दिया।" मैं अपनी शिकायतों का पिटारा खोल बैठी।

सच में, छोटी माँ की सेवा की नीयत होते हुए भी चौबीसों घंटे उनकी परछाईं बने रहना बहुत असुविधाजनक तो था ही। ज़रा मेरी आँख लगती, तो वे खुद ही धोती उठाकर चल पड़तीं और कहीं-न-कहीं ठोकर खाकर गिर पड़तीं और ठोडी, नाक, बाँह, घुटने पर नील उभर आते। एक आया को अगर वे सह लें, तो मेरा जीवन भी कुछ आसान हो जाए। मेरा कोचिंग सेंटर भी मेरे दोनों बेटे और बहुएँ संभाल रहे हैं। बोटनी की क्लास लेने के लिए मुझे ही जाना पड़ता है। इतने में ही कुछ-न-कुछ कांड हो जाता है। रात को सराय की तरह सोने भर जाती हूँ अपनी हवेली में, वह भी छोटी माँ को सुलाने के बाद। कभी-कभी तो छोटी माँ बड़बड़ाती ही रहती हैं और सारी रात आँखों में काट देती हैं। उन्हें देख अपने आने वाले समय से डर लगता है। फिर मेरी तो कोई बेटी भी नहीं है।

छोटी माँ जो इतनी विनम्र, ममतामयी और दरियादिल मानी जाती रही हैं, मेरी रिटायरमेंट के बाद से बिल्कुल अड़ियल टट्टू बन गई हैं। न रुद्रा के हाथ से कौर लेती हैं और

नाही भवानी के हाथ से धोती और नाही किसी नौकरानी को नहलाने देती हैं। जब तक मैं उनकी हवेली में न आ जाऊँ, वे हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रहती हैं। हरेक परिचारिका में कुछ-न-कुछ नुक्स निकाल लेती हैं। घर के नौकर-चाकर भी उनके पास जाने से कतराते हैं और मेरा मुँह ताकते रहते हैं।

"अब निकाल तो नहीं दोगी इसे?" मैंने छोटी माँ से हामी भरवानी चाही कि वे मेहमानों के घर में बने रहने तक डायपर न निकालें।

"किसे?... कोई नई आया पकड़ ली है?" छोटी माँ बाथरूम के दरवाज़े से बाहर झाँकने लगीं।

"मेरी मजाल है कि कोई आया रख छोड़ूँ तुम्हें!... ये... डायपर का पूछ रही हूँ।" मैंने डायपर की इलास्टिक खींचकर हलके हाथ से छोड़ते हुए उनके बदन पर उसका अहसास करवाना चाहा।

"भाड़ में जाए ये डायपर-वायफर!" कहती हुई वे चौखट पकड़ बाहर को चलने को उद्यत हुईं। "बड़ी माँ को क्या डायपर पहनाते थे तुम लोग? ...छियासी की हो गई हैं वे, छियासी की। ...समझी शशि!" छोटी माँ क्या बताना चाह रही थीं कि वे छियासी की भी पेशाब आदि को सँभाल सकती हैं या कि वे बड़ी माँ को बिना डायपर के सँभाल सकी थीं या फिर कुछ और ही; मैं मूढ़ समझ न सकी थी। उनको बहका हुआ मानकर मैंने जिरह नहीं की।

बड़ी माँ की उमर तो छोटी माँ को खूब याद थी। अपनी उमर के हिसाब में वे गड़बड़ा जाती थीं। कभी खुद को साठ का बतातीं, कभी सत्तर, कभी पैंसठ का! मैं उनकी बात सुनकर बस मुस्करा देती। रुद्रा हँसता कि पैंसठ कि तो तुम भी हो जीजी! माँ-बेटी साथ-साथ पैदा हुई थीं क्या? हँसी का फव्वारा छूट पड़ता।

मैं मन में सोचती कि एक माँ का जन्म, तो सच में अपनी औलाद के साथ ही होता है। उससे पहले, तो वह एक गुड़िया होती है, बस! औरों के हाथ की कठपुतली।

"छोटी माँ!"- मैं कुछ आगे बोलती कि छोटी माँ की टेप चालू हो गई - "अरे! इत्ती-सी थी तू, जब तू मेरी गोदी में डाली गई। नीम बेहोशी की तो उमर थी मेरी; और मैं माँ बन गई थी। ... कोई डायपर-फायपर नहीं होते थे तब। खूब पोतड़े बदल-बदलकर पाली है मैंने तुझे।" हर बात के साथ यह कथा चिपका ही देती थी।

"छोटी माँ सुनो!" हम पुन: कमरे में दाखिल हो चुके थे। उन्हें सलीके से बिठाते हुए मैंने कहा - "मेहमान आ रहे हैं आज अरिहंत के रिश्ते के लिए। ...तुम बड़बड़ करना चालू मत कर देना। अपना टेपरिकॉर्डर तनिक बंद रखना।"

मेहमानों के सामने क्या बोलना है, क्या नहीं, छोटी माँ को सब सिखाने का ज़िम्मा मेरा ही था। जैसे उन्होंने मुझे सब सिखाया होगा, जब वे मेरी माँ बनीं। उन्हें अच्छी तरह ज्ञात था कि टेपरिकॉर्डर हम किसे कहते हैं।

"कौन आ रहा है बड़े? वह कामाख्याप्रसाद? छोरी स्वरांगी का बापू?" छोटी माँ ने प्रत्युत्तर के लिए रुद्रा की आँखों में झाँका। मैं हैरान थी कि एक बार बताया गया नाम छोटी माँ ने तोते की तरह रट लिया था। आज तो वे पूरी तरह जागरूक लग रही हैं... दिमाग की खिड़कियाँ खोलकर।

रुद्रा उदास और आतंकित हो उठा। नाखुश तो वह पहले से ही था कि अरिहंत ने शादी के नाम पर उसकी नाक में दम कर छोड़ा था। पहले तो वह शादी को राज़ी ही नहीं होता था। वह पी.एच.डी. पूरी किए बिना परिवार की ज़िम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं था। 4-5 साल लगातार समझाते-बुझाते रहने पर भी जब वह नहीं माना, तब उससे छोटे रिधवान के सिर पर सेहरा बाँध दिया गया। रिधवान की दुबई में नौकरी लगी, तो वह सपरिवार वहीं बस गया। घर पर फिर बुढ़ापा छा गया।

रुद्रा ने, भवानी ने, छोटी माँ और यहाँ तक कि मैंने भी अरिहंत की शादी की उम्मीद ही छोड़ दी थी। इस बार उसने खुद लड़की पसंद की थी। लड़की तलाकशुदा थी। बस यही परेशानी रुद्रा को खाए जा रही थी। उसके अविवाहित बेटे की बहू एक तलाकशुदा? सारी कुँआरी कन्याएँ समाप्त हो गई हैं क्या? किसी से भी कर लेता। उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश की ना सही, बिहारिन, बंगालन, गुजरातन, मराठिन। कहीं से भी बहु ले आता। ईसाई, मुसलमानी, नायिन-धोबिन, कहारिन कोई भी होती - कुँवारी तो होती! ब्याहता ही मिली इसे... तलाकशुदा! पर पुत्र के हठ के आगे लाचार पिता को झुकना पड़ रहा था। उसके सिर पर सेहरा देखने का मोह काँटों की राह ले जाता था।

"अरी शशि! इस मनीप्लांट के पीले पत्ते नहीं हटवाएगी क्या? कब से कह रही हूँ... शुभ घड़ी में विघ्न पड़ता है।" छोटी माँ के याद दिलाते ही मैंने आया को पीले पत्ते छाँट कम्पोस्ट पिट को समर्पित करने का संकेत किया। ऐसे खाद बनाना मैंने ही माली को सिखाया था। काश! शुभ विचारों में अड़चन डालने वाली सोच को भी उखाड़कर उर्वरक बनाया जा सकता!

"हाँ छोटी माँ! वही... स्वरांगी..." वह जैसे भर आए गले में थूक सटकता हुआ बोला।

"बुला ला भीतर। द्वार पर मोटर रुकी है उनकी।" छोटी माँ के कहने पर हम सबकी निगाहें फाटक के बाहर गईं, तो देखा सचमुच वे लोग आ चुके थे।

अरिहंत को भी बैठक में आने की आवाज़ लगाई गई थी, पर वह नहीं दिखा। नौकर दौड़कर मेहमानों को अंदर लिवा लाए। कुल तीन मेहमान थे। रुद्रा ने स्वागत में हाथ जोड़े, बुझे मन को हथेलियों में दुबकाने का उपक्रम हुआ। एक कामाख्याप्रसाद स्वयं, एक उनका भाई और तीसरा व्यक्ति उनका जीजा या साला रहा होगा। चाय-पानी हुआ। रुद्रा ने मेरा और छोटी माँ का परिचय कराया। तीनों ने बारी-बारी उनके पैर छूए तो वे गदगद हो गईं और सब हिदायत भूल गईं।

"शशि को देख रहे हो न! वह इत्ती-सी थी, जब मेरी गोद में आई। मरते-मरते बची..." छोटी माँ का टेप चालू ही हुआ था कि मैंने उन्हें रोका।

"छोटी माँ...!" - मैंने आवाज़ में तनिक रोष भरकर कहा और आँखें तरेरीं। हालाँकि आज टेप में कुछ नई धुन बज उठी थी। कुछ नए बोल जाने कैसे सुनाई दे रहे थे। आज ये कोई दूसरी टेप लगी थी छोटी माँ के कंठ में या अपनी बात सुनी जाने के लिए वे उसमें नए मसाले का बघार लगा रही थीं। एक नया प्रश्न मेरे मस्तिष्क को मथने लगा।

"छोटी माँ ?" कामाख्याप्रसाद ने दोहराया और उत्तर की आशा में रुद्रा और मेरी ओर देखा। उन्हें यह संबोधन अटपटा-सा लगा।

"दरअसल दस वर्ष पूर्व तक मेरी नानी जीवित थीं। माँ उन्हें 'बड़ी माँ' कहती थीं। उन्हीं की देखा-देखी हम सब भी अपनी नानी को 'बड़ी माँ' कहते थे और माँ को 'छोटी माँ'।" रुद्रा ने लपककर जवाब दिया। कहीं कामाख्या जी अपने ही मन की उलझन में बुने किसी अन्य निष्कर्ष पर न पहुँच जाएँ, तुरंत शंका का निवारण आवश्यक था।

"अरे वाह! बड़ा खुशकिस्मत है अरिहंत कि उसे अपनी दादी और परनानी का भी प्यार मिला है। और आपके पिताजी... ?" खुशी ज़ाहिर करते-करते वे एक बार फिर खोजी निगाहों से तलाश करने लगे। पुत्री का पिता धीरे-धीरे एक जासूस में तब्दील हो जाता है। और एक बार दूध से जला हुआ पिता तो छाछ की पूरी छान-बीन करता ही है। तब फिर फूँक मारकर पीता है।

"जी, पिताजी तो बहुत पहले ही चले गए थे।" अबकी बार स्पष्टीकरण मैंने दिया था।

"मैं अट्ठाइस की थी, बड़ा पाँच-छः बरस का... छोटा तो इत्ता-सा था। बड़ी माँ भी कोई सैंतालीस की रही होंगी जब शशि के पिता ने दम तोड़ा।" छोटी माँ ने झट से हरेक की उम्र का बहीखाता खोल के रख दिया। जाने क्यों नहीं बताया कि पिता के प्राण त्यागते समय मैं कितने की थी। क्या इसमें छोटी माँ की कोई सूझ-बूझ है, लापरवाही है या बस ऐसे ही?

"पिताजी को हैज़ा हो गया था। उस उम्र में उनका शरीर कमज़ोरी झेल नहीं पाया। वे पचास से ऊपर के थे। हमारी माँ और पिताजी की उम्र में काफ़ी अंतर था।" रुद्रा ने नज़रें झुकाए जवाब दिया। पिताजी माँ से तीस साल बड़े थे, इस बेमेल विवाह पर उसे शर्मिंदगी होती थी।

मेहमानों की आँखें और अचरज से फैल गईं। मैंने बात सँभालनी चाही।

"मैं आपको बताती हूँ... हमारी नानी जो थीं, वे बंगाल की थीं। बंगाल में अकाल के समय हमारे नानाजी और कई बड़ी मौसियाँ मारी गईं, यानी छोटी माँ की तीन बड़ी बहनें। बड़ी माँ ने छोटी माँ के साथ किसी तरह दिल्ली की ट्रेन पकड़ ली। यहाँ पिताजी दो पत्नियों को एक-एक कर खो चुके थे। संयोग से पिताजी के घर में उन्हें पनाह और सम्मान मिला।" उनकी महानता सिद्ध कर मेरा स्वर गर्व-युक्त हो चला था।

"ओह! तब तो आपके पिताजी को बड़ी माँ से विवाह कर लेना चाहिए था।" कामाख्याप्रसाद ऐसे यकायक बोल उठे

जैसे सारी दलीलें सुन चुकने के पश्चात् किसी केस का फ़ैसला सुना रहे हों।

"बड़ी माँ से कैसे करते? वे तो विधवा थीं।" रुद्रा तपाक से बोला और सब सन्न रह गए। सबके मुँह पर ताले जड़ गए। कुछ देर सब जड़वत बैठे रहे।

कामाख्याप्रसाद जी का साहस ही नहीं हुआ कि वे रिश्ते की बात कर सकें। मेरे मन में भी स्वरांगी को लेकर हज़ार प्रश्न अनसुलझे ही रह गए।

"जी, अब आज्ञा दीजिए।" कामाख्याप्रसाद हिम्मत करके खड़े हो गए और हाथ जोड़ते हुए बोले। इस क्षण ऐसा वातावरण बन गया था कि आगे कुछ कहना-सुनना कठिन हो गया था। तीनों मेहमान सिर झुकाए निकल गए।

उनके चले जाने के बाद भी हवेली में साँप सूँघने जैसा माहौल बना रहा। कामाख्याप्रसाद का वाक्य हमें अंदर तक छील गया था। बड़ी माँ मुझे बताया करती थीं कि बंगाल में वे अपने पति की दूसरी दुलहन बनकर गई थीं। पहली पत्नी की चार बेटियाँ थीं, किंतु बेटा नहीं होता था। बेटा बड़ी माँ दस साल में भी नहीं दे पाई थीं। उन पर बाँझ होने का ठप्पा लग गया था। पूरा गाँव अकाल की चपेट में आ गया। जब घर में केवल ये दो प्राणी ही जीवित बचे, तब वे अपनी जान बचाने के लिए वहाँ से निकल भागीं, किंतु सौतेली बेटी को वहाँ छोड़ते मन नहीं माना और उसे भी साथ ले आईं।

फ़्रॉक पहने ग्यारह साल की बच्ची की बजाए इकत्तीस साल की युवती एक सक्षम पुरुष को अधिक मोहित करेगी। बहुत संभव है कि पिताजी युवा स्त्री से विवाह करने के इच्छुक हों, किंतु परिजनों ने विधवा की बेटी से विवाह करवाकर आश्रयदाता का धर्म निभाने दिया हो। इकतालीस वर्षीय पिताजी विवाह के कुछ माह बाद ही कोणेश्वर की हवेलियाँ बंद कर श्यामली रहने चले गए, जहाँ मैं पैदा हुई थी। जमी-जमाई ज़मींदारी छोड़कर कोई श्यामली में चार साल बिताने क्यों जाएगा भला?

क्या बारह बरस की बच्ची भी माँ बन सकती है? हर पिता पहले एक पुरुष होता है। प्रथम दृष्टि का प्रेम अनानुबंध बिन गठबंधन जब निर्बाध बहा होगा, तब परिणति मेरी उत्पत्ति में हुई होगी। दुनिया की नज़रों में वे विधवा थीं, तो सधवा बस उनकी नादान बेटी ही थी। उसका शरीर भले ही माँ बनने के उपयुक्त नहीं था, किंतु ओहदा... माँ बनने के अधिकार से युक्त था। जी कड़ा करके कदाचित अपनी संतान को अपनी सौतेली बेटी की गोद में उसकी बताकर डाला होगा। युवा हुई, छोटी माँ ने जब पत्नी धर्म निभाया, तो भाइयों का जन्म हुआ। मेरे और रुद्रप्रताप की आयु में इतने अंतर भी इसी कारण रहा होगा।

इस नाते से मैं छोटी माँ की सौतेली बहन हुई और रुद्रा की मौसी। या फिर पिता के रिश्ते से देखो, तो छोटी माँ की सौतेली बेटी और रुद्रा की सौतेली बहन। अपने प्रेम और परिवार दोनों को चुपचाप निभा गए वे... संपत्ति के बँटवारे में भी और उत्तरदायित्व के बँटवारे में भी।

तो क्या मैं छोटी माँ के स्नेह की नहीं, घृणा की अधिकारिणी हूँ? मैं उनकी बेटी ही नहीं हूँ। तभी तो बड़ा और छोटा, ये ही दोनों हैं उनके। वरना मेरे होते बड़ा, बड़ा कैसे हो गया ? ...नहीं-नहीं! ऐसा नहीं है! प्रेम तो वे मुझसे ही सबसे अधिक करती हैं। मैं उनकी आधी बेटी हूँ और वे मेरी पूरी माँ! अपने वात्सलय से मुझे सींचती छोटी माँ! ...अपनी सौतेली माँ की बेटी और अपनी सौतेली बेटी से प्रेम... क्या कर सकता है कोई? क्या इतनी महान हैं छोटी माँ ? ...या यह सब मेरी मनगढ़ंत कहानियाँ हैं। कहीं कुछ सच्चाई भी है इसमें? बड़ी माँ तो बाँझ थीं बाँझ। उन्होंने स्वयं मुझे बताया था।

बाहर गिलहरियों की आवाजाही की आहट हुई, उनमें छीना-झपटी शुरू हुई, तो ध्यान बाहर गया। सुबह अंगूर की जो बेल सेम की सूखी पतली डंडी पर चढ़ने को आतुर थी, अब तक उसने सूखी बेल पर अपना पूरा अधिकार जमाकर उसकी शुष्कता को छिपा लिया था और उसे अपने हरे रंग का कम्बल देकर रंग दिया था। गिलहरियाँ उसी पर फुदक रही थीं।

"छोटी माँ! यह मरते-मरते बचने वाली बात कब की है?" मैंने सहसा प्रश्न कर डाला। चुप्पी तोड़ने वाली मैं ही थी। मेरे मन की ऊहापोह में यह एक पहेली धड़कन को रोकने पर अड़ी थी।

"सुन बड़े! मैं कहे देती हूँ... तू लिख के रख ले... उस छोरी स्वरांगी का कोई बालक भी होगा। जो तुम लोगों को बाद में

पता चलेगा।" छोटी माँ ने ताल ठोंक के कहा और ठसके से सिर हिलाया।

यह छोटी माँ किस आधार पर कह रही हैं? ऐसी तो कोई बात सामने नहीं आई। नाही कामाख्याप्रसाद के मुँह से कुछ ऐसा निकला। मैंने और रुद्रा ने एक-दूसरे को चौंककर देखा कि यह खुलासा कब हुआ ?

"ऐसा नहीं हो सकता छोटी माँ! वे लोग हमसे छुपा लेंगे क्या इतनी बड़ी बात?" रुद्रा जैसे फट पड़ा था क्षुब्धता से। पहले ही आघात कम था, उसके हृदय को कि एक और संशय का घात आ खड़ा हुआ।

"तू मत मान... पर गाँठ बाँध के रख ले... गलत साबित हो, तो फिर कहियो। ...अरिहंत से पूछ देख। उसे सब पता होगा।" छोटी माँ के दिमाग की ताकत और याददाश्त आज दस साल पहले जैसी हो उठी थी। शायद उम्र संबंधी परेशानियों को पीछे धकेलकर अपने पोते की शादी की लालसा ने जिह्वा पर कब्ज़ा कर लिया था।

"हम नहीं करेंगे ऐसे झूठों के घर में रिश्ता फिर। मुझे तो पहले ही यह तलाकशुदा लड़की पसंद नहीं आ रही है। दुनिया की सारी बिन ब्याही लड़कियाँ मर गई हैं क्या? ...तुम हाँ कर दोगी छोटी माँ ऐसी लड़की को? तुम हाँ करती हो जीजी?" रुद्रा ने रौद्र मुखमुद्रा से मुझे देखा।

"हाँ बड़े! मैं करती हूँ हाँ! कलेजा चाहिए कलेजा... पराई जाई को अपनाने के लिए।" छोटी माँ बोलीं।

"छोटी माँ?" मैं भी आश्चर्य से लगभग चीख पड़ी। यह अनजानी स्वरांगी से हमदर्दी थी? आजकल तो छोटी माँ नीम चढ़ा करेला हो चुकी हैं। अकारण यह उदारता! मन ने धीरे से अपने कपाट खोले। पिताजी द्वारा की गई अनीति को वह नीति बदलकर सुधारना चाहती हैं, शायद। मुझे अपनी उथली सोच पर ग्लानि-सी हो आई।

"रुद्रा! बात कुँआरी और ब्याहता की नहीं है,... तलाकशुदा की भी नहीं है;... बात है प्रेम की। जो जिससे प्रेम करता है, उसे वैसा ही स्वीकारने का दम रखना चाहिए। हमें इन दोनों की खुशी का रोड़ा नहीं बनना चाहिए।" दिमाग की जगह दिल से निष्पक्ष काम लिया था मैंने। अवचेतन में अपनी कल्पना के घोड़े भी जागकर हिनहिना रहे थे।

"हाँ है! उसकी एक बेटी भी है एक साल की।" तभी अरिहंत का स्वर सुनाई दिया। वह कब घर में घुसा और कब से सारा वार्तालाप सुन रहा था, किसी को पता न चला। हम कुछ सोच पाते, इससे पहले ही यह धमाका भी हो ही गया।

"...मैंने स्वरांगी को वचन दिया है कि मैं शादी उसी से करूँगा। उसकी बेटी को कानूनन गोद लूँगा। ये रिश्ते के चोंचले और पत्री दिखाने का नाटक बंद कीजिए आप लोग। हम दोनों ने कोर्ट मैरिज के लिए अर्ज़ी लगाने का फ़ैसला किया है।" उसने दो टूक सुना दिया।

फिर वह छोटी माँ के गले लगते हुए उनके पासवाली कुर्सी पर बैठ गया। छोटी माँ ने उसकी पीठ थपथपाई। वह उठने लगा, तो एक झुर्रीदार हाथ ने उसे पुन: उस कुर्सी पर बिठा दिया। उस कुर्सी की, पिताजी से बेहतर एक आदर्श पुरुष की तलाश अब पूरी हो गई थी।

"सुन शशि! तू इत्ती-सी थी। मरते-मरते बची थी। बची थी बड़ी माँ के दूध से। मैं तो बच्ची-सी थी। मेरे शरीर में तो जान नहीं थी। ऊपर से अकाल का मारा बदन। बड़ी माँ का कर्ज़ है, उन्होंने तुझे दूध पिलाया।" वे अरिहंत का हाथ पकड़े-पकड़े ही बोलीं। आज छोटी माँ की घिसी-पिटी टेप वाकई में बदली गई थी। मैं हतप्रभ रह गई। मुझे अपनी कल्पनात्मक कहानी का आधार स्तम्भ मिल गया था।

"बड़ी माँ तो बाँझ थीं। दूध कैसे उतरता था फिर?" उनके दिमाग के बहकने का अंदेशा अभी खत्म नहीं हुआ था, हालाँकि पिछली कुछ घटनाएँ चीख-चीखकर उसके दुरुस्त होने की गवाही दे रही थीं।

"अरी शशि! ये कहाँ सुन लिया तूने? उनके गर्भ ठहरते ही गिर जाता था। 6-6 बच्चे गिरे उनके। दूध तो कच्चे गर्भ में भी उतर आता है।" छोटी माँ का स्वर दृढ़ हो गया, आँखें चमक उठीं जैसे किसी रहस्योद्घाटन के समय मनुष्य पलकें नहीं झपकाता, आँखों में आँखें डालकर बात करता है, वे भी कर रही थीं।

"बड़ी माँ ने खुद..." मैं ने अरिहंत की तरफ़ देखा। स्वर लड़खड़ा गए। रुद्रा भी आँखें फाड़े खड़ा था।

"अरी पगली! एक ऐब सारे ऐब ढक देता है। ...चल अब मुझे पेशाबघर ले चल।" वे ऐसे बोलीं कि कुछ हुआ ही न हो।

यहाँ मेरी दुनिया उलट चुकी थी। मेरा परिचय ही पलट चुका था। मेरा सिर चकरा रहा था।

"तुमने डायपर पहन रखा है छोटी माँ!" स्वयं को किसी तरह संयत कर मैं चलने को उद्यत हुई, तो याद आया।

"आँख मूँदकर, जान-बूझकर गंदगी कर दूँ क्या? नासमझ थी, तब और बात थी।" वे कहाँ से कहाँ बात बोल रही थीं।

"अरी! ...ले चल मुझे। तेरा पिंड थोड़े ही छोड़ूँगी मैं।" मुझे झकझोड़ती हुई वे बोलीं - "क्या सोच रही है कि छोटी माँ मरे, तो पीछा छूटे। तेरी बड़ी माँ की सेवा की है मैंने... चालीस साल। उन्होंने मुझ बेसहारा पर ममता का जो कर्ज़ चढ़ाया, उतार दिया मैंने।" - उन्होंने लापरवाही से हाथ नचाया।

मैं अवाक् खड़ी रह गई। एक हाथ से छोटी माँ को थामे मैं रुद्रा के गले से लिपट गई। रुद्रा ने अरिहंत की बाँह पकड़ उसे भी कलेजे से चिपटा लिया।

"तू इत्ती-सी थी जब बड़ी माँ ने तुझे मेरी गोद में डाला। बड़ी माँ तो बाँझ थीं न!" उनकी जिह्वा पर फिर पुरानी टेप चल पड़ी जैसे।

"हाँ माँ! मैं इत्ती-सी... तेरी वही इत्ती-सी बेटी हूँ। तेरी ममता का कर्ज़ मैं इत्ता-सा ही उतार पाऊँगी। तू वसूलना मुझसे हर जन्म में... अधूरा कर्ज़!" मेरी आँखों से आँसू झर उठे।

arti.goel@hotmail.com

आज की आधुनिक भारतीय नारी

वंदना रितेश सिंह
गुजरात, भारत

जो अपने लिए हर मोड़ पर लड़ना जानती है,
गलत को गलत और सही को सही कहना जानती है।

वही नारी! बेबसी के आलम में हर रोज़, घरेलू हिंसा झेलकर भी जी जाती है।
आँखों में आँसुओं का समंदर लिए, लबों से मुस्कुराती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी, पतिव्रत धर्म निभाती है।

भारतीय पत्नी होने का
यह कैसा मोल चुकाती है?

एक बार जो हो गया विवाह,
जीवित साँसों के साथ हर रोज़ मरी जाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

कभी कोख में मारी जाती है,
तो कभी स्वाभिमानी होने का दंड चुकाती है।

इतना सब कुछ झेलकर भी
जीवित रह जाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर पतिव्रत धर्म निभाती है।

कभी कहीं दहेज की बलिवेदी पर,
फाँसी पर टाँग दी जाती है।
तो कहीं जीवित साँसों के साथ भी,
हर रोज़ सती हो जाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

पति भी जब अत्याचारियों के साथ शामिल हो,
टूटकर बिखर जाती है।

फिर भी अपना सारा संचित प्रेम
बस उन पर ही लुटाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

दुर्गा काली का रूप होकर भी,
अपनों के लिए घरेलू नौकरानी भी बन जाती है!

फिर उन्हीं अपनों से प्रताड़ना भी पाती है,
तब भी उनके लिए कुछ अहित नहीं सोच पाती है,

हर किसी की सुरक्षा है ज़रूरी,
हर किसी के लिए भोजन है ज़रूरी।

अपने कार्यों से इतना शिक्षण,
हर किसी को दे जाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

कहीं कल्पना चावला बनकर आसमान में उड़ी जाती है,
कहीं धरा पर रहकर, हर किसी के लिए खुशियाँ
सजाती है।

यह भारतीय नारी है साहब!
जो हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

सीता, सती, अनुसूया की आधुनिक रूप बन जाती है,
त्रिदेवों को भी गोद में बालक बना खिलाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
जो हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

नौकरी भी करती है, घर भी चलाती,
मातृत्व का प्यारा-सा दायित्व भी निभाती है।

यह आज की आधुनिक भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

देश के लिए ही जीए, देश के लिए ही मरे,
झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का रूप होकर भी

खुद के ऊपर कुछ अत्याचार सहे जाती है,
अपनों को खुश करने में सपनों को पीछे छोड़ आती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

हर प्रतिभा की धनी होकर भी कहीं-कहीं
चार दीवारों में कैद रह जाती है।

अपने मन की व्यथा अपनी कविताओं में सुनाती है,
जीवन का आधार बालक रूप में प्राप्त महादेव को
बनाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

कुछ पुरुष राम तो बन नहीं पाते,
पर वह आधुनिक सीता बन जाती है।

फिर भी यह कैसी नारी है?
जो किंचित भी न घबराती है।

आत्मविश्वास से परिपूर्ण,
अपने सारे दायित्व निभाती है।

खुद को अलौकिक नारी कहती है,
अवसर पड़ने पर दुर्गा काली बन जाती है।

हाँ! वह अलौकिक नारी है,
जग को अपना पावन रूप दिखाती है।

पति चाहे प्रेम का मूल्य समझे न समझे,
पति का चरण स्पर्श किए बिना सो नहीं पाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
जो हर व्यथा सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

संपूर्ण प्रतिभा की धनी होकर,
कहीं आई.एस. अफ़सर, तो कहीं डॉक्टर बनकर,

अपने सामाजिक फर्ज़ भी निभाती है,
फिर भी कभी स्वार्थ के लिए पति को नहीं छोड़ती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

प्रकृति की देवी बनकर,
संपूर्ण संसार को अपने इशारों पर नचाती है।

वही घर में छुप-छुपकर रोती है
और कविताएँ बनाती है।

हाँ! कुछ इस कदर वह अपने मन को बहलाती है,
कभी गायन से कभी भजन से, ईश्वर को धरा पर
बुलाती है।

यह आज की भारतीय नारी है साहब!
हर दर्द सहकर भी पतिव्रत धर्म निभाती है।

vandanariteshsingh@gmail.com

हिन्द से प्यार

श्री नफे सिंह कादयान
गगनपुर, भारत

वंदे मातरम्, जन-गण-मन,
जय हिंद गाते डोलेंगे,
हमको हिंद से प्यार है,
भारत माता की जय बोलेंगे।

हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई,
अपना भाईचारा,
कई रंग के फूल खिले,
ये उपवन हमारा,
यहाँ बने मन्दिर, मस्जिद,
और गुरुद्वारा,
अनेकता में है एकता,
भारत जान से भी प्यारा,
मानव प्रेम धर्म हमारा,
सब जन संग ले लेंगे,
हमको हिंद से प्यार है,
भारत माता की जय बोलेंगे।

तीन रंगों से बना तिरंगा,
विश्व में लहराया,
धरा से लेकर मंगल तक,
हमने इसे पहुँचाया,
पृथ्वी, अग्नि, प्रक्षेपास्त्र,
तेजस यान बनाया,
भारत की रक्षा को हमने,
अभेद्य चक्र अपनाया,
दुश्मन की छाती पर चढ़,
ड्रोन हमारे टोह लेंगे,
हमको हिंद से प्यार है,
भारत माता की जय बोलेंगे।

गुलामी न, है आज़ादी,
पूरा श्रम लगाएँ,
खेत-खेत सींचें मिलके,
फसलें खूब उगाएँ,
नये-नये उद्योग लगें,
रोज़गार बढ़ाएँ,
विकासशील से विकसित हों,
महाशक्ति बन जाएँ,
हम सब भारतवासी मिल,
उन्नति के पट खोलेंगे,
हमको हिंद से प्यार है,
भारत माता की जय बोलेंगे।

nkadhian@gmail.com

पता नहीं

डॉ. ललिता लोधा
मध्य प्रदेश, भारत

मैं तेरे जैसी हूँ या तू मेरे जैसा,
यह रिश्ता है कैसा,
यह पता नहीं।
हकीकत है या सपना है,
जैसा भी है, यह एहसास है कैसा,
यह पता नहीं।
मैं तुझमें गुम हूँ या तू मुझमें गुम,
रिश्ता है यह कितना मासूम,
यह पता नहीं।
मैं तेरी चाहत हूँ या तू मेरी चाहत,
देखकर एक-दूसरे को मिलती कितनी राहत,
यह पता नहीं।
मुझे तेरा इंतज़ार है या तुझे मेरा इंतज़ार,
दिल क्यों है हर पल बेकरार,
यह पता नहीं।
मैं बेकरार हूँ, तू भी है बेकरार,
किसे है इस दिल पर इख्तियार ,
यह पता नहीं।
यह प्यार है या कुछ और,
नहीं इस दिल पर किसी का भी ज़ोर,
इसमें भी किसी की खता नहीं।
तू मेरे जैसा है या मैं तेरे जैसा हूँ,
यह पता नहीं।
पर तेरे-मेरे बीच कुछ तो एक जैसा है,
जो तुझे भी पता नहीं, मुझे भी पता नहीं,
यह रिश्ता कैसा है,
हम दोनों के बीच कुछ एक जैसा है,
यह पता नहीं।

lodha.anjali4@gmail.com

फिर से लौट आना

डॉ. कमलेश गोगिया
रायपुर, भारत

सुबह का अलार्म मन की घड़ी में लगाना
सूर्योदय के पहले अम्मा का जाग जाना
आँगन धोकर, देवपूजा के फूल तोड़ना
कानों में घंटी और शंख-ध्वनि गूँजना
सुबह की सैर में सबसे सुख-दुख पूछना
दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करना
बाबूजी का रॉन्ग नंबर पर भी बातें करना
अर्चना के पहले कुछ ना निगलना
अम्मा-बाबा के चरण स्पर्श करना
सदैव सुखी रहने का आशीष पाना
तीज-त्योहार उंगलियों से बताना
गर्मी की छुट्टियाँ ननिहाल में बिताना
खेल-खेल में ज्ञान की बातें सीख जाना
मसालों का घर की चक्की में कूटा जाना
मित्रों, रिश्तेदारों से सम्पर्क बनाए रखना
अपनों के साथ गैरों को भी अपनाना
सूर्यास्त के साथ वापस घर लौट आना
संध्या आरती के बाद अन्न ग्रहण करना
निद्रा से पहले अम्मा-बाबा के पैर दबाना
सब्ज़ी का स्वाद पड़ोसी को भी चखाना
गर्मियों में अचार-पापड़ का बाँट आना
कसमें-वादे, प्यार-वफ़ा दिल से निभाना

सच के आगे झूठ का ना टिक पाना
वामा के अपमान पर क्रोधित हो जाना
अपनी नज़रें स्त्री के चरणों पर झुकाना
और...
अतीत के स्वर्ण-पन्नों पर ज़रा धूल हटाना
कभी तो इस युग में फिर से लौट आना...

kamleshgogia@gmail.com

तुम थे सुभाष

डॉ. शुचि गुप्ता
मेरठ, भारत

तुम थे सुभाष, तुम थे सुभाष, तुम थे सुभाष...
गुलाम भारत की आस, सुनहरे सपनों की प्यास
हर दिल के खास...
तुम थे सुभाष, तुम थे सुभाष, तुम थे सुभाष...
अकेले लड़ गये तुम, चट्टान बन गये तुम
अकेला चलकर भी, आज़ाद सेना बना गए तुम
क्योंकि...
तुम थे सुभाष, तुम थे सुभाष, तुम थे सुभाष..
अंगारे जलाकर, लहू तपाकर, जाने कहाँ चले गए हो...
अबूझ-सी पहेली बन गए हो ...
तुम कहाँ हो सुभाष, तुम कहाँ हो सुभाष, तुम कहाँ हो सुभाष?
प्राणों में बसकर, चेतना बन गए हो तुम..
कण-कण में बसकर, सारे कणों को जोड़ गए तुम..
खून माँगा था तुमने, खुद लाल रंग कर कहाँ चले गए...
सुभाष अब तुम नहीं हो, कहते हैं मुझसे सभी यही..
पर
मेरे शब्दों में तुम हो... सुभाष
युवाओं के सपनों में तुम हो... सुभाष
हर माँ के बेटे में तुम हो... सुभाष
हर बेटी की बंद आँखों में तुम हो... सुभाष
हिंद की सेना में तुम हो... सुभाष
जय हिंद के नारों में...
तुम हो सुभाष, तुम हो सुभाष, तुम हो सुभाष...
मानव नहीं, महामानव बन गए हो, तुम सुभाष...

guptashuchi93@gmail.com

ज़िंदगी स्वयं से

श्रीमती अरुण कमल
नई दिल्ली, भारत

आदमी उलझ जाता है
कभी थोड़े रिश्तों में, मकान की किश्तों में,
बच्चों की पढ़ाई में, बीवी की लड़ाई में,
बॉस की साज़िश में, सबॉर्डिनेट की गुज़ारिश में,
आषाढ़ के पसीने में, सावन के महीने में,
माशूका की आँखों में, आजीविका की सलाखों में,
गज़ल में, कविता में, बच्चों में, माता-पिता में।

ज़िंदगी उलझ जाती है, पूरी तरह,
एक तरफ़ शौक है, सपने हैं, दूजी ओर सारी ज़रूरतें हैं,
आदमी ज़रूरतों के लिए जीता है, उसका शौक
खुदकुशी कर लेता है,
जाएँ तो जाएँ कहाँ,
हर आदमी शुरू करता है, ज़िंदगी स्वयं से,
फिर ज़रूरतें स्वयं के ऊपर हावी हो जाती हैं,
और फिर शौक को जीने की,
हर तरफ़ से मनाही हो जाती है।

arunkamal40@gmail.com

वह आदिवासी औरत

श्री कमल राठौर साहिल
मध्य प्रदेश, भारत

एक दिन जंगल में मैंने देखा
उस आदिवासी औरत को
जो अपने सिर पर लकड़ी का गट्ठर लादे
और गोद में डेढ़ साल का मासूम लिए,
अपनी ही धुन में शाम ढलने के पहले
लंबे-लंबे कदमों से चले जा रही है
पथरीले रास्तों पर
पैरों में चप्पल भी नहीं,
मगर उसे इस बात का
बिल्कुल भी एहसास नहीं हो रहा था।
कुछ कंकर उसके पैरों में चुभ रहे थे,
मगर उसकी शिकन उसके चेहरे पर
बिल्कुल भी नज़र नहीं आ रही थी।

सादा से कपड़े, जो
मैले भी हो चुके थे
और फटे हुए भी थे।
उन कपड़ों की खिड़कियों से झाँकता
उसका नंगा बदन साफ़ दिख रहा था।
इन पेड़ों को, इन नदियों को,
इन हवाओं को, जो
हवा की सरसराहट से
वह महसूस कर रही थी
मगर चेहरे पर शिकन
बिल्कुल भी नहीं थी।
उसके तेज़ कदमों के साथ-साथ
सूरज भी डूब रहा था
और उसके अंतर्मन में चलता
एक द्वंद्व युद्ध, जाकर लकड़ियों के
छोटे-छोटे टुकड़े करने हैं,
चूल्हा जलाना है
और कनस्तर के डिब्बे में से
आटा ढूँढना है।
अगर आटा होगा, तो
रोटियाँ सिकेंगी और
उनके पेट में जलती अग्नि
आज के लिए थोड़ी मध्यम पड़ेगी।

उसके हिस्से में उजाले की चकाचौंध नहीं
कुछ जुगनुओं का सहारा
और एक माटी का दीपक ही
उसकी झोपड़ी का उजाला है।
कभी-कभी वह लकड़ियों के गट्ठर को
पकड़े आसमान की ओर देखती
और आसमान में छाए
बादलों को देखकर,
उसके चेहरे पर शिकन आ जाती है।
वह जानती है
अगर बरसात होगी, तो
उसकी झोपड़ी की अनगिनत
दरारों में से पानी टपकने लगेगा
और फिर सारी रात
सिर छुपाने को उसके पास
उस टपकती झोपड़ी के अलावा
कोई भी सहारा नहीं होगा
वह खुद भीगने को
अपने-आपको तैयार करती है,
मगर उस डेढ़ साल के मासूम का
क्या? जो उसके जिगर का टुकड़ा है।

वह आदिवासी औरत
मन में सवालों के ज्वार लिए
चली जा रही है
अपनी ही धुन में
उन पथरीले रास्तों पर।

rathore777kk@gmail.com

कत्ल-ए-आम हो जाऊँ

सुश्री मोनिका राज
बिहार, भारत

रख दूँ मैं भी राज़-ए-दिल खोलकर
सुनने वाला कोई राज़दार तो हो।

जो देखूँ उसे तो भुला दूँ ये सारा जहाँ
ऐसा हमदम कोई वफ़ा-ए-यार तो हो।

चल लूँ मैं भी नंगे पाँव तपती रेत पर
साथ देने वाला, कोई हमसफ़र तो हो।

भूल जाऊँ मैं भी अपना हर दर्द-ओ-गम
मरहम लगाने वाला, कोई हमदर्द तो हो।

ना हो मुझे कभी चाँद-तारों की ख्वाहिश
अपने पलकों पर बिठाए, ऐसा साथी तो हो।

न मिसाल दूँ मैं किसी और के प्रेम की
दिल की रानी बनाए, ऐसा इश्क तो हो।

जद्दोजहद है यहाँ खुद को बेहतर बताने की
फ़िदा हो जाऊँ मैं भी, ऐसी कोई अदा तो हो।

जाम पीकर खो देता है, हर कोई अपना होश
मदहोश कर जाए कोई, ऐसे नैन तो हो।

यूँ तो करते हैं, सभी इश्क-मोहब्बत में वादे
फ़ना कर दूँ खुद को, ऐसी कोई बात तो हो।

मर-मिटने को तैयार ज़रा हम भी बैठे हैं
कत्ल-ए-आम हो जाऊँ, ऐसी नज़र तो हो।

monikaraj2115@gmail.com

मुसीबत

डॉ. मंजु गुप्ता
नवी मुंबई, भारत

मुसीबत लक्ष्य में आती, कभी नर धैर्य मत खोना।
परीक्षा इसलिए होती, चुनौती में निराश मत होना।।
बढ़ाते ही चलो तुम पग, कभी मुड़ के नहीं जाओ।
कदम में ही पड़े चाहे, कई छाले तब भी लक्ष्य को पाओ।।

नहीं तुम हौसला खोना, ना तुम इस हार को जानो।
कदम नीचे सभी पथ हैं, उधर ही तुम सफल मानो।।
तभी सपना करे पूरा, मिले उसको जीत प्यारी।
नहीं पीछे चरण मोड़ो, दिखे मंज़िल वही न्यारी।।

writermanju@gmail.com

वसंत आ गया

डॉ. कृष्णा जैमिनी
हरियाणा, भारत

पेड़ों में नए-नए कोंपल आने लगे
तरह-तरह के गह फूल खिलने लगे
तितली और भँवरे भी मंडराने लगे
तो समझो सखी वसंत आ गया है।

मन जब कुछ-न-कुछ गुनगाने लगे
नव तरंगों का ज्वार मन भाने लगे
नए-नए सपने मन में सजाने लगे
तो समझो सखी वसंत आ गया है

धरा सोलह शृंगार करने लगी
कचनार कलियाँ जब खूब चटकने लगीं
बौराई आम्र मंजरी सजने लगी
तो समझो सखी वसंत आ गया है।

लेखनी में नव-नव छंद भरने लगे
संगीत सुर वीणा से जब झरने लगे
सुरभित मंद-मंद समीर चलने लगे
तो समझो सखी वसंत आ गया है।

krishnajaimini62@gmail.com

धूप

डॉ. विनयकुमार विष्णुपुरी
पटना, भारत

कुछ दिनों के बाद उगी है,
छन-छन रोशनी सजाती धूप।
सूर्य का संवाद लेकर,
घास-पात पर अंगड़ाती धूप।
चला गया अब शीत उष्णता,
दिल में प्यार जगाती धूप।
नई सुबह के स्वर्ण-रथ पर,
कोई परी-सी आती-जाती धूप।
उजाले से जीत संसार में,
सुबह दिखाती सब को धूप।
आँगन घर में चौखट पर कर,
तुलसी माँ को नहाती रोज़ धूप।
मंदिर के महादेव को,
झुक-झुक सर नवाती धूप।
खाट-बाट, राह-गलियारे,
सबसे प्यार दिखाती धूप।
खेत-खलिहानों में उतर रही,
सूर्य की शहरानी धूप।
अंगड़ाई ले तनिक रुककर के,
गाना सुरभि के गाती धूप।
सुनकर मंजरियों की गाथा,
धम-धम बौखलाती धूप।
बंद झाड़ी के भीतर भी,
यहाँ-वहाँ हँसती धूप।
भास-रास-रंग की सभा बुलाए,
कौन-कौन से वार्ता करती धूप।
दया की परछाँई बन बैठी,
बृहद् जाल बिछाती धूप।
सड़क पगडंडी पर इठलाती,
ज़मीन पर लहराती आती धूप।

drbinaykumarbishnupuri@gmail.com

ज़िंदगी जीने की राह दिखाती

श्री भगत सिंह
नई दिल्ली, भारत

अंधेरों के बाद रोशनी आती है
उम्मीदें ही सदा हौसला बढ़ाती हैं।
रिक्त-मन की वेदना करती है, जब शोर
ज़िंदगी ही हमें जीने की राह दिखाती है।

ज़िंदगी तो हर हालत में चलती है।
दुखों में धैर्य बनाए रखना चुनौती है।।
पीड़ा पर खुद ही मरहम लगाए तो बेहतर।
सुख में ज़िंदगी खुद ही मुस्कुरा लेती है।।

दर्द छलक जाने दो छुपाने से मुश्किल होगा।
गमों को पैमाने से नापना मुश्किल होगा।।
खिलखिलाकर बिखेर दो अपनी मुस्कान ज़रा।
रूखी-सी हँसी से यह काम मुश्किल होगा।।

बस कुछ यूँ ही समय ने जीना सिखा दिया है।
साथ चलने वालों ने संभलना सिखा दिया है।।
ऐसा नहीं सब साथ चलने वाले हमदर्द हैं मेरे।
गैरों ने तो विपरीत दिशा में भी बहना सिखा दिया है।।

निश्छलता से विपरीत दिशा में बहना।
आसान नहीं सागर-मंथन जैसा है।।
सदा सुगम लगेगा गैरों से निपटना।
अपने रूठों को मनाना जंग जीतने जैसा है।।

b.singh130@gmail.com

पराक्रम

सुश्री रचना देवी रामफल
न्यू ग्रोव, मॉरीशस

असंख्य चीख, असंख्य पुकार
किसको सुनाओगे अपने मन के तूफ़ान?
बच्चों की रुदन, पति की फटकार
जूझते रहे तुम इन सब में दिन-रात।
प्रश्न तुम पर उठता है, हज़ारों बार
किस-किस को समझाओगे अपने दर्द का पैगाम?

आज की सुबह, कल की शाम
दोनों में हैं स्थितियाँ एक समान।
जिस युद्ध से बनी तुम्हारी पहचान
देखकर दंग रह गई आवाम्।

ashneetaramphul@gmail.com

कोरोना

सुश्री हिमांशी नेमचंद
रोज़-बेल, मॉरीशस

"कौन है, क्या है और कहाँ से है आया?
जब लोगों ने ये पूछ-पूछकर थाल और ढोल बजाया
तो बताना तो बनता था,
चारों ओर यह सन्नाटा है क्यों,
जताना तो बनता था -
नाम है कोरोना और वुहानी है मेरी काया
लोगों की समझ में ना आऊँ, ऐसी है मेरी माया
ना कोई धर्म है जीता, ना कोई ईश्वर है हारा
इन्सानों के प्रयोगों ने ही, आज इन्सान को है मारा
कर्म किया था जो कल, आज उसको भरो न
काहे का ढिंढोरा और काहे का है रोना?
हाय रे! कोरोना, हाय रे! कोरोना
पहले से दूजा और दूजे से तीजा वर्ष है,
मुझको होने आया
बच्चे, बूढ़े या जवान, कोई न मुझसे बचने पाया
विश्व स्वास्थ्य आपदा का मैं बना हूँ कारण
वायवीय सम्पर्क से पाता हूँ विस्तारण
कहते हैं लोग, छीन ली मैंने उनकी खुशहाली
कोविड-19, मैं विश्वव्यापी महामारी
जिसमें चिता की राख है, ज़रा उस घट को देखो
फिर खुद के भीतर इस बचपने की हठ को देखो
क्या मिलेगा मुझसे यूँ पंजा लड़ाकर?
जहाँ ढेर लाशों के लगे हैं, उस मरघट को तो देखो
डॉक्टर हो या नर्स, या हो सफ़ाईकर्मी
दूध, सब्ज़ीवाला या फिर हो पुलिसकर्मी
धन्यवाद करो उन सबको, जिन्होंने तुम्हारा जीवन
आसान किया
परिवारों से मुँह मोड़, सबको पीछे छोड़
डालकर खुद को खतरे में
सुबह शाम जिन्होंने काम किया
मैं कोविड-19, बहन फ़्लू से मिलते मेरे लक्षण
हो कुछ भी समरूपता, जाँच कीजिए तत्क्षण
सावधानी बरतने से, रुकता मेरा विस्तारण
निरोधक क्षमता वाले, रोकते मेरा प्रसारण
दूरियाँ बनाए रखें, ताकि एक-दूसरे को हो ना
मैं मौत का सौदागर, मेरा नाम है कोरोना।

heemanem@gmail.com

मेरे पापा हैं सबसे अच्छे

सुश्री सान्वी काशीनाथ
वाक्का, मॉरीशस

दुनिया में सबसे अच्छे हैं
और सबसे प्यारे हैं पापा मेरे
मेरी इच्छाओं को पूर्ण करते
चिंताओं को चूर्ण करते पापा मेरे।

अक्षरों से जोड़कर अक्षरों को
मुझे पढ़ना उन्हीं ने सिखाया
जीवन में कभी न डरने की, और
आगे बढ़ने की कला भी समझाया।

कितनी सच्ची बात यह पिता होता
मार्गदर्शक हम बच्चों हेतु संसार में
ढूँढ लेता है हमारे अवगुणों में गुण
सुधार लाता विचार और व्यवहार में।

मुझे भी मेरे पिता ने सिखाया संघर्ष
जीवन को परेशानियों-कठिनाइयों से
हरदम बताया मुझे – तुम हमेशा ही
दूर रहना बुरे लोगों और बुराइयों से।

ऊँगली पकड़कर जिन्होंने मुझे
बचपन में चलना सिखाया
दौड़ती-दौड़ती गिरती मैं बार-बार
चोट सहलाकर मरहम लगाया।

घेरने आईं कठिनाइयाँ-समस्याएँ
जीवन में मुझे निराश करने जब कभी
तब दिया पापा ने ही मुझे भरोसा
बनकर ढाल खड़े हो गए वे तभी।

पिताजी कभी मित्र बनकर
मुझे नये-नये खेल हैं सिखाते
अध्यापक बनकर वे पाठों को
बड़ी सहजता से मुझे समझाते।

साईकिल चलाना मुझे सिखाया
संतुलन का रहस्य बताकर
तैरना भी सिखाया उन्होंने मुझे
पानी में डूबने का भय हटाकर।

देखकर खतरा वे हाथ पकड़कर
समस्याओं से सदा सावधान कराते
गलतियाँ देख मेरी कभी हैं बिगड़ते
फिर मेरे बिगड़े काम खुद ही सुधारते।

माता-पिता होते हैं ईश्वर का रूप
वे विश्वास के प्रथम सोपान होते हैं
सार्थक होता है यह जीवन उनके सपनों को
निज संघर्षों एवं प्रयासों में जब हम पिरोते हैं।

phatomvalkyrie38@outlook.com

कछुए की चाल

श्री सव्यसाचि काशीनाथ
वाक्रा, मॉरीशस

कछुए की चाल में
देखिए कितना धैर्य है
और होती सरलता भी
एक ही गति से
आगे बढ़ने का साहस
होती एकरूपता भी।

सब को अपने आगे
निकलते वह देखता
नहीं मानता कभी हार
अपनी तुलना वह
करता नहीं किसी और से
बढ़ता रहता लगातार।

देखो कछुए में भी
होती है कैसी अनुपम
परिश्रम की प्रवृत्ति
चाहे चाल उसकी
यूँ ही, धीमी ही रहती
रुकना नहीं उसकी प्रकृति।

हँसना नहीं तुम अब
कभी किसी कछुए पर
देख उसकी धीमी चाल
आलसी वह है होता
जो एकदम से रुक जाता
किन्तु साहस से डरता काल।

छोड़ता नहीं जो चलना
उठाओ नहीं कोई सवाल
सामर्थ्य पर उसके
यदि जीवन में किसी को
हिम्मत न दे पाओ तुम
विश्वास तोड़ो न उसका।

कछुआ अपनी चाल से
देता है हम मनुष्यों को
उद्यमी बनने की सीख
जहाँ जीत की कहीं
संभावना भी नहीं होती
बनाता अपनी लीक।

kashinathpranav38@gmail.com

संक्रमण

डॉ. अविनाश श्रीवास्तव
कैलिफ़ोर्निया, अमेरिका

जीवन में
संक्रमण कई रूपों में आता है,
जैसे वायरस संक्रमण के बाद
हमारे शरीर का हिस्सा बन जाता है।
लगभग हर कोशिका को खा जाता है
पर अंत में शरीर की चतुरंगिणी सेना के समक्ष
भयानक विषाणु का भी सर्वनाश हो जाता है
और शरीर फिर से नयी कोशिकाएँ बना पाता है।

हँसी भी संक्रमित करती है,
कोशिकाओं तक वह भी पहुँचती है,
दिमाग का कतरा-कतरा मुस्कराता है,
जब सामने कोई हँसी के फूल खिलाता है।
इसी तरह आँसुओं के संक्रमण किसी बारिश की तरह
आते हैं,
बरसते हैं किसी और की आँखों से
और भीग हम जाते हैं।

संक्रमण का एक और रूप है,
जो प्यार में होता है,
यह संक्रमण आँखों से शुरू होता है,
दिल तक पहुँचता है।
और फिर दिमाग की सारी पीड़ा हर लेता है,
जीवन को सुख से भर देता है
और सच्चे प्रेम का संक्रमण
इन्सान को जीने की सही वजह देता है।

वहीं इन सबसे परे
नफ़रत और ईर्ष्या का भी एक संक्रमण होता है,
यह संक्रमण इन्सान के दिल में उपजता है,
उसके शरीर में ही फलता-फूलता है
और मनुष्य की सारी अच्छाइयाँ हर लेता है।
कुंठा से एक दिन सारी कोशिकाएँ
गुलाबी से काली पड़ जाती हैं
और संक्रमण की इस अवस्था में
न कोई दवा और न ही दुआ काम आती है।
अपनी नफ़रत के संक्रमण से अक्सर
हरे-भरे इन्सान पीले पड़ जाते हैं
और आखिर में
इसी कुंठा और ईर्ष्या के चलते
समय से पहले ही मर जाते हैं!!

savinash52@yahoo.com

तन्हा-तन्हा

डॉ. दुर्गा सिन्हा 'उदार'
अमेरिका

तन्हा-तन्हा ज़िन्दगी के दिन
निकलते जा रहे,
बर्फ़ के हम, हिम शिखर थे,
अब पिघलते जा रहे।।

आग-सी धड़कन में थी
और जंग जीती ज़िन्दगी
ज़िन्दगी की सीख पर,
अब तक सँभलते जा रहे।।

ख्वाब में आकाश रहता,
पंख ले उड़ते गए
पंछियों के संग हम भी,
थे चहकते जा रहे।।

श्वास की सरगम पर,
कितनी दास्ताँ रचते गए
प्रेम के हर गीत पर,
हम थे बहकते जा रहे।।

ज़िन्दगी के दो किनारे,
दो किनारे ही रहे
हम किनारे बैठकर,
लहरों को गिनते जा रहे।।

हँसते-हँसते चोट खाई,
हार न मानी कभी
मुश्किलों से जूझते,
ये पल गुज़रते जा रहे।।

अश्क का दरिया ना सूखा,
आँख हर पल नम रही
ज़िन्दगी अब भी 'उदार',
जीते और हँसते जा रहे।।

durga.a.sinha@gmail.com

रंग-रंगीला मेला

श्रीमती युक्ता लाल
टोरंटो, कनाडा

मेला देखन आई मैं मेला देखन आई
रंग-रंगीला साज-सजिला, ठाठ-बाट का मेला
बच्चे-बूढ़े, गोरे-काले, सब का यहाँ झमेला
मेला देखन आई मैं मेला देखन आई।

इस मेले में भाँति-भाँति के व्यंजन व पकवान
खाद्य पदार्थों व दूध-दही के ऊँचे भरे भण्डार
रसीले मीठे फलों से भरे बाज़ार
जिह्वा के स्वाद रस को ललचाने में योगदान।

वस्त्रों के अंबार यहाँ पर
सुख-सुविधा है अपार
बंगला महल मोटर गाड़ी
सब की यहाँ भरमार
भव्यता व ऐश्वर्य की नहीं कोई मिसाल।

आगे देखा इस मेले में गगनचुंबी अट्टालिकाएँ
भव्य खड़े शॉपिंग मॉल, कसिनो, क्लब व बार
रात में भी देते हैं दिन का सा आभास
हज़ारों सूर्यों जैसा भर देते हैं प्रकाश

इतना वैभव इतना प्रलोभन
आकर्षित हो जाता तन-मन
खो गई मैं इस मेले में
कोई राह न दिखे ठौर
भूल गयी अपना घर आँगन
अब कैसे निकलूँ बाहर।

इस भूल-भुलैये व चकाचौंध से
निकल बाहर जब देखा
चहूँ ओर प्रकृति का अद्‌भुत समाँ
ऊँचे पर्वत व सागर की गहरी थाह
पक्षियों की चहचहाहट व झरनों की झंकार
असीम शान्ति व आनन्द का पारावार

अब आयी याद मुझे अपने घर की
जहाँ है मुझको जाना
इस मेले के वैभव को तजकर
परम धाम को पाना
है परम धाम को पाना॥

ylaul@hotmail.com

आदमी

श्री परिपूर्ण सिंह रौतेला 'आनंद'
कनाडा

अपने बनाये जाल में घिर गया है आदमी
बात यह है कि बात से ही फिर गया है आदमी
मुँह दिखा सकता नहीं अब मुँह छिपाता फिर रहा
इस कदर खुद की नज़र में गिर गया है आदमी!

वन का वहशी हँसकर बोला एक दिन इन्सान से
बात एक बतलाऊँ तुझे आज मैं ईमान से
सब हदों को पार कर चुका है आदमी
शर्म-ओ-हया सब बेचकर खा चुका है आदमी!

ऐसी है हरकत कि कहते नहीं बनता है कुछ
बोलता है मुँह से कुछ, हाथ से करता है कुछ
छल-कपट नफ़रत फ़रेब बस यही मज़हब है अब
येन-केन-प्रकारेण चाहे तुझे मिल जाए सब!

झाँके अंतर्मन में हम सब आत्म-विश्लेषण करें
यदा-कदा निस्स्वार्थ भाव से स्वयं प्रक्षेण करें
जन्म मानव का मिला तो प्रयास कर ऐ आदमी!
आदमी को चाहिए बनकर रहे वह आदमी!

rotellagroup@outlook.com

मेरा घर

श्रीमती नूपुर दीक्षित दुबे
संयुक्त अरब अमीरात

इस बड़ी-सी दुनिया में
छोटा-सा एक घर है, मेरा
भागती हुई इस दुनिया में
ठहरा हुआ एक घर है, मेरा

घर की गली के कोने में है, एक मंदिर
जब पूछता था कोई घर कहाँ है, तेरा?
तो आराम से कहती थी, कि
मंदिर वाली गली में ही तो है, घर मेरा।

पड़ोस में रहती थी, एक आंटी
बात-बाती होती थी, सबसे भिड़ंत उसकी
उनकी तकरारों को देखकर किया मैंने एक काम
दे दिया था उन्हें मोहल्ले की डॉन का नाम।

घर की बालकनी में पापा ने बगिया सजाई है
टूटे पुराने मटकों में खूब हरियाली समाई है
छोटी-सी बगिया का रजनीगंधा खूब महकता है
महक-महककर घर का पता बताता है।

हर शाम जहाँ हो खुशबू का बसेरा
बस वहीं तो है घर मेरा।

अब घर का एक-एक चढ़ाव
ज़िंदगी के एक-एक पड़ाव-सा लगता है
स्कूल, कॉलिज, नौकरी, प्रमोशन, शादी के
किस्से सुनाता-सा लगता है।

हमेशा चुप रहने वाले चढ़ाव
इन दिनों बोलने लगे हैं
बेटी को माँ में बदलता देख,
नसीहतों की पोटली खोलने लगे हैं।

मैं बहुत दूर चली आई
रह गया अपनी जगह घर मेरा
जब–जब लौटी, मैं बदलती रही
पर जैसा था वैसा बना रहा घर मेरा।

मेरे आने और जाने के समय
माँ बालकनी में होती थी,
वीडियो कॉल वाली दुनिया में
उनकी आँखें मेरी राह तकती होती थी।

अब बालकनी है, पर माँ नहीं,
गुलाब और रजनीगंधा अब भी हैं
महक बाकी है, चहक गुम है
चिड़िया, बुलबुल अब भी आती हैं
मनीप्लांट पर घरौंदा बनाती हैं।

उड़ जाते हैं, उनके बच्चे
नीड़ खाली छोड़कर
ठीक वैसे ही जैसे उड़ते हैं हम
घर को सूना छोड़कर।

अब जब घर वापस आती हूँ
पड़ोसी डॉन की आँखों में प्यार देख पाती हूँ
चिढ़ती थी, जिन आवाज़ों से मुझे कभी
अब उनमें सरगम नई पाती हूँ।

घर के सोफ़े और पर्दे भी
बतियाते हैं मुझसे
बर्तनों का संगीत
साफ़ सुन पाती हूँ।

इस बार जब निकली घर से मैं
तो घर का दरवाज़ा बोला
क्यों मन को छोटा करती है?
मेरी तस्वीर तो तेरे मन में बसती है।

तू आती रहना बार-बार घर
लगाकर अपनी ज़िद्दों के पर
चाहतों को अपनी इकट्ठा कर
और मेहनत से बना एक नया घर।

मैं चुपके से उस घर में आऊँगा
अपना अक्स उस नए घर को दे जाऊँगा
चाहे दुनिया के किसी कोने में हो वह घर
तुझे लगेगा हमेशा मेरा घर, अपना घर।

nupurdixitdubey18@gmail.com

आज़ादी

श्रीमती करुणा झा
नेपाल

आज़ादी के गीत सुहाने गाओ भी
कितने हैं, हम लोग दीवाने गाओ भी

जाने कितने बलिदानों से आई थी
जाने कितने अरमानों से आई थी,
जिसने सब कुछ वार दिया आज़ादी पर
आज़ादी उन मस्तानों से आई थी।

लाखों में वे लोग थे बेशक एकाकी
मगर गज़ब थी क्रान्तिधर्मिता बेबाकी,
घर-परिवार न रिश्ते-नातों से मतलब
एक लक्ष्य था हासिल करना आज़ादी।

उन्नत देश, समाज, लोग, परिवार रहे,
संसाधन से युक्त सभी घर-बार रहे,
सबको रोटी, कपड़ा, गृह उपलब्ध रहे,
शिक्षा, रोज़ी, स्वास्थ्य में न प्रतिबंध रहे।

हो देश विश्व का गौरव गरिमा जन-जन का
समझें, सब महत्त्व देश के कण-कण का
जो कुछ भी हो कर्म देश की खातिर हो
तभी सार्थकता है, समझो तन-मन का...

karuna58jha@gmail.com

आईने के संग : दोहों के रंग

श्री हलीम आइना
राजस्थान, भारत

नाद हर्ष का तुन्द है, हृदय नाद है मन्द।
जो सुख-दुख से है परे, वह है परमानन्द।।

कौन किसी का है यहाँ, सब मतलब के यार।
गैरों के दुख-दर्द को, क्या जाने संसार।।

सच बोले हैं 'आईना', लेकिन सब बेकार।
झूठों के दरबार में, सच्चाई की हार।।

दुनिया की जड़ता हटे, है हर कवि की चाह।
अँधियारे का अन्त हो, खुले ज्ञान की राह।।

सारी मानव-जाति का, जो हित-सोचक यार।
कहलाता संसार में, सच्चा साहित्यकार।।

haleemaaina@gmail.com

ऐसा दीप जलाना होगा

श्री कमलेश कुमार
उत्तर प्रदेश, भारत

वर्ण-धर्म का तिमिर मिटाकर
हर मन धवल बनाना होगा
ज्योतिर्मय हो मनुज धरा पर
इक ऐसा दीप जलाना होगा।

हवस, वहस-पन और पापमय
कर्मों का दहन कराना होगा
ज्योतिर्मय हो मनुज धरा पर
इक ऐसा दीप जलाना होगा।

वनिता हो या कांता, तुझको
अब अधिकार जताना होगा
ज्योतिर्मय हो मनुज धरा पर
इक ऐसा दीप जलाना होगा।

अँधियारा मिट जाए, सीरत से
तब जठरानल बुझाना होगा
ज्योतिर्मय हो मनुज धरा पर
इक ऐसा दीप जलाना होगा।

शहीदों। की दहलीज़ो पर भी
कृतज्ञ-शीश ! झुकाना होगा
ज्योतिर्मय हो मनुज धरा पर
इक ऐसा दीप जलाना होगा।

समर्थ स्वार्थ से ऊपर हो जब
सहाय्य–पथ बनाना होगा
ज्योतिर्मय हो मनुज धरा पर
इक ऐसा दीप जलाना होगा।

हैं धनाढ्य दो-महले रोशन।
पर पर्ण-कुटी सजाना होगा
ज्योतिर्मय हो मनुज धरा पर
इक ऐसा दीप जलाना होगा।

सहज रहें, सप्रेम जियें सब
हर रूठा यार मनाना होगा
ज्योतिर्मय हो मनुज धरा पर
इक ऐसा दीप जलाना होगा।

kamleshkumar89@nhpc.nic.in

हिंदी का लालित्य

श्री सत्यम भारती
बिहार, भारत

हिंदी हर दिन पूछती, हमसे यही सवाल।
वह अपने ही देश में, क्यों इतनी बदहाल।।

है अर्जुन का सारथी, हिंदी का साहित्य।
जितना इसमें ज्ञान है, उतना ही लालित्य।।

हिंदी भूषण, जायसी, हिंदी मीरा, सूर।
हिंदी फिर क्यों देश में, दिखती है मजबूर।।

आज़ादी के गीत लिख, बनी प्रेरणा-स्रोत।
अँधियारे में देश हित, हिंदी थी इक ज्योत।।

हिंदी केवल बन गई, साहित्यिक दुकान।
पखवाड़े मनते रहे, खूब हुआ गुणगान।।

वर्षों से यह देखकर, मन हो रहा अधीर।
हिंदी विस्थापित हुई, आँखों में है नीर।।

जिसको बनना चाहिए, जीवन का संवाद।
उस हिंदी के भाग्य में, जड़े हुए अपवाद।।

हिंदी आयी लौटकर, अपने गाँव-जवार।
महानगर की हो गयी, अंग्रेज़ी सरदार।।

हिंदी की यह दुर्दशा, आज मिटाए कौन?
सारे नेता सो रहे, अफ़सर सारे मौन।।

अपनी भाषा का नहीं, जो करता सम्मान।
उसको इस संसार में, कहाँ मिल सका मान।।

आओ हिंदी के लिए, हम मिल करें प्रयास।
हिंदी सुखद भविष्य है, गौरवमय इतिहास।।

भक्ति, प्रेम का पद्यमय, गाया सुंदर गान।
विद्यापति कोकिल बने, जाने सकल जहान ।।

फटी चदरिया नेह की, सीते रहा फ़कीर।
ढाई आखर प्रेम का, समझा गया कबीर।।

कौन बना पाया भला, ऐसा जीवन-चित्र।
तुलसी घर-घर में बसे, रचकर राम-चरित्र।।

छंद सवैया में किया, गिरिधर का गुणगान।
लीलाओं का रस चखा, स्वयं हुए रसखान।।

मीरा के पद में बसे, ब्रजराजा गोपाल।
प्रेम और विश्वास की, ऐसी नहीं मिसाल।।

गद्य, पद्य में भर दिया, जीवन का लालित्य।
भारतेन्दु हैं हिन्द के, साहित्यिक आदित्य।।

भावुकता से मुक्त कर, किया सबल-संवाद।
रच मानस-विज्ञान को, अद्भुत हुए प्रसाद।।

महाप्राण की साधना, जीवन एक समान।
तभी निराला हो सके, कविता के दिनमान।।

प्रकृति-प्रेम मृदु कल्पना, भावों का विस्तार।
इन्हीं गुणों से पंत को, जान रहा संसार।।

आज कथा सम्राट को, करते हैं हम याद।
कौन कर सका पीर का, फिर ऐसा अनुवाद।।

नगपति की आवाज़ वे, जनता का फ़रमान।
दिनकर में जीवित रहा, कविता का अभिमान।।

फक्कड़ भले स्वभाव से, पर जन की आवाज़।
जनकवि नागार्जुन सदृश, झुकता है गिरिराज।।

मुक्तिबोध के बोध में, मध्यवर्ग-संघर्ष।
वे जन-मन के दूत हैं, कविता के उत्कर्ष।।

विचार से विद्रोही वे, थे हृदय से संत।
गज़ल के पुरोधा बने, जनपद के दुष्यंत ।।

satyambharti320@gmail.com

क्षणिकाएँ

श्रीमती शकुन्तला पालीवाल
उदयपुर, भारत

जंग
जीत कर के
जंग जीवन की
नित रोज़
अनवरत
बढ़ते रहना है
सिर्फ़ और सिर्फ़
आगे तुझे
बिना रुके
बिना झुके।।

जागते ख्वाब
कुछ आवाज़ें
झकझोर कर
उठा देती हैं
गहरी नींद से तुझे
आती हैं, जो
शायद बहुत ही दूर से
अंतस की गहराइयों से
जो सोने नहीं देती
लक्ष्य और सपने मेरे
कहीं भूल न जाऊँ
याद दिलाती हैं मुझे।।

यकीन
दुनिया की सभी
सच्ची झूठी
बातों का सच
मानने वाली
तू कभी तो मेरी
बातों का भी
यकीन कर ले
हूँ, मैं तेरी अन्तरात्मा
चाहती हूँ मैं
सिर्फ़ और सिर्फ़
तेरी ही खुशी।।

उदास
कभी जो देखो
तुम मुझे यूँ उदास
ज़रा बात कर लेना
चाहे आँखों से ही
और हौले से धर देना
अपने दोनों हाथ
कंधे पर मेरे।।

बेमन
पल-पल
मुझमें जो जागता है
वह अब हर पल
मरता जा रहा है
यूँ लगता है मुझे
जैसे मेरी देह
हुई है विहीन मुझ से।।

वजूद
कुछ ख्वाब अधूरे
नमकीन पानी संग
आँसू भरी आँखें
होती जाती हैं धुंधली
और सिहर उठती हूँ मैं
जैसे खो रहा है
वजूद मेरा।।

ख्वाहिशें
रोज़ नींद से
जागने के संग
जागती है हज़ारों
ख्वाहिशें मन में
फिर थक हार कर
बिल्कुल मेरी ही तरह
बेदम हो जाती है
ख्वाहिशें ।।

सपने
खुली आँखें मुस्कुरातीं
लगता होने वाले हैं
सब सपने सच
बदलेंगे हकीकत में
सोचती हूँ
आँखें बंद होने से पहले
हो जाए सच
वे सारे सपने
जो देखे हैं मैंने
खुली आँखों से।।

रात
आज फिर
दबे पाँव आई है
रात
डरते-डरते
कभी जो डराती थी
खुद डर रही है
तामस की चादर
सरक रही है
उसके सिर से
मेरे मन के उजाले से।।

अक्स
एक अक्स
खड़ा है आईने
के सामने
न जाने कब से
जिसे निहार रही हूँ मैं
यह अक्स किसका है
याद नहीं आता
यह समझना लगता है
बहुत ही मुश्किल मुझे।।

मेरी सहेली
बहुत ही खास
सहेली मेरी
जो घेरे रहती है
हर पल मुझे
कभी छोड़ती नहीं
जो मेरा साथ
हाथ थामे मेरा
खड़ी रहती है
हर पल
क्या तन्हाई से भी
सच्ची और अच्छी
कोई बन सकती है
मेरी सहेली?

skys4shakku@gmail.com

हाइकु

श्रीमती रश्मि विभा त्रिपाठी
आगरा, भारत

1. वसंत झूले
ऋतु के हिंडोले में
सगर्व फूले।

2. वसंत खड़ा
फोड़ने बगिया में
खुशबू का घड़ा।

3. जीवन कूल
खुशबू, रंग, फूल
यही है मूल।

4. वसंत टाँके
भू के जूड़े में फूल
काँटे दें तूल।

5. कनक बूटे
भू का धानी घाघरा
रंग न छूटे।

6. गुंजायमान
घाटी में लता गाए
सौरभ-गान।

7. घोले सुवास
घाटी में खनकाती
लतिका हास।

8. भौंरा लुटेरा
आया छीनने अर्क
कली सतर्क।

9. भौंरा पाहुन
पुष्प-पराग-भोज
जीमता रोज़।

10. जूही की कली
निशा की हथेली पे
खुशबू की डली।

rashmivibhatripathi@gmail.com

बगीचा

श्री रमेश कुमार सोनी
छत्तीसगढ़, भारत

1.
चेहरा-धोखा
फ़ोटो अच्छा न आया
मन की खींचे।

2.
किश्तों की माया
बगुलों की तपस्या
शिकार फँसे।

3.
बबूल काँटे
हवाएँ आती डरे
पंगा क्यों लेना।

4.
गाँव बुलाते
शहर छुट्टी ना दे
'संडे' को चलें।

5.
मक्के के खेत
खो-खो खेलते तोते
प्रेम पकता।

6.
तोतली हँसी
बच्चे हो गए सभी
जन्मोत्सव में।

7.
बड़ी हवेली
वृद्धाश्रम में माँ
भूत बंगला।

8.
राख ही मिला
पिता बुलाते थके
पैसों की बेड़ी।

9.
युवा-गौरैया
गोद भराती डरे
भ्रूण की जाँच।

10.
भीगी वसुधा
बाँटे हवा डाकिया
मिट्टी सुगंध।

11.
न्याय माँगते
मोमबत्ती की रैली
दरिंदे हँसे!

12.
धान रोपती
लाल, हरी, पीली स्त्री
भूख के रंग।

rksoni1111@gmail.com

हाइकु

श्रीमती सरिता सुराणा
राजस्थान, भारत

1. दीप प्रदीप्त
आलोकित करता
सम्पूर्ण जग।

2. रंगोली सजे
घर-घर दिवाली
तोरण द्वार।

3. जीवनदाता
रत्नगर्भा वसुधा
धरती माता।

4. बसन्त ऋतु
हरे-भरे वृक्षों से
भू का शृंगार।

5. धानी चूनर
ओढ़कर शर्माई
धरती माता।

6. कट रहे हैं
जंगल के जंगल
धरा उदास।

7. बढ़ रहे हैं
कंक्रीट के जंगल
बेजान पृथ्वी।

8. शीतल रश्मि
दुग्ध सम धवल
कोमल मन।

9. नयन नीर
हृदय बसी पीर
मन अधीर।

10. मन चंचल
जीवन गतिशील
आत्मा अमर।

11. ज्योति कलश
आत्मा सो परमात्मा
देह नश्वर।

12. कैसे भुलाए
दहकती आग में
जलते स्वप्न।

sarritasurana@gmail.com

हाइकु

श्री यशपाल निर्मल
जम्मू,भारत

1.
पृथ्वी आकाश
हवा पानी व आग
जीवन तत्व।

2.
मेरे मालिक
सारी दुनिया तेरी
सिर्फ़ तू मेरा।

3.
प्रकृति गुरु
सिखाए सब कुछ
सीखें न इंसाँ।

4.
मासूम बच्चे
अपना घर भूल
मस्ती में खेलें।

5.
बहुत ज़रूरी
आगे बढ़ते जाना
दौड़ते हुए।

6.
पलों क्षणों में
जीवन बीत जाए
पहाड़ जैसा।

7.
कोयल कूके
सुनता कोई नहीं
किसे सुनाए।

8.
उम्र हो गई
मिलते हमें तुम्हें
हैं अनजान।

9.
निर्मल नीर
सूख गया आँखों से
बहता लहू।

10.
निर्मल ज्योति
पवित्र प्रेम भी तू
साँसों की डोरी।

11.
ढूँढते उसे
उम्र गुज़र गई
हाथ न आया।

12.
कलयुग है
इंसाँ इंसाँ को खाए
आदमखोर।

yash.dogri@gmail.com

हाइकु

शालिनी वर्मा
उत्तर प्रदेश, भारत

1.
नमी के छत्ते
उपजे वन स्वतः
कुकुरमुत्ते।

2.
हर्षित धरा
हर नव पल्लव
लगता शिशु।

3.
मन अशांत
कोलाहल इतना
जल प्रपात।

4.
छिन्न-भिन्न भू
निरंकुश मानव
क्षुब्ध प्रकृति।

5.
बिंदु जैसी भू
ब्रह्मांड है अनंत
खोजे वजूद।

6.
रश्मि किरणें
शोभाय उष्म नभ
प्रकट सूर्य।

7.
भय आतुर
भूचर नभचर
अधम मनु।

8.
दर्पण ताल
गिरि रूप निहार
मुग्ध नयन।

9.
श्यामपट्ट
सर्व जुगनू पुंज
रात्रि में नभ।

10.
रुई के फाहे
बिखरे हैं नभ में
खेलें शशक।

shln.verma2@gmail.com

सृजन

श्री संजय कुमार साहू
बिलासपुर, भारत

अब न करो मनुहार प्रिये
यह जाने की बेला है
चाहो मुझे रोकना
कर पाओगी यह कैसे
दूर व्योम में अनजान
पुकारता निरंतर मुझे
ये सजल नेत्र कहते तुम्हारे
रुककर आलिंगन करो मेरा
तुम ही कहो अब न बस मेरे
यह देह भी चाहती विदा
कहती थक गयी मैं
अब त्याग कर मुझे
मुक्त करो, समाहित करो
मेरा हुआ निर्माण जिसमें
जीवन के झंझवात में
बहुत सहा साथ तुम्हारे
यश अपयश हर्ष क्षेम
शैशव से जर्जर होने तक
साथ रही अब तक
तुम्हारे अभिमान
प्रपंचों का बोझ
मौन सहती रही
अब अग्नि स्नान कर
चाहती मुक्ति
किन्तु प्रिय तुम्हारा।

अनन्य प्रेम बहता बन
अश्रु चक्षु तुम्हारे
तुम अडिग बन चाहती रोकना
पर सुनो प्रिये
सृष्टि चक्र रुका है कभी
ये यात्रा है ऐसी
न साथ जाता कोई
विस्मृत तुम कभी न हो
ये प्रण है संकल्प है
अब दृढ़ कर मन
करो विदा मुझे
सप्त जन्मों का बंधन है
फिर मिलन की बेला होगी
सकुचाते कर स्पर्श मेरा
धड़कते हृदय से निकट आओगी
न करो संशय
वचन मेरा अडिग
आनंद उत्सव मधुमास होगा
नवजीवन अंकुरित होगा
सान्निध्य प्रिय तुम्हारा पुनः
धरा पर स्वर्ग सम होगा॥

sanjayzz30@rediff.com

गीत

श्री विवेक बादल बाजपुरी
उत्तराखंड, भारत

प्रेम मन प्राण का सत्य एहसास है
प्रेम शब्द खुद ही खुद में उपन्यास है।

प्रेम मुरली है, मथुरा है, घनश्याम है
प्रेम पीपल है, पनघट है, दिनमान है
प्रेम मर्यादा है, राम का नाम है
प्रेम गीतों की पंक्ति भरी शाम है।

प्रेम निर्मल अनुदित मधुमास है
प्रेम शब्द खुद ही खुद में उपन्यास है।

प्रेम धरती पर बादल की बौछार है
प्रेम फूलों पर खिलता अभिसार है
प्रेम झरनों से झरता मधुर गीत है
प्रेम पेड़ों से पक्षी का संगीत है।

प्रेम दिनकर का आधार आकाश है
प्रेम शब्द खुद ही खुद में उपन्यास है।

प्रेम निश्छल हिमालय का विश्वास है
प्रेम जिसने बुझाई अतुल प्यास है
प्रेम जोगी है, जुगनू है, जलधार है
प्रेम के नाम से सारा संसार है।

प्रेम कश्मीर है, केसर है, कैलाश है
प्रेम शब्द खुद ही खुद में उपन्यास है।

प्रेम आलोक है, प्रेम सम्मान है
प्रेम खुद में विधाता की पहचान है
प्रेम नदी है, नदी का अतुल घाट है
प्रेम पगडंडी पायल का अजब ठाठ है।

प्रेम, कंचन, कँवल है किरण, साँस है
प्रेम शब्द खुद ही खुद में उपन्यास है।

प्रेम परम है, परमात्मा की तरह
प्रेम दिल में रखो आत्मा की तरह
प्रेम आधार है, प्रेम मनुहार है
प्रेम से ही जगत का उद्धार है।

प्रेम चावल है, चंदन है, कपास है
प्रेम शब्द खुद ही खुद में उपन्यास है।

प्रेम अर्पण भी है और आभार भी
प्रेम बिन कुछ नहीं, जीत संसार की
प्रेम प्रारम्भ भी है, प्रेम अंत भी है
प्रेम मज़दूर भी है और संत भी है।

प्रेम गंगा है, गीता है, अमलतास है
प्रेम शब्द खुद ही खुद में उपन्यास है।

badalbazpuri@gmail.com

गज़लें

श्री धर्मेन्द्र गुप्त
वाराणसी, भारत

(1)
कब कहा आज, कल चाहिए
जिसमें जी लूँ वह पल चाहिए

तुमने पौधा लगाया अभी
और अभी तुमको फल चाहिए

पान अमृत का जब कर लिया
कह रहा है गरल चाहिए

सड़ चुका है सरोवर का जल
उनको खिलता कमल चाहिए

दिल की मिट्टी करो और नम
जो गज़ल की फ़सल चाहिए।

(2)
कोई अहसास ना गुमाँ कोई
लेके आया मुझे कहाँ कोई

कैसे मंज़र कोई दिखाई दे
हर तरफ़ सिर्फ़ है धुआँ कोई

अब किसी का बयाँ नहीं दरकार
दे गया ऐसा इक बयाँ कोई

सोचता हूँ कि कौन देगा ज़मीन
दे गया मुझको आसमाँ कोई

न उठी गर्द न गुबार उठा
कैसे गुज़रा है कारवाँ कोई

ढूँढता रहता है न जाने क्या
चाँद तारों के दरमियाँ कोई

कीं मेहरबानियाँ किसी ने मगर
बनके बैठा है मेहरबाँ कोई

ढूँढ के कोई मुझको ले आए
मेरा मिलता नहीं निशाँ कोई।

(3)
वक्त की धूप जब कड़ी होगी
क्या तेरी ज़ुल्फ़ भी घनी होगी

सब मुसाफ़िर भटक गए कैसे
रहबरी में कमी रही होगी

उसकी आँखों में धूप खिलती है
उसकी बातों में चाँदनी होगी?

माँ हमारी नहीं रही अब तो
अब क्या रिश्तों में चाशनी होगी

ज़िन्दगी तीरगी में ले आयी
अब ख्यालों में रोशनी होगी

दिल दुखाकर किसी का, पूजा करूँ
मुझसे ऐसी न बन्दगी होगी

सारे अल्फ़ाज़ बोल उठेंगे
जो ख्यालों में सादगी होगी।

(4)
हमने तो जब भी ख्वाब देखा है
इक नया इन्कलाब देखा है

भ्रम है क्या आज ही तो जाना है
आज हमने सराब देखा है

ज़िक्र मेरा मुझे कहीं न मिला
मैंने हर एक बाब देखा है

जिसने आबाद घर किये कितने
उसको खानाखराब देखा है

आजकल के जवान चेहरों पर
आब देखा न ताब देखा है

ज़िन्दगी के सफ़र में हमने तो
हर कदम इक अज़ाब देखा है

(5)
खा रहे हैं पी रहे हैं
क्या ये कम हैं जी रहे हैं

हम करेंगे ही बगावत
फ़ित्रतन बागी रहे हैं

एक दिन शोले बनेंगे
हम जो आँसू पी रहे हैं

मेघ बरसे हैं झमाझम
हम तो जलते ही रहे हैं

ज़िन्दगी के मयकदे में जाम
हम खाली ही रहे हैं

वह अगर सोना रहा है
हम भी तो चाँदी रहे हैं

मिल न पाया इक मुसाफ़िर
ऐसी हम कश्ती रहे हैं

वह गज़ल ताज़ा रहे हैं
नज़्म हम बासी रहे हैं

(6)
न जाने कौन-से लम्हों की बद्दुआ हूँ मैं
ज़माने भर की निगाहों में चुभ रहा हूँ मैं

यह क्या सितम है कि जब सो रहा है सारा जहाँ
तो इस जहान के बारे में सोचता हूँ मैं

उसी नज़र से क्यूँ न लोग देखते हैं इसे
जिस नज़र से ज़माने को देखता हूँ मैं

कहीं तो कोई मुसाफ़िर दिखाई देगा ही
इसी उम्मीद पर तन्हा ही चल रहा हूँ मैं

न बन सका है कोई भी मेरी उम्मीद मगर
यह कम है क्या कि किसी दिल का आसरा हूँ मैं

(7)
अब भी पहले जैसा हूँ
हाँ कुछ गुम-सुम रहता हूँ

तुमने साथी ढूँढ लिया
मैं तो अब भी तन्हा हूँ

इस रंगीन ज़माने में
यार मैं अब भी सादा हूँ

तू भी मेरी कहानी बन
मैं जो तेरा किस्सा हूँ

मैं भी किसी की आँखों का
टूटा-फूटा सपना हूँ

(8)
जले हैं, फिर बुझे हैं, फिर जले हैं
तभी तो आँधियों को हम खले हैं

बताओ इस जगह कैसे रहें हम
यहाँ अहसास पर पत्थर चले हैं

जो चाहो तुम, बुरे हैं हद से ज़्यादा
जो चाहो तुम, हम बेहद भले हैं

कभी तो बन गये हैं सख्त पत्थर
कभी हम मोम के जैसे गले हैं

कहा है सत्य कटु जबसे सभा में
सभापति की नज़र में हम खले हैं

कहाँ से रोशनी हो सत्य की अब
समय के सूर्य तो कब के ढले हैं

निकल जाएँ न दिल से बद्दुआएँ
हमें मत छेड़ यूँ, हम दिलजले हैं।

dharmendraguptsahil@gmail.com

गज़लें

श्री अजय कुमार शर्मा
फ़रीदाबाद, भारत

1.
यह बात भी न जानते, अंजान हैं सभी
दुनिया में चंद रोज़ के मेहमान हैं सभी

मौजूद घर में सुख के यूँ सामान हैं सभी
फिर भी ये लोग कितने परेशान हैं सभी

इंसानियत से बढ़कर न मज़हब कोई भी है
यह बात जो न जानते, नादान हैं सभी

दौलत मिली न दुनिया में रुतबा ही मिल सका
इतनी-सी बात ही से पशेमान हैं सभी

वीरानियों में चीखने वाला ये कौन है
यह बात सोच-सोच के हैरान हैं सभी

बेबात का ही खौफ़ था इस इम्तिहान का
'अज्ञात' ये सवाल तो आसान हैं सभी।

2.
वक्त ने हर वक्त ही ज़ेर-ओ-ज़बर जारी रखा
हमने भी हर हाल में अपना सफ़र जारी रखा

मुझको कठपुतली बनाकर रक्स करवाती रही
ज़िन्दगी ने यह तमाशा उम्र भर जारी रखा

उँगलियों से आ रही है आज भी खुशबू तेरी
जादुई-सी उस छुअन ने है असर जारी रखा

जाने कितने पत्थरों से चोट की हमने मगर
पेड़ ने फिर भी हमें देना समर जारी रखा

मुश्किलों के दौर में भी हौसला छोड़ा नहीं
आबले तलवों में थे फिर भी सफ़र जारी रखा

यूँ तो आवारा मिज़ाजी में कभी हम कम न थे
फिर भी हमने लौट आना अपने घर जारी रखा

कैसे कहते हैं मुकम्मल शेर या उम्दा गज़ल
सीखना 'अज्ञात' ने इल्म-ओ-हुनर जारी रखा।

ajayagyat@gmail.com

गज़ल

विनीता तिवारी
वर्ज़ीनिया, अमेरिका

आज फिर तेरे ध्यान में हूँ मैं
सातवें आसमान में हूँ मैं

ना दरीचे न दर न दरवाज़ा
जाने कैसे मकान में हूँ मैं

ज़िंदगी से शिकायतें कैसी
बाखुदा इत्मीनान में हूँ मैं

बिक न जाऊँ जुनून में उसके
एक ऊँची दुकान में हूँ मैं

छोड़ घर-बार राह में बैठे
देश के हर किसान में हूँ मैं

राम जाने रहीम ईसा को
क्यूँ भला दरमियान में हूँ मैं

नाम कुछ भी निकाल लो मेरा
हर जगह, हर ज़बान में हूँ मैं।

vinu_t@hotmail.com

बापू नाराज़ हो जाएँगे

श्री कल्याण जग्गी
हिमाचल प्रदेश, भारत

पात्र परिचय

तोतू - एक देहाती किसान
लोटू - तोतू का बेटा
कबूतरी - तोतू की पत्नी
रामभरोसे - गाँव के पण्डित
गुदड़ीमल - गाँव का साहूकार

(प्रथम दृश्य)

मंच सज्जा - *(कच्ची ईंटों से बना हुआ एक कमरे व बरामदे वाला मकान। बाँस डालकर बनाई गई घास-फूस की छत। खाना बनाने व खाने की जगह। रात का समय है। तोतू चूल्हे के पास ज़मीन पर गुमशुम बैठा चूल्हे की आग सेंक रहा है। कबूतरी आग में रोटी सेंक रही है। चूल्हे में सुलगती लकड़ी डाली गई है। चूल्हे से धुआँ निकल रहा है। बाँस के बने छोटे से पाइप में कबूतरी ज़ोर से लम्बी फूँक मारकर बार-बार आग जलाने की कोशिश करती है। लोटू कोयले से ज़मीन पर कुछ बनाने में मस्त है। कमरे में चुप्पी पसरी हुई है। लोटू कबूतरी की चुनरी खींचकर तुतली आवाज़ में कहता है।)*

लोटू : *(माँ के पैरों से लिपटकर)* मम्मी ! मम्मी! टीचर ने आज मुझे फिर डाँटकर कहा। कल फटी वर्दी पहनकर मत आना और जूते भी! सभी बच्चे मेरी फटी हुई वर्दी देखकर मुझे चिढ़ाते हैं। मैं कल स्कूल नहीं जाऊँगा।

(यह कहकर लोटू रोने लगता है। कबूतरी लोटू के रोने की आवाज़ को अनसुना कर देती है। लकड़ी के पाइप को उठाकर उसमें लम्बी साँस भरकर फूँक मारती है। इससे पाइप में से बाँसुरी की तरह एक मीठा सुर निकलता है और चूल्हे में तेज़ आग जलने लगती है। कबूतरी अपनी चुनरी उठाकर माथे पर पड़ा पसीना पोंछकर कहती है।)

कबूतरी : लोटू के पापा। ये कई दिनों से नई वर्दी तथा जूते माँग रहा है। अब तो इसकी वर्दी का सारा रंग भी निकल गया है। ये पतली होकर कई जगह से फट भी गई है, बिल्कुल जूनी हो गई है। अब इसमें टाँके भी नहीं लग रहे हैं। तीन साल पहले आलू की फ़सल बेचकर खरीदी थी। यह अब छोटी भी हो गई है। अब लोटू के पाँव लम्बे हो गए हैं और जूते छोटे और कई जगह से कट-फट गए हैं। मैंने ये कल मोची को दिखाए थे, उसने कहा अब रिपेयर नहीं होंगे। नए खरीद लो। कई दिनों से कह रही हूँ, लोटू की स्कूल की नई वर्दी और जूते ले आओ।

तोतू : *(गहरी साँस भरते हुए)* सोचा तो था। अब की बार ले आऊँगा, टमाटर की फ़सल बेचकर। पर उस मौसमी बरसात ने सारे अरमानों पर पानी फेर दिया। गरीब की इच्छा कब पूरी होती है। कई महीनों से देख रहा हूँ, तू फटी चुनरी लेकर घूम रही है। और लोटू की फटी हुई वर्दी और जूते रोज़ ही देखता हूँ। बहुत दुख होता है। कभी-कभी सोचता हूँ कि थोड़ी-सी जगह बेच दूँ। कुछ घर की मरम्मत हो जाएगी। लोटू और तुझे कुछ नए कपड़े ले दूँगा।

कबूतरी : देखो। लोटू के पापा। फिर कभी अपनी ज़मीन बेचने की बात ना करना। आपके बापू ने कितनी ज़मीन छोड़ी थी। सारी ही तो बेच दी आपने। इस टपरू के इलावा एक खेत ही, तो बचा है। बचा तो हमारी रोटी का

सहारा है। अब देखो, अनाज के डिब्बे भी खाली पड़े हैं। सोच रही हूँ। माँ से थोड़ी-सी गेहूँ उधार ले आऊँ।

(तभी उनके कान में पण्डित रामभरोसे की आवाज़ पड़ती है।)

रामभरोसे : तोते! तोते! तोते!

तोतू : जी। आया पण्डित जी!

(तोतू रसोई की खिड़की से सिर निकालकर बाहर झाँक कर कहता है।)

तोतू : राम-राम पण्डित जी!

रामभरोसे : तोते। परसों तेरे बापू का श्राद्ध है। सुबह ग्यारह बजे आऊँगा। श्राद्ध के सामान तैयार रखना। अरे हाँ! शाम के समय मेरे घर आ जाना। सामान की लिस्ट लेने।

तोतू : जी, पण्डित जी। आ जाऊँगा।

(यह सुनकर कबूतरी बड़बड़ाने लगती है। गुस्से से पाइप उठाकर ज़ोर से चूल्हे में फूँक मारती है।)

कबूतरी : हमारे पास है ही क्या ? श्राद्ध में रखने के लिए। गुड़ की एक ढेली तक नहीं है। राशन भी कहाँ है। दाल, चावल, हल्दी, घी बहुत कुछ रखना होता है, श्राद्ध में। घर में तो कुछ भी नहीं है। कल पण्डित जी को मना कर देना। कोई बहाना बना देना। कह देना हम अपने स्तर पर ही श्राद्ध छुड़ा लेंगे।

(यह सुनकर तोता रसोई की खिड़की बन्द करके कहता है।)

तोतू : मुई। ऐसा मत बोलो। बापू सुन लेंगे, तो नाराज़ हो जाएँगे।

(तभी किचन में सन्नाटा छा जाता है।)

लोटू : मम्मी रोटी दो!

(लोटू की आवाज़ सुनकर कबूतरी चूल्हे के ऊपर रखी अधजली रोटी उठाकर उसकी तरफ़ बढ़ाकर फिर बाँस की बनी पाइप में लम्बी फूँक मारकर आग सुलगाने की फिर से कोशिश करती है। इससे आग में से तेज़ लपटें उठती हैं, जिसे देखकर कबूतरी चूल्हे में पड़ी रोटी को गोल-गोल घुमाने लगती है।)

(द्वितीय दृश्य)

(पण्डित रामभरोसे के घर का दृश्य। पण्डित जी बरामदे में आसन लगा बैठे हैं। दो तीन और जजमान भी उनके सामने बैठे हैं। तोतू पण्डित जी के सामने वाले सीमेंट के खम्भे की ओट लेकर बैठा है। पण्डित रामभरोसे उसे थोड़ा इन्तज़ार करने का इशारा करते हैं। सारे अतिथियों के चले जाने के बाद वे कहते हैं।)

रामभरोसे : तेरे बापू बगुला बड़े धर्म-कर्म वाले आदमी थे। तेरे पिता की पुरखों पर पूरी श्रद्धा थी। हमेशा अपने बापू का श्राद्ध करते थे। पूरी लगन से। कई तरह के पकवान परोसते थे, पितरों को। इसलिए पितरों का आशीर्वाद मिला था उन्हें। खूब खा-पीकर जीये। अब तेरी बारी है। अच्छी तरह से उनका आदर करते रहना, तू भी। सभी कुछ देना उनको। भांडे-बरतन, मंजा, चादर, रजाई, चप्पल, वस्त्र, आदि बहुत कुछ देना पड़ता है। उनके खाने का सारा सामान। तब जाकर तृप्त होगी, तेरे बापू की आत्मा।

(तोतू कुछ गम्भीर मुद्रा बना लेता है। कुछ देर सोचने के बाद कहता है।)

तोतू : इस पर कितना खर्चा आएगा?

रामभरोसे : तोतू। सरकार ने बड़े टैक्स थोप दिए हैं। हाऊस टैक्स, पानी टैक्स, बिजली टैक्स, वगैरह-वगैरह। सब कुछ महँगा है, आजकल। ऊपर से लॉकडाउन। कालाबाज़ारी, कमीशनखोरी ने जनता को निचोड़कर रख दिया है। अब लोगों के लिए पितरों को मनाना गले की हड्डी बन गया है।

भांडे-बरतन भी बहुत महँगे हो गए हैं। बैड, चादर, कम्बल, रजाई। सब कुछ देना पड़ता है। पर तोतू ! तू चिंता मत कर। मेरे पास इसका भी उपाय है। मैंने जनता की भलाई के लिए कुछ पितर पैक बनाए हैं।

तोतू : जी! मैं समझा नहीं।

रामभरोसे : पहला कोम्बो पैक है। वी.वी.आई.पी. पितरों के लिए, जिसमें फ़र्नीचर, मोडुलर किचन, महँगे फ्रूट्स, नट्स, शराब, कपड़े, जैकेट तथा शूज़। सब कुछ इटैलियन हैं। यह पैक बड़े उद्योगपति, मंत्री, फ़िल्म सितारे जैसे पितरों के लिए है।

दूसरा रेन्बो पैक है। वी.आई.पी. पितरों के लिए, जिसमें इन्डियन फ़र्नीचर एक्सपोर्ट क्वालिटी, गोदरेज किचन, कश्मीर तथा हिमाचल से आयातित फ्रूट्स व नट्स, इंडियन मेड ब्रांडेड शराब, वुडलैंड शू, कपड़े तथा जैकेट वगैरह वगैरह। इसमें बड़े ऑफ़िसर्स, रिपोर्टर्स नामी-गिरामी पितर आते हैं। पर तेरा बापू तो एक आम आदमी था। इसलिए उनके लिए तीसरा आम पितर पैक है। इसका सारा फ़र्नीचर लोकल मेड है। कपड़े, शूज़ तथा शराब, सभी कुछ देसी, सस्ता और टिकाऊ। भरोसेमंद पैक है। लोकप्रिय है, बहुत बिकता है। इसमें अटके-भटके, लटके सभी किस्म के पितर आ जाते हैं। तुम्हारे कैटिगरी के लोगों के लिए है।

तोतू : अरे हाँ ! बापू जी देसी आदमी थे। शराब भी देसी पीते थे। कई बार शराब पीकर झाड़ियों से लटके मिले थे। बड़ी आवभगत करते थे, पितरों की। श्राद्ध के दिन हमेशा टुन्न रहते। सभी पितरों को भी खूब टल्ली करते। ये वाली पैक फ़ाइनल।

रामभरोसे : ठीक है फिर। सारा सामान श्राद्ध के दिन आपके घर पहुँच जाएगा। आप इस सामान का पेमेंट श्राद्ध से पहले ही कर देना। वरना पितरों को कुछ भी नहीं मिलेगा।

तोतू : जी, पण्डित जी। मैं सारा पेमेंट कल ही कर दूँगा।

(तोतू खुश होकर वहाँ से निकलता है)

(तृतीय दृश्य)

(तोतू सीधा सेठ गुदड़ीमल के घर जाता है। सेठ बरामदे में बैठे हुए हुक्का गटक रहा है। उसका मुंशी पास बैठा कुछ लेन-देन की बात समझा रहा है। सेठ हुक्के से लम्बी साँस खींचता है। ज़ोर से गटगट की आवाज़ आती है।)

तोतू : सेठ जी। नमस्ते।

(हुक्के से फिर गटगट की आवाज़ आती है।)

गुदड़ीमल : तोतू कब आया तू! बैठ।

तोतू : जी, बस अभी!

(तोतू वहाँ पर सिर झुकाए नीचे ही बैठ जाता है। मुंशी फिर सेठ को हिसाब-किताब समझाने की कोशिश में जुट जाता है। हुक्के से फिर गटगट की आवाज़ आती है।)

तोतू : *(सिर झुकाकर कहता है)* सेठ जी। बापू को मरे हुए चार साल हो चले हैं। परसों श्राद्ध है, उनकी। घर में कुछ पुराने बरतन पड़े हैं। माँ ने बनाये थे। बापू का पुराना कड़ा है। लोहे की कड़ाही। सिल्वर की टूटी-फूटी पतीली। यही सब कुछ बापू की अमानत है। अब पण्डित जी कहते हैं। प्रेशर कुकर, कड़ाही, पतीली, कलछी, चूल्हा गैस, तवा, बेलना, आटा, चावल, तेल, हल्दी, नमक, मिर्च, गुड़, रसोई का सारा सामान देना पड़ेगा। नहीं दिया तो बापू जी का खाना नहीं बनेगा। बापू भूखे रहेंगे तो पितरकोप लगेगा।

गुदड़ीमल : *(गम्भीर मुद्रा में)* ठीक तो बोला पण्डित जी ने। सभी ने तो दिया। तेरे बापू ने तेरे दादा को। दादा ने परदादा को। परदादा ने

लक्कड़ दादा को। न जाने कब से पुरखों को सामान सप्लाई हो रहा है। तू भी जुगाड़ कर। और भेज दे उनको। पण्डित रामभरोसे की कोरियर एजेंसी से।

तोतू : जी। यही सोच रहा हूँ। मैं भी। इसीलिए आपके पास आया हूँ।

गुदड़ीमल : *(कुछ सोचते हुए)* हाँ। हाँ। बोल तोतू!

तोतू : *(कुछ झिझकते हुए)* जी। आपसे कुछ छुपा नहीं है। बापू तो कुछ खास छोड़कर नहीं गए हैं। एक घास-फूस वाला टपरू है। एक बीघा ज़मीन है। वही एकमात्र सहारा है, बच्चों का पेट भरने के लिए। आपके पास आया हूँ। कुछ पैसों का बन्दोबस्त कर देते, तो बापू का श्राद्ध कर देता।

गुदड़ीमल : *(बनावटी सांत्वना देते हुए)* देख तोतू। तेरा बापू मरा। तू उसकी बरसी पर तब भी मेरे पास आया था। और भी कई मौकों पर। काफ़ी कर्ज़ हो गया है, मेरा तेरे ऊपर। तेरे बापू का भी बकाया है। वह भी तेरे सिर पर ही मढ़ा है। पर फिर भी करूँगा मैं तेरी मदद। पर...

तोतू : *(मायूस होकर)* मना मत करना। सेठ साब। आपके सिवा मैं और कहाँ जाऊँगा?

गुदड़ीमल : तोतू मेरे घर के सारे दरवाज़े तेरे लिए खुले हैं। तू चिंता मत कर। तेरे बापू के साथ मेरे बड़े अच्छे रिश्ते थे। बड़े सेठ जी के साथ भी। अब वे और तेरे बापू दोनों परलोक में हैं। इकट्ठा। खूब दोस्ती निभा रहे होंगे, वहाँ भी। तेरे बापू ने ही बड़े सेठ जी को कारोबार करने के लिए अपनी भूमि दी थी। तेरे बापू के आशीर्वाद से अच्छा कारोबार चला हुआ है। तेरे बापू ने एक गाय पाल रखी थी। उनके मरने के बाद तूने तो कोई भी पशु न पाला है। तेरी यह जगह बेकार पड़ी है। तेरे बापू के आशीर्वाद से कार, जीप, टैम्पो सब कुछ है। पर पार्किंग की समस्या है। तू ये जगह दे देता, तो हमारी सारी समस्याएँ हल हो जातीं।

(यह कहकर सेठ हुक्के से गड़गड़ की आवाज़ निकालता है। कमरे में कुछ देर सन्नाटा छा जाता है। थोड़ी देर बाद तोतू कहता है।)

तोतू : सेठ साब। मैं तो पहले ही सोच रहा था। थोड़ी-सी जगह बेच दूँ। घर की गरीबी दूर हो जाएगी। पर कबूतरी मना कर रही है।

गुदड़ीमल : *(अपनी आवाज़ तीखी करते हुए)* देख। ज़मीन, जायदाद, पैसा ज़रूरत पर काम न आए, तो उनका क्या फ़ायदा। पुरखों का श्राद्ध ना करना मतलब पितरों से बैर। खतरनाक है बहुत। पितरकोप।

तोतू : *(कुछ सोचने के बाद)* सरकार ने हमारे बुज़ुर्गों को यह जगह दी थी। बुज़ुर्गों की जगह बुज़ुर्गों के ही काम आ जाए। यह अच्छा ही तो है। आप के लिए कोई मना थोड़ी ही है!

गुदड़ीमल : देख तोतू। तेरे बापू की भी यही सोच थी। खूब श्राद्ध किए। तेरे बापू ने अपने बुज़ुर्गों के। खूब खिलाता-पिलाता था, उनको। मेरे बापू ने हमेशा उनकी सहायता की। और तेरे बापू ने मेरे बापू की। तोतू सम्बन्ध तो लेन-देन से ही मज़बूत बनते हैं, न। और हाँ, खूब मज़े से श्राद्ध करना!

(गुदड़ीमल कुछ देर सोचता है और तोतू को देखकर मुस्कुराते हुए, थोड़ी ऊँची आवाज़ में) मुंशी जी। तोतू के बापू के श्राद्ध का इन्तज़ाम करवा देना। देखना कोई कमी न रहे। और हाँ। चाय-वाय भी पिलाओ, इन्हें।

(थोड़ी देर बाद मुंशी एक गठरी लाकर तोतू के सिर पर लाद देता है। तोतू के चेहरे पर उदासी का भाव होता है।)

(पर्दा गिरता है)

kalyanjaggi@gmail.com

प्रौद्योगिकी के पंखों के साथ राजभाषा हिंदी की उड़ान

डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा
नई दिल्ली, भारत

पात्र

सचिव राजभाषा
निदेशक राजभाषा
अध्यक्ष सीडैक
माँ
तेजस
उद्घोषक
वत्सला
वरदायिनी
अध्यापिका
अबीर
हिमाद्रि
तकनीकी विशेषज्ञ

दृश्य एक

(मंच से पर्दा उठता है और राजभाषा विभाग के सभागार पर प्रकाश होता है। सभागार में सचिव महोदय की अध्यक्षता में तकनीकी विशेषज्ञों के साथ बैठक होती है।)

सचिव : नमस्कार, आप सभी का स्वागत है। आज राजभाषा विभाग एक नई पहल करने जा रहा है, जो हिंदी और उससे जुड़े केंद्र सरकार के अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए किसी क्रांति से कम नहीं होगा। यदि हमारे विचार तकनीक के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप में सामने आएँगे, तो राजभाषा हिंदी के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होगा।

माननीय प्रधानमंत्री जी 'डिजिटल इंडिया' का आह्वान कर रहे हैं। आने वाले समय में भाषा के साथ प्रौद्योगिकी का भविष्य उज्ज्वल है, तो क्यों न भाषा के क्षेत्र में यह शुरुआत राजभाषा विभाग ही करे। मुझे विश्वास है कि सीडैक, पुणे के साथ हम तकनीकी टूल्स तैयार करने में सफलता प्राप्त करेंगे। अब मैं निदेशक राजभाषा और निदेशक सीडैक को चर्चा के लिए आमंत्रित करता हूँ।

निदेशक : धन्यवाद सचिव महोदय, हमारे केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों में लगातार अनुवाद कार्य चलते हैं तथा संसद-सत्र के दौरान समय की कमी और काम की अधिकता बहुत रहती है। इस प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए हमें ऐसे सॉफ़्टवेयर की आवश्यकता है, जो समय की बचत भी करे और अनुवाद पूरी तरह से ठीक हो। सॉफ़्टवेयर का उपयोग करने की विधि सरल होनी चाहिए। मैं अध्यक्ष सीडैक, पुणे से अनुरोध करता हूँ कि वे इन सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सॉफ़्टवेयर का निर्माण करें।

अध्यक्ष : धन्यवाद सचिव महोदय, धन्यवाद निदेशक राजभाषा। आज की बैठक में हुए विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए यह हमारे विभाग का सौभाग्य होगा कि हम राजभाषा हिंदी के सरल अनुवाद को तकनीकी रूप से ग्राह्य बनाने में अपना योगदान दें।

सचिव : आप सभी इस विषय पर अपने तार्किक विचार रखें। हमें आशा है कि हम अपने उद्देश्य में अवश्य ही सफल होंगे और अपने लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

(कार्यालयी हिंदी से संबंधित अनुवाद हेतु सॉफ़्टवेयर बनाने का निर्णय होता है और धन्यवाद-ज्ञापन के साथ बैठक समाप्त हो जाती है।)

(पर्दा गिरता है)

दृश्य दो

एक भारतीय परिवार

(मंच से पर्दा उठता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एक घर (प्रकाश आता है।) एक ऐसा संभ्रांत परिवार जहाँ भारतीय संस्कृति, भाषा और शिक्षा दर्शन का सामंजस्य देखने को मिलता है।)

माँ : तेजस, आज विद्यालय में क्या हुआ?

तेजस : माँ, आज का दिन बहुत अच्छा रहा। सभी विषयों पर अध्यापकों द्वारा प्रश्न लिये गए, जिससे छात्रों की समस्याओं का समाधान हो सके।

माँ : यह तो बहुत अच्छी बात है। जब तक एक विषय पूरी तरह से समझ में न आए, तब तक आगे नहीं बढ़ना चाहिए। अच्छा, एक बात तो बताओ? क्या विद्यालय में कविता-पाठ प्रतियोगिता होने जा रही है?

तेजस : हाँ माँ, दूसरे विद्यालयों के छात्र आकर अपना-अपना काव्य-पाठ करेंगे। कविता का विषय 'भारत और भारतीय संस्कृति' रखा गया है। माँ, मैं भी इस प्रतियोगिता में भाग लूँगा। क्या आप मुझे कविता-पाठ सिखाएँगी?

माँ : *(मुस्कुराती हुई)* हाँ बेटा! मैं तुम्हें एक बहुत सुंदर कविता याद करा दूँगी।

तेजस : *(माँ के गले लगते हुए)* तुम कितनी प्यारी हो माँ।

(पर्दा गिरता है)

दृश्य तीन

कविता-पाठ प्रतियोगिता

(पर्दा उठता है। विद्यालय का सभागार, जहाँ काव्य-पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है। छात्र और उनके साथ आए अध्यापक उपस्थित हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने वाले सभी छात्र अग्रिम पंक्ति में बैठे हैं।)

उद्घोषक : प्यारे बच्चो! आप सभी आने वाले कल हैं। इन प्रतियोगिताओं का आयोजन आपको अपने राष्ट्र की भाषा, संस्कृति, प्राकृतिक संपदा और यहाँ पर जन्मीं महान् विभूतियों से परिचय कराने हेतु किया जाता है। आप सभी के मध्य एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा होनी चाहिए और हार-जीत से ऊपर उठकर केवल अपनी भावनाओं को कविता के माध्यम से व्यक्त करें। मैं एक-एक करके हर प्रतिभागी को मंच पर बुलाऊँगा। सबसे पहले हमारे सामने हिंदी भाषा पर श्री विनय जी द्वारा रचित कविता लेकर वत्सला आ रही हैं!

वत्सला : *(कविता-पाठ करती है।)*

"उर्दू से परहेज़ नहीं, अंग्रेज़ी लगता प्यारा,
हिंदी को ही भूल गया, हिंदुस्तान हमारा
बोलो सा रारारारा"

***

"अ, आ, इ, ई, याद न आई,
पर a, b, c, d आती,
है बुखार ये ऐसा
जिसका डाउन न होता पारा
बोलो सा रारारारा"

उद्घोषक : बहुत सुंदर वत्सला, आपका प्रयास सराहनीय रहा। अब आपके समक्ष अपनी कविता प्रस्तुत करने आ रही हैं, वरदायिनी।

वरदायिनी : ***(मंच पर खड़ी होकर, माइक के सामने पूरे आत्मविश्वास के साथ)*** मेरी कविता का शीर्षक है 'मुझ में भारत ज़िंदा है' जिसे अरविंद भारत जी ने रचा है।

"आँगन-आँगन तुलसी वंदन
मीरा का अभिनंदन है
जन-जीवन में प्रेम का चंदन
भारत मानवता का दर्शन है।

एक तू एक पथिक में
मैं भारत में ज़िंदा रहता
मुझ में भारत ज़िंदा है।"
(ज़ोरदार तालियाँ बजती हैं और वत्सला मंच से नीचे आती है।)

उद्घोषक : अब हमारे अंतिम प्रतियोगी तेजस अपनी कविता का वाचन करेंगे।

तेजस : *(माइक के समक्ष, पीछे से वाद्य-यंत्रों का स्वर)*
मेरी कविता का शीर्षक है 'भाति में भारतम्'। इस सुंदर कविता की रचना पद्मश्री से विभूषित डॉ. रमाकांत शुक्ला जी ने की है।
"भाति में भारतम्, भाति में भारतम्।
भूतले भाति में नारतं भारतम्।।
पावन संदेश बंधुता का,
जग में हम ने पहुँचाया है।
सत पुरुषों ने जन्म ले यहाँ,
देश का मान बढ़ाया है।
भूमंडल सब परिवार एक,
अविरल घोषित करते हैं।
अपने भारत को इस भूतल
पर दिन-दिन शोभित करते हैं।
भाति में भारतम्।"
(सारा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँजने लगता है और कुछ देर बाद परिणाम की घोषणा होती है)

उद्घोषक : आप सभी छात्रों का प्रयास अत्यंत सराहनीय रहा, परंतु प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थानों की घोषणा आप में और अच्छा करने के प्रयास को नित नई ऊर्जा प्रदान करेगा।
तो तृतीय स्थान प्राप्त किया है वरदायिनी ने।
द्वितीय स्थान पर रही वत्सला।
जी हाँ, प्रथम स्थान पर रहे तेजस।
एक बार फिर से सभी प्रतिभागियों के लिए ज़ोरदार तालियाँ!

(हॉल की भीड़ में बैठे तेजस के माता-पिता आँखों में नमी, पर होठों पर मुस्कान लिए प्रफुल्लित थे।)

(पर्दा गिरता है)

दृश्य 4
अंग्रेज़ी की कक्षा

(पर्दा उठता है। तेजस अब नौवीं कक्षा में है तथा अध्यापिका अंग्रेज़ी की कक्षा ले रही है।)

अध्यापिका : Today, we will study pronunciation and words with same sounds but meaning is different. I will give some examples. Chemistry will sound 'ch' like 'क' chemist, but Chest will sound like 'च'. Now take another example Cut - कट, but Put will be - "p-u-t" - not - पट. Words "Accept and Except" both are same in pronunciation but their meaning is different. Same as with "know and No". Ok, students, got it.

तेजस : मैम हिंदी और संस्कृत बहुत शुद्ध और तार्किक भाषाएँ हैं, पर अंग्रेज़ी भाषा में इन शब्दों के उच्चारण के पीछे का क्या तर्क है।

अध्यापिका : हर भाषा का अपना कायदा होता है। भाषाविदों के अनुसार यह भाषा अवैज्ञानिक है। बस चलन में है आजकल। सफल होने का आधार आपकी फर्राटेदार अंग्रेज़ी बोलना ही तो है। आज बिना अंग्रेज़ी के गुज़र ही नहीं है। आपको नौकरी भी इसी के बदौलत मिलेगी, मान-सम्मान शोहरत अंग्रेज़ी भाषा के आसपास ही घूमते हैं। इसीलिए आजकल अंग्रेज़ी भाषा को सीखना सबसे ज़्यादा ज़रूरी है।
(तेजस के चेहरे से उसके चिंतन का आभास

होता है।)

(पर्दा गिरता है)

दृश्य 5

कैंपस सिलेक्शन

(पर्दा उठता है। 3 वर्ष बीत गए, तेजस इंजीनियरिंग की प्रवेश-परीक्षा पास करके प्रतिष्ठित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान में कंप्यूटर साइंस विषय में दाखिला लेता है।)

(अखबार की एक खबर पर नज़र पड़ती है। प्रकाश होता है। सभी सहपाठी पुस्तकालय में उस पर चर्चा करते हैं।)

तेजस : *(अखबार पढ़ते हुए)* India's one of the oldest language 'sanskrit' is likely to be declared as a 'dead language'. In India 191 languages are classified as vulnerable or endangered.

अबीर : यह तो बहुत गंभीर स्थिति है। भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषाओं का मृत होना एक सांस्कृतिक संपदा को और उसमें लिखे साहित्य को खो देना है। तुम्हारा क्या कहना है हिमाद्री।

हिमाद्री : तुम बिल्कुल सही कह रहे हो, अबीर। भाषा और संस्कृति हर राष्ट्र की पहचान है। हमें भाषाओं के संरक्षण के लिए कुछ तो करना ही है। यह भी एक तरह से देश-सेवा ही है।

तेजस : क्यों न हम अपने प्रोजेक्ट का आधार भाषा और प्रौद्योगिकी को बनाएँ।
सबसे पहले ऐसी भाषा पर शोध करते हैं, जो हमारे देश में सबसे ज़्यादा बोली, सुनी और समझी जाती हो।

अबीर : हाँ बिल्कुल सही, चलो इसी प्रोजेक्ट पर हम सब मिलकर काम करते हैं।

(तीनों की चर्चा समाप्त हो जाती है और इंजीनियरिंग खत्म होते-होते कैंपस सिलेक्शन का दिन आ जाता है।)

(पर्दा गिरता है)

दृश्य 6

साक्षात्कार

(पर्दा उठता है। कैंपस सिलेक्शन के लिए बोर्ड में सीडैक, पुणे से आए तकनीकी विशेषज्ञ बैठे हैं और तेजस के बनाए 'भाषा और प्रौद्योगिकी के अंतर्संबंध' प्रोजेक्ट पर सवाल पूछ रहे हैं)

विशेषज्ञ : तेजस आपने भाषा को ही अपना विषय क्यों चुना?

तेजस : क्योंकि भाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।

विशेषज्ञ : भारत जैसे बहुभाषी देश में किस भाषा को संपर्क भाषा कहोगे?

तेजस : भाषा वही सर्वोत्कृष्ट है, जो जन-जन के मध्य सबसे ज़्यादा बोली-सुनी और समझी जाती हो। हमारे देश की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए आप समझ सकेंगे कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक और महाराष्ट्र से बंगाल तक अगर कोई भाषा बोली और समझी जाती है, तो वह एकमात्र हिंदी है। यह मात्र साहित्य की ही नहीं, अपितु ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, आयुर्विज्ञान और व्यापार की भी भाषा है।

विशेषज्ञ : आजकल तो सभी ओर अंग्रेज़ी भाषा का बोलबाला है।

तेजस : *(हँसते हुए)* सर, यह हमारा भ्रम है। आज भी हमारे देश में अंग्रेज़ी बोलने वालों की संख्या बहुत कम है। जब भावनाएँ व्यक्त करने का प्रश्न हो, तब हिंदी-सा मधुर कुछ भी नहीं लगता है।

विशेषज्ञ : आपने प्रौद्योगिकी में अपने स्पेशलाइज़ेशन के लिए हिंदी भाषा को ही क्यों चुना?

तेजस : हमारी सभी भाषाएँ इतनी समृद्ध है कि हमने

25 भाषाओं को अपनी राजभाषा बनाया। श्रेष्ठ राष्ट्र की परिकल्पना के लिए एक भाषा का होना अनिवार्य है, इसीलिए मैंने हिंदी भाषा का चयन किया।

विशेषज्ञ : क्या आप ऐसे तकनीकी टूल और सॉफ़्टवेयर को डिवलप कर सकते हैं, जो हिंदी और हिंदीतर भाषियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो?

तेजस : जी सर, इंजीनियरिंग के दौरान जो कुछ भी तकनीकी समझ अर्जित की है, वह सब एक साथ समग्र रूप से लाने का प्रयास करूँगा।

विशेषज्ञ : ठीक है तेजस, आप जा सकते हैं।

(तेजस के तर्कों से संतुष्ट बोर्ड वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी के रूप में उसका चयन करता है, सभी सिर हिलाते हैं।)

(पर्दा गिरता है)

दृश्य 7

(पर्दा उठता है। तकनीकी विशेषज्ञ और बोर्ड के विचार-विमर्श के बाद तेजस को वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी के रूप में सीडैक, पुणे हेतु चुन लिया जाता है। कैंपस के नोटिस बोर्ड पर, थोड़ा-सा प्रकाश, सिलेक्शन कमेटी का लेटर लगा है, जिसे देखकर अबीर और हिमाद्री तेजस को बताते हैं।)

अबीर : हिमाद्रि, तुम्हारा चयन एनआईसी के लिए हुआ है। वाह, क्या बात है!

हिमाद्री : अबीर, तुम भी तो राष्ट्रीय उपक्रम में सिलेक्ट हुए हो। तुम्हें भी बहुत बधाई। चलो चलकर तेजस को बताते हैं।

अबीर : पर वह होगा कहाँ?

कहाँ हो सकता है, वहीं अपने प्यारे कंप्यूटर लैब में बैठा होगा।

दोनों हँसते हैं...

(दोनों तेजस के पास पहुँचकर सीडैक पुणे में उसकी नियुक्ति के विषय में इशारों में बताते हैं।)

(पर्दा गिरता है)

दृश्य 8

सीडैक, पुणे में बैठक

(सीडैक पुणे में निदेशक राजभाषा और निदेशक सीडैक पुणे की 'कंठस्थ' सॉफ़्टवेयर को बनाने हेतु बैठक)

अध्यक्ष : *(बैठक को संबोधित करते हुए)* हमारे लिए हर्ष का विषय है कि आज हमारे बीच सचिव, राजभाषा विभाग उपस्थित हैं, जिनका पूर्णरूपेण प्रयास है कि हिंदी को विश्व पटल पर पहुँचाया जाए। इसके लिए हमें राजभाषा कार्यान्वयन में प्रयोग होने वाले केंद्र सरकार के कार्यालयों और मंत्रालयों में प्रयुक्त हिंदी के अनुसार सॉफ़्टवेयर का निर्माण करना है। निदेशक राजभाषा से अनुरोध है कि वे इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए अपनी सॉफ़्टवेयर संबंधी आवश्यकताओं पर प्रकाश डालें।

निदेशक : धन्यवाद, केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों में कैबिनेट नोट, ज्ञापन, संसदीय प्रश्न तथा बहुत प्रकार के अन्य दस्तावेज़ आते हैं, जिनका हमें तुरंत अनुवाद करना होता है। अनुवाद के लिए उच्च अधिकारियों द्वारा वेट भी किया जाता है। पुनरावृत्ति होने के कारण समय की बहुत बर्बादी होती है। इसी को ध्यान में रखते हुए यह कार्य मशीनी अनुवाद द्वारा किया जाना ज़रूरी है।

अध्यक्ष : तेजस, क्या आप कुछ कहना चाहेंगे? आपने तो इसी प्रकार के प्रोजेक्ट का अपने इंजीनियरिंग के दौरान चयन किया था।

तेजस : जी सर, हम एक ऐसा प्रोग्राम डिवलप कर सकते हैं, जो अंग्रेज़ी और हिंदी दोनों ही प्रकार की फ़ाइलों को अपनी स्मृति में रख सके। ज़रूरत के अनुसार किसी भी

प्रकार के अनुवाद को किसी भी समय प्राप्त किया जा सकेगा और समय-समय पर उस अनुवाद को अपडेट भी किया जा सके। हम इसमें एक फ़ीचर यह भी रख सकते हैं कि अनुवादक द्वारा अनुवाद करने के बाद वह अपना कार्य उच्च अधिकारी को भेजें, जिसे हम 'वेटर' कहेंगे। उनके द्वारा जाँच करने के बाद ही वह अनुवाद पूरी तरह से ठीक कहा जाएगा तथा उपयोग के योग्य होगा।

अध्यक्ष : मुझे आपका विचार पसंद आया है। तेजस अब जल्दी से इस प्रोजेक्ट पर अपनी टीम के साथ काम करना शुरू कर दीजिए। बीच-बीच में हम सचिव राजभाषा और निदेशक राजभाषा से इस विषय में बातचीत करते रहेंगे। आपको शुभकामनाएँ, तेजस! वर्ष 2018 में 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन में राजभाषा विभाग और सीडैक पुणे के संयुक्त तत्वाधान से तैयार सॉफ़्टवेयर 'कंठस्थ' का लोकार्पण होता है।

(पर्दा गिरता है)

जैसी करनी वैसी भरनी

सुश्री प्रेरणा आर्यनाईक
न्यू ग्रोव, मॉरीशस

पात्र

एक नौजवान सूत्रधार (आयुष)
एक नौजवान ड्राइवर (अंकित) (ड्राइवर की वेशभूषा में)
दूसरा नौजवान स्कूल बस (कमल) (पीले कपड़ों में)
चार बच्चों की प्रथम टोली (स्कूल ड्रेस में)
चार बच्चों की द्वितीय टोली (स्कूल ड्रेस में)

(पर्दा खुलता है। प्रकाश के घेरे में सूत्रधार (आयुष) दिखाई देता है। तबले की ताल पर उसकी बुलंद आवाज़)

आयुष : यह एकांकी चेतावनी है उनके लिए (तबले की थाप), जो शराब के नशे की हालत में चलाते हैं वाहन। (तबले की थाप) और देते हैं दुर्घटनाओं को आमंत्रण। (तबले की दो बार थाप) और उन्हें भी चेतावनी, (एक थाप) जो वाहन तेज़ गति से चलाते हैं। (तबले की दो बार थाप) खुद तो कठिनाइयाँ उठाते ही हैं (एक थाप) राहगीरों को भी मौत की नींद सुला देते हैं। *(तबले की दो बार थाप)*

(मंच पर अंधेरा होता है सूत्रधार (आयुष) चला जाता है और पुनः प्रकाश होता है। एक नौजवान (अंकित) ड्राइवर की कुर्सी पर बैठा है, गाड़ी की स्टीयरिंग पर हाथ उसका है। वह वाहन चलाने की भावमुद्रा में बैठा है। उसके पीछे पीले वस्त्रों में ढका हुआ दूसरा नौजवान (कमल) ज़मीन पर लेटा स्कूल बस बना रहा है। उसके पीछे चार-चार बच्चों की दो टोलियाँ-बस की बेंचों पर बैठी हैं। बस बने कमल के मुँह से धर्रधर्र की आवाज़ आ रही है।)

कमल : मुझे इतनी तेज़ गति से क्यों चला रहे हो? देखते नहीं, सड़क पर कितनी भीड़ है, आराम से नहीं चला सकते हो क्या?

अंकित : क्या कहा? क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि आराम हराम होता है। आराम करने वाले कभी आगे बढ़ पाते हैं? ऊँह, बड़ी आई आराम वाली! *(विचित्र-सा मुँह बनाता*

है।)

कमल : मेरा मतलब है, इतनी भीड़ है, सड़क पर चलने को जगह नहीं है और तुम मुझे इतनी तेज़ गति से चला रहे हो, कहीं दुर्घटना हो गई, तो लेने के देने पड़ जाएँगे। मेरी तो टूट-फूट होगी ही, तुम्हारा भी सर फूट-फट सकता है। और ये नन्हे फूल से बच्चे, इनका क्या होगा, जानते हो? तुम्हारी करनी का फल हम सबको भुगतना पड़ेगा।

अंकित : जा-जा चुप रह, बहुत बोलने लगी है आजकल। स्कूल वालों ने तुझे पीले रंग से क्या पोत दिया, तू स्कूल बस बनकर इतराने लगी है। मैं तेरा ड्राइवर हूँ। तुझे तेज़ चलाऊँ अथवा धीरे, मेरा मन। तू कौन होती है रोकने वाली? *(धीमी आवाज़ में बड़बड़ाता हुआ)*

कमल : ए भाई, ज़्यादा अकड़ मत दिखाओ। मैं बस हूँ, हवाई जहाज़ नहीं कि ले उड़ो। सड़क पर इतनी भीड़-भड़ाका है अगर कुछ हो गया, तो क्या करेंगे? तुम क्यों नहीं समझते?

(अचानक मंच पर अंधेरा हो जाता है। सूत्रधार (आयुष) प्रकाश के घेरे में फिर दिखाई देता है।)

(उसके गाने की आवाज़ आती है, लय और ताल के साथ)

आयुष : चलो संभल के, चलो संभल के, यह तो बस है, चलो संभल के।
ना समझो यह वायुयान है, ना समझो गगन की उड़ान है।
यह तो वाहन भाई सड़क का, सड़कों पर है, भीड़-भड़ाका।
अगर संभल के नहीं चलाया, तो समझो, वाहन टकराया।
चलो संभल के, चलो संभल के, यह तो बस है, चलो संभल के।

(मंच पर प्रकाश हो जाता है। सूत्रधार (आयुष) चला जाता है। ड्राइवर बस की गति और तेज़ कर देता है। अपने मुँह से ज़ोर-ज़ोर से धर्र-धर्र की आवाज़ निकालने लगता है।)

कमल : ड्राइवर जी, तुमने सुना नहीं क्या? क्या बहरे हो गए हो? क्या कोई नशा किया है? मैं धीरे चलने को कह रही हूँ और तुम अपनी गति बढ़ाए जा रहे हो। क्या तुम पागल हो गए हो।

अंकित : हाँ-हाँ, मैंने नहीं सुना, मैं बहरा हो गया हूँ, मैंने शराब पी है, नशे में हूँ, बोलो अब क्या कहती हो? अरी बहना सुन मेरा कहना, शराब पीकर वाहन चलाने का अपना अलग ही आनंद है। सारा भय समाप्त हो जाता है। कितना भी तेज़ चलाओ, कोई रोक-टोक नहीं। तुम थोड़ी-सी पीकर तो देखो, पीने का आनंद कुछ और ही चीज़ है। अरे 'बस मैडम', आप तो रहने दो बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद। देखो कितना शानदार रोड है। काली नागिन की तरह लहराता हुआ। मज़ा आ रहा है। सौ की गति से चला रहा हूँ। मालूम भी नहीं पड़ रहा है। लोअपनी गति और बढ़ाता हूँ...। अरा रा रा रा... ये गाय कहाँ से आ गई। *(ज़ोर से ब्रेक लगाने का भाव)*

प्रथम टोली : अरे, अरे... यह क्या करते हो ड्राइवर अंकल, हम लोग सीट पर लुढ़क रहे हैं, हमारे सर छत से टकरा रहे हैं। धीरे चलो प्लीज़, हमें डर लग रहा है। *(बच्चे डरे सहमे से)*

दूसरी टोली : नहीं ड्राइवर अंकल और तेज़ चलाओ, बहुत आनंद आ रहा है। हम लोग सीट

को ज़ोर से पकड़कर बैठे हैं। खूब तेज़ चलाओ, खूब तेज़ हवाई जहाज़ बना दो अंकल। हा हा हा हा हु हु हू हू... साहसिक कारनामा... खूब तेज़... हवाई जहाज़ की तरह *(बच्चे आनंदित होते हुए)*

कमल : बच्चो, क्या तुम्हें अपना जीवन प्यारा नहीं है? मैं 110 किलोमीटर प्रति घंटे की गति से चल रही हूँ। ड्राइवर मेरा कहना नहीं मान रहा है। तुम लोग उसे समझाओ, मेरी गति कम करवाओ। नहीं तो 'जैसी करनी, वैसी भरनी' के लिए तैयार हो जाओ।

प्रथम टोली : हाँ-हाँ बस दीदी, आप ठीक कह रही हैं। इतनी ज़्यादा गति में बस चलती रही, तो भयंकर दुर्घटना हो सकती है, गाड़ी टकरा सकती है, पलट भी सकती है, फिर हम लोगों का क्या होगा? ड्राइवर अंकल गाड़ी रोको, नहीं तो हम लोग कूद जाएँगे, हमें डर लग रहा है।

(अचानक मंच पर अंधेरा हो जाता है और प्रकाश के एक गोल घेरे में सूत्रधार (आयुष) दिखता है। तबले की ताल के साथ फिर गीत गाने लगता है।)

"कहर न इस बस पर ऐसे बरसाओ, इसे नशे में नहीं चलाओ।
तेज़ चले तो सर फूटेगा जाने क्या-क्या और वाहन भी टूटेगा।
हाथ-पैर-सर रखो सुरक्षित, आने मत दो भाई कोई मुसीबत।
गति नियंत्रण में रखना है, हमें टालना दुर्घटना है।
चलो संभल कर, चलो संभल कर, यह तो बस है, चलो संभल कर।"

(प्रकाश होता है। सूत्रधार (आयुष) चला जाता है।)

प्रथम टोली : बस दीदी, आप स्वयं क्यों नहीं रुक जातीं। बिना आपकी इच्छा के चालक आपको कैसे चला सकता है? अच्छे लोगों के सामने, तो बुरे लोगों की तो पराजय होती ही है।

कमल : बच्चो, मैं रुक तो सकती हूँ, किंतु अचानक रुकने से खतरा भी है। मेरा संतुलन बिगड़ सकता है, मैं पलट सकती हूँ और तुम सब लोगों को चोट आ सकती है। क्योंकि मेरी गति बहुत तेज़ है।

प्रथम टोली : तुम अपना गियर खराब कर लो न दीदी! अथवा टैंकर का सारा डीज़ल बहा दो। ब्रेक भी तोड़ सकती हो। *(बच्चे बेबस होकर बस दीदी को समझाने लगे।)*

कमल : नहीं बेटे नहीं, मैं यह कुछ नहीं कर सकती। मेरी गति बहुत तेज़ है अभी। मैं क्या करूँ? कुछ भी नहीं कर सकती। सब भगवान भरोसे है। इसके कर्मों का फल हम सब भुगतेंगे।... देखना।

दूसरी टोली : आप भी न बस दीदी! कहाँ इन कायरों के चक्कर में आ गईं। तेज़ रफ़्तार में कितना मज़ा आ रहा है। दुनिया चाँद और मंगल पर जा रही है और आप लोग 110 की रफ़्तार में डर रहे हैं। कायर हैं सब डरपोक कहीं के।

प्रथम टोली : हमारे प्यारे दोस्तो, हम लोग सड़क पर हैं, रोकेट में नहीं बैठे हैं। ऐसा एडवेंचर किस काम का, जिसमें मृत्यु सरासर सामने दिख रही हो, जान के लाले पड़ रहे हों। देखो सड़क किनारे के बोर्डों पर क्या लिखा है, पढ़ भी नहीं पा रहे हैं। वाहन चालक नशे में है, उसे होश कहाँ है कि कहाँ क्या लिखा है।

दूसरी टोली : शराब पीने से क्या होता है, बस तो चल ही रही है न! सब लोग चुप करके बैठ

जाओ।

प्रथम टोली : वाह मेरे मिट्टी के शेरो! शराब में अल्कोहल होता है, जो पेट में जाकर एसिटलडिहाइड में बदल जाता है, जिससे अनुमस्तिष्क प्रभावित होता है और दिमाग काम करना बंद कर देता है, स्मरण-शक्ति समाप्त हो जाती है। इन्सान भ्रमित हो जाता है और... और...

प्रथम टोली : अरे बाप रे! क्या कह रहे हो? तब तो यह वाहन चालक बस को कहीं मार ही देगा। वह नशे में है। *(सब चिल्लाने लगते हैं।)* रोको, रोको! ड्राइवर अंकल रोको। *(बस के सारे बच्चे कोलाहल मचा देते हैं।)*

कमल : यह ड्राइवर नहीं मानेगा, उसे होश ही कहाँ है? बच्चो, अब सतर्क हो जाओ। मैं धीरे-धीरे पंक्चर कर रही हूँ। मेरे पास तुम लोगों की जान बचाने का और कोई रास्ता नहीं बचा। वह अपने बुरे कर्मों से हम सबकी जीवन-लीला समाप्त कर देगा।

दोनों टोलियाँ : जल्दी करो न? अब समय नहीं है। नहीं तो हम सब मर जाएँगे।

कमल : अरे, एकदम पंक्चर होने से मैं खुद को नहीं संभाल पाऊँगी और पलट जाऊँगी और तुम सब पर कहर टूट पड़ेगा। अब ज़्यादा बातें मत करो। सीटों को ज़ोर से पकड़े रहना। मैं रुकूँगी तो झटका लग सकता है। *(बस में से फुस्स्स्सस्स... की आवाज़ आने लगती है। बस बना हुआ बच्चा ही ज़ोरों से 'फुस्स' की आवाज़ निकाल रही है। और बस धीरे-धीरे रुक जाती है। ड्राइवर कूदकर भाग जाता है। भागते ही कुछ पुलिस वाले दौड़कर उसे पकड़ लेते हैं।)*

(मंच पर अंधेरा हो जाता है। प्रकाश होता तो प्रकाश के गोले में सूत्रधार (आयुष) दिखाई देता है। उसके हाथ में एक बोर्ड है, जिसमें लिखा है - 'जैसी करनी वैसी भरनी'।)

आयुष : *(गाता है)*

"जैसी करनी वैसी भरनी, ऐसे लिखे ढेर से नारे।
पढ़ो सूचना आँख खोलकर, बोर्ड लगे हैं सड़क के किनारे।
वाहन इतना ही तेज़ चलाओ, रहे नियंत्रण अपने हाथों पर।
अगर नियंत्रण टूट गया तो, समझो पल अंतिम साँसों के।
कर्मों का फल सबको यहीं भुगतना, दुर्घटना से देर भली है।
आँखें खोलकर बड़े धैर्य से, आगे बढ़ना ही अच्छा है।
थोड़ी-सी लापरवाही से, कितने लोग जाते आज मारे,
पढ़ो सूचना आँख खोलकर, बोर्ड लगे हैं सड़क के किनारे।
जैसी करनी वैसी भरनी - ऐसे लिखे ढेर से नारे।

(पर्दा गिरता है)

preranaaria@gmail.com

महारास : गोपियों के कृष्ण-प्रेम का प्रतिफल

श्री गोपाल शरण शर्मा
मथुरा, भारत

भक्ति को सदैव अपने प्रेमास्पद के प्रति दृढ़ होना चाहिए। श्रीकृष्ण की अनन्यतम भक्त, ब्रज की गोपियाँ भी कृष्ण प्रेम में दृढ़ थीं। ब्रज की गोपियाँ हर समय श्रीकृष्ण का ध्यान करती थी। गोपियों का यह अनुराग देखकर ही चौसठ कला प्रवीण श्री कृष्ण ने शरद पूर्णिमा की रात्रि को चन्द्रमा की धवल चाँदनी में यमुना पुलिन के निकट वंशीवट पर रास का आयोजन किया।

भगवानपि ता रात्रिः शरदोत्फुल्लमालिका।
वीक्ष्य रन्तु मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।।

शरद ऋतु के आगमन पर श्री कृष्ण बाँसुरी पर गोपियों के मन को हरने वाली काम-बीज मंत्र 'क्लीं' का सप्तम स्वर छेड़ने लगे और बाँसुरी एक-एक गोपी का नाम ले-लेकर "ललिते विशाखे वृषभानुजे पुकारने लगी" अब भला इस पुकार को ब्रज ललनाएँ कैसे न सुने? गोपियों की चित्त-वृत्ति एक क्षण के लिए भी श्री कृष्ण से विमुख होती ही नहीं थी, इसी कारण वे उसी क्षण बाँसुरी की पुकार, वेणु नाद सुन लेती थीं। गोपियों का अपना कुछ भी नहीं था, 'स्वसुख' की कोई कामना नहीं। हर साँस में प्रिय सुख अभिलाषा, 'तत्सुख' के लिए प्राणों को भी त्याग देने के लिए तैयार थीं। आत्मा और परमात्मा का संबंध स्थापित हो गया था। बाँसुरी प्राण वाद्य है, हृदय के सर्वोत्तम भावों को व्यक्त करने के लिए इससे बढ़कर कोई अन्य वाद्य नहीं है। "कृष्ण कन्हैया की बाँसुरी बजती है" - अर्थात् बाँसुरी बजने का तात्पर्य है - नंदनंदन व्याकुल होकर अपने अंशी को पुकार रहे हैं।

अपने प्रियतम से मधुरातिमधुर मिलन की आकांक्षा तो गोपियों के हृदय में जन्म-जन्मांतर से थी। जब दोनों ही ओर से ऐसे प्रेमी हों, दोनों में ही 'तत्सुखसुखित्व' की भावना हो, हृदय से हृदय के तार जुड़े हों। तब पृथक देह-धारण केवल लीला के लिए होता है। कृष्ण कन्हैया अपनी बाँसुरी में अपने प्राण भरकर पुकारें, तो गोपियों की हृदयतंत्री के तार कैसे न झनझनाएँ?

शरद तो शान्त, धीर और पावन है, जो आज 'उत्फुल्लमल्लिका' यानी वातावरण फूलों की महक से मदमाता है...! फूलों की एक रात जब शारदीय पूर्णचंद्र अपनी प्रखर बिम्ब में आलोकित हो सुकोमल किरणों से वातावरण में अनुराग भर देता हो, यमुना पुलिन में परिव्याप्त उस अमृतमयी रसवर्षों को ब्रजराज की बाँसुरी ऐसी रसोल्लास भर देती है कि ब्रज गोपिकाएँ जहाँ भी थीं, जिस हाल में थीं, जैसे भी थीं, जो भी कर रही थीं; सबकुछ वहीं-की-वहीं बिसारकर बस उन्माद में सभी से छुपकर चल पड़ती थीं, यमुना पुलिन की ओर अर्थात् वंशी-ध्वनि की ओर भागती थी।... 'आजग्मुरन्योनमलक्षितोद्यमा' उस रात्रि यमुना पुलिन पर गोपियों का स्वागत ब्रजराज करते थे।

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डितः।
योगेश्वर कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोद्वयोः
प्रविष्टेन गृहितानां काण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।।

भगवान् शिव से बड़ा श्री विष्णु का कोई भक्त नहीं और भगवान् विष्णु से बड़ा श्री शिव का कोई भक्त नहीं है। इसलिए भगवान् शिव सबसे बड़े वैष्णव और भगवान् विष्णु सबसे बड़े शैव कहलाते हैं। जब श्री कृष्ण ने वृन्दावन में महारास का उद्घोष किया, तब पूरे ब्रह्माण्ड के तपस्वी प्राणियों में भयंकर हलचल मच गयी कि काश हमें भी इस महारास में शामिल होने का अवसर मिल जाए। महारास में शामिल होने वालों की योग्यता को परखने का दायित्व श्री ललिता सखी की थी, जो स्वयं राधा जी की प्राणप्रिय सखी थीं और उन्हीं की स्वरूपा भी थीं।

हमेशा एकान्त में रहकर कठोर तपस्या करने वाले भगवान् शिव को जब पता चला कि श्रीकृष्ण महारास शुरू करने जा रहे हैं, तब वे भी अत्यन्त खुश होकर, तुरंत अपनी तपस्या छोड़, वृन्दावन धाम पहुँचे और बड़े आराम से गोपियों के साथ रास स्थल में प्रवेश करने लगे, पर द्वार पर ही उन्हें श्री ललिता सखी ने रोक दिया और बोला कि "हे महाप्रभु, रास

में सम्मिलित होने के लिए स्त्रीत्व ज़रूरी है!" तो भोलोनाथ ने तुरंत कहा - "ठीक है, तो हमें स्त्री बना दो।"

तब ललित सखी ने भोलेनाथ का गोपी वेश में शृंगार किया और उनके कान में राधा कृष्ण के युगल मंत्र की दीक्षा दी। माना जाता है कि तब से भगवान् शिव गोपेश्वर रूप में ही साक्षात् निवास करते हैं। वृन्दावन के गोपेश्वर महादेव मन्दिर में रोज़ शाम को नित्य रास के लिए गोपी रूप में उनका शृंगार किया जाता है। महारास का वर्णन करते हुए हरिराम व्यास जी कहते हैं -

श्याम नटुवा नटत राधिका संगे
पुलिन अद्भुत रच्यो, रूप गुन सुख सच्यौ, निरखि मनमथबधू मान-भंगे।।
तत्त थेई मान, सप्तसुर षट गान, राग रागिनी तान श्रवन भेगे।
लटकि मुह पटकि, पद मटकि, पटु झटकि, हँसि विविध कल माधुरी अंग अंगे।।
रतन कंकन क्वनित किंकिन नूपुरा-चर्चरी ताल मिलि मानि मृदंग।
लेति नागर उरप, कुँवरि औचर तिरप, व्यासदासि सुघरवर सुधंगे।। (व्यास वाणी, पृष्ठ 344)

रसिक भक्त लोक-लाज से ऊपर उठकर राधा-कृष्ण की इन्हीं लीलाओं में सदा मस्त रहता है। उसे किसी के उपहास की चिंता नहीं होती और नाही किसी की प्रशंसा की अपेक्षा होती है। यही उपासक का अनन्य प्रेम है।

gopalvuru016@gmail.com

'कोरोना' के विरुद्ध महायुद्ध में अनुवादकों की भूमिका

श्री सुनील भुटानी
हरियाणा, भारत

कोरोना वायरस जिसे हम कोविड-19 के नाम से जानते हैं, भारत में ही नहीं, अपितु विश्व के अनेक देशों में अपने खूनी पाँव पसारे हुए हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू. एच.ओ.) की 14 जनवरी, 2020 की रिपोर्ट के अनुसार संपूर्ण विश्व में 18,44,863 लोग कोरोना वायरस से संक्रमित हैं और 1,17,021 लोगों की मौत हो चुकी है। भारत में इस वायरस से संक्रमित लोगों का आँकड़ा 10,363 और मौतों का आँकड़ा 339 तक पहुँच चुका है। माना जाता है कि इस वायरस ने इन्सानों के भक्षण की शुरुआत चीन के वुहान शहर से की थी। चीन में रणनीतिक दृष्टि से अधिकांशत: चीनी (मंदारिन) भाषा का ही प्रयोग किया जाता है।

संपूर्ण विश्व में लगभग 7000 भाषाएँ हैं। विश्व के सभी देशों का सबसे बड़ा संयुक्त मंच 'संयुक्त राष्ट्र संघ' है और इसके अंतर्गत कार्य करने वाले अनेक महत्त्वपूर्ण संगठन हैं, जिनमें विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) भी शामिल है, अपनी आधिकारिक छह भाषाओं - अंग्रेज़ी, रूसी, फ़्रांसीसी, चीनी, स्पेनिश और अरबी में सूचनाएँ उपलब्ध करवाते हैं। उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र अपने हिंदी पोर्टल (https://in.one.un.org/hindi/) के माध्यम से कोविड-19 सहित अनेक कल्याणकारी योजनाओं के बारे में जागरूकता उत्पन्न कर रहा है। कोविड-19 के बारे में प्रामाणिक राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर की आधिकारिक/प्रामाणिक जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए यह पोर्टल बहुत ही उपयोगी है। साथ ही, विश्व का प्रत्येक देश राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर की मुख्य भाषाओं के माध्यम से महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का प्रचार-प्रसार करता है। भारत में 122 मुख्य भाषाएँ और 1599 अन्य भाषाएँ हैं। देश के अधिकांश लोग संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल 22 भाषाओं में से कोई-न-कोई भाषा बोलते, समझते और लिखते हैं। केंद्रीय सरकार किसी भी राष्ट्रव्यापी महत्त्वपूर्ण सूचना/एप्प आदि के लिए अंग्रेज़ी एवं हिंदी के अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण भारतीय भाषाओं का प्रयोग करती है। राज्य सरकारें अपने-अपने राज्य में अधिकांशत: बोली, समझी तथा लिखी जाने वाली भाषाओं में महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का प्रचार-प्रसार करती हैं। इन भाषाओं में राज्य की राजभाषा या

राजभाषाएँ अवश्य शामिल होती हैं। इस तरह, भारत सहित संपूर्ण विश्व का प्रत्येक देश अपनी-अपनी प्रचलित भाषाओं के माध्यम से कोरोना वायरस संक्रमण से बचाव एवं सावधानियों से संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ अपनी-अपनी जनता तक पहुँचाने का प्रयास कर रहा है। इस स्थिति से समझा जा सकता है कि विश्व को कोरोना वायरस के संक्रमण के प्रति जागरूक करने और प्राणों की रक्षा करने में भाषाएँ और अनुवादक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

कोरोना वायरस से बचाव के उपायों को ध्यान में रखते हुए केंद्रीय सरकार द्वारा तैयार किया गया 'आरोग्य-सेतु' एप्प हिंदी एवं अंग्रेज़ी सहित 11 भारतीय भाषाओं में उपलब्ध करवाया गया है। कोरोना के विरुद्ध महायुद्ध में जीत सुनिश्चित करने के लिए भाषा और अनुवाद को हथियार के तौर पर प्रयोग किया जा रहा है। उदाहरण के तौर पर, चूँकि छत्तीसगढ़ राज्य में अत्यंत नक्सल प्रभावित क्षेत्र बीजापुर में तेलुगु और मराठी भाषा के अलावा गोंडी, हल्बी, दोरली और महार बोलियाँ बोली जाती हैं, इसलिए सीमावर्ती क्षेत्र बीजापुर में जागरूकता अभियान छह भाषाओं/बोलियों में चलाया जा रहा है और इस क्षेत्र में डॉक्टरों तथा पैरामेडिकल स्टाफ़ की तैनाती भी उनके भाषा-ज्ञान के आधार पर की जा रही है, ताकि इस क्षेत्र में कोरोना को हर कीमत पर हराया जा सके। कोरोना के विरुद्ध महायुद्ध में भारत का संघीय ढाँचा भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्रत्येक राज्य/संघ शासित क्षेत्र अपनी राजभाषाओं एवं स्थानीय भाषाओं के माध्यम से लोगों को जागरूक कर रहा है, अपने-अपने राज्य के लोगों से उनकी भाषा में संवाद कर रहा है और उन्हीं की भाषा एवं बोली के जानकार लोगों को उनके इलाज में लगाने का प्रयास कर रहा है, जिससे कि स्थानीय लोग कोरोना की गंभीरता को समझ सकें और अपना पूर्ण सहयोग देते हुए इलाज करवाएँ।

राजनेताओं एवं अलग-अलग धर्मों के धर्माचार्यों द्वारा प्रयुक्त भाषा का भी कोरोना के विरुद्ध महायुद्ध में विशेष योगदान है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी देश ही नहीं, विदेशों में भी कोरोना के विरुद्ध महायुद्ध में लोगों का नेतृत्व कर रहे हैं। वे समय-समय पर देश के लोगों को हिंदी में संबोधित कर रहे हैं। अलग-अलग धर्मों के धर्माचार्य अपने-अपने अनुयायियों को उनकी सहज समझ में आने वाली भाषा के माध्यम से जागरूक कर रहे हैं। हिंदी ने देश के स्वतंत्रता-आंदोलन से लेकर हर गंभीर स्थिति-परिस्थिति में लोगों को एकसूत्र में पिरोते हुए विजय सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। कोरोना के विरुद्ध महायुद्ध में भी हिंदी हिंद की विजय पताका बनेगी और हम सभी अपने सेनानियों (राजनेतागण, अधिकारीगण, डॉक्टर एवं पैरामेडिकल तथा अन्य सहयोगी स्टाफ़ बंधुगण, मीडिया बंधुगण, पुलिस बंधुगण, स्वच्छता कर्मीगण, स्वयंसेवी संगठन एवं उनके समर्पित कार्यकर्तागण, अनुवादकगण आदि) को सहयोग करते हुए बहुत ही शीघ्र कोरोना विजय दिवस मनाएँगे। अब तक हम देश की सीमाओं पर हमारे जाँबाज़ सैनिकों का पराक्रम देखते आए हैं और अब हम हमारे उक्त सेनानियों का पराक्रम देख रहे हैं। जिस तरह किसी देश के विरुद्ध महायुद्ध में हम देशवासी एकजुट होते हैं और दुश्मन देश के दाँत खट्टे करते हैं, उसी तरह हम देशवासियों को एकजुट होकर अपने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में कोरोना के विरुद्ध महायुद्ध में विजय प्राप्त करनी है। 'कोरोना' के विरुद्ध इस महायुद्ध में अनुवादकों की भूमिका को सदैव याद रखा जाएगा।

sunilbhutani2020@gmail.com

हिंदी : हमारे देश का अभिमान

डॉ. अनामिका जैन
मुज़फ़्फ़रनगर, भारत

हिंदी भाषा एक समृद्ध एवं विकसित भाषा है। भारतवर्ष में इसे बोलने वालों की संख्या करोड़ों में है और भारत के एक प्रांत से लेकर दूसरे प्रांतों तक इसका प्रचार-प्रसार है। यहाँ तक कि विदेशों में भी इसके बोलने वाले मौजूद हैं। यह बात अलग है कि वे सभी प्राय: विदेशों में होने के कारण प्रवासी भारतीय कहे जाते हैं। भारत के जिन प्रांतों में हिंदी बोली जाती है, उनमें मध्य-प्रदेश, उत्तर-प्रदेश, बिहार, राजस्थान, दिल्ली आदि मुख्य रूप से शामिल हैं। साथ ही, अन्य प्रांतों में भी हिंदी भाषा बोली जाती है, जो कहीं अधिक और कहीं कम है। जिन सुदूरवर्ती दक्षिण-भारत के प्रांतों में अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग किया जाता है, वहाँ भी हिंदी भाषा-भाषी पर्याप्त संख्या में मिल जाते हैं। उत्तर भारत से पर्यटक दक्षिण-भारत में यात्रा के लिए जाते हैं। वे प्राय: अपनी मातृभाषा हिंदी का ही प्रयोग करते हैं, जैसे वहाँ के टैक्सी ड्राइवर और दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुओं के विक्रेता-दूकानदार व्यवहार में हिंदी भाषा का प्रयोग करते नज़र आते हैं। यद्यपि ऐसे अहिंदी भाषी प्रदेशों में हिंदी और प्रांतीय भाषाओं का मिश्रण हो जाता है, तथापि उनके परस्पर सहयोग से भावों को समझने में कहीं कोई दिक्कत नहीं होती है।

आज हिंदी भाषा शनै:-शनै: विविध प्रांतों में अपने पैर पसार रही है। इसका मुख्य कारण है, इसकी शब्द-संपदा। जहाँ दूसरी भाषाओं में एक भाव या संदर्भ को व्यक्त करने के लिए प्राय: एक ही शब्द का प्रयोग किया जाता है, वहीं हिंदी भाषा इतनी समृद्ध है कि इसमें प्रत्येक भाव को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्द हैं। हिंदी भाषा में 'चाचा', 'ताऊ', 'मामा', 'फूफा', 'मौसा' आदि के लिए पृथक-पृथक शब्द हैं, वहीं अंग्रेज़ी भाषा में इन पारिवारिक संबंधों को व्यक्त करने के लिए मात्र एक ही शब्द प्रयुक्त होता है - 'अंकल'; जोकि भाषागत दरिद्रता को प्रकट करता है। इसी प्रकार 'चाची', 'बड़ी माँ', 'मामी', 'बुआ', 'मौसी' आदि के लिए अंग्रेज़ी भाषा में मात्र 'आंटी' शब्द का प्रयोग किया जाता है; वहीं हिंदी में इन सभी रिश्तों को अलग-अलग नामों से व्यक्त करके पारिवारिक संबंधों की वास्तविकता, माधुर्य और एकता प्रकट की जाती है। ऐसे तमाम शब्द अंग्रेज़ी भाषा में आसानी से मिल जाएँगे, जोकि इस भाषा की संकुचित वृत्ति को व्यक्त करते हैं। हिंदी भाषा में कितनी गहराई है - इस बात का अनुमान आप इस उदाहरण के द्वारा आसानी से लगा सकते हैं। भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग करके रिश्तों में आपसी मज़बूती को प्रकट करने की शक्ति सिर्फ़ और सिर्फ़ हमारे देश की मातृभाषा हिंदी में ही उपस्थित है। इसके लिए संस्कृत भाषा के 'अमरकोश', 'नाममाला' आदि ग्रंथों को देखा जा सकता है। इसके पीछे एक बड़ा कारण यह भी है कि हिंदी की जननी संस्कृत है, अर्थात् भारतवर्ष की आदिकालीन भाषा, जिसमें वेद, पुराण, उपनिषद्, महाभारत और श्रीमद्भागवत् गीता जैसे धार्मिक, सांस्कृतिक और विविध कलाओं से संपन्न ग्रंथ लिखे गये हैं, इससे यह प्रमाणित होता है कि संस्कृत भाषा हिंदी की जननी है। अत: हिंदी के अधिकांश शब्द संस्कृत से गृहीत हैं, अर्थात् हिंदी शब्द संस्कृत शब्दों से विकसित हुए हैं। आज हिंदी भाषा में ऐसे ग्रन्थों की कमी नहीं है, जो संस्कृतनिष्ठ शब्दों से परिपूर्ण हैं। संस्कृत, पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाएँ हमारी धरोहर हैं और इन्हीं भाषाओं से हिंदी भाषा का विकास हुआ है। भाषाओं के बीच, शब्दों के आदान-प्रदान की परंपरा प्रारंभ से ही रही है। यही कारण है कि जहाँ क्षेत्रीय भाषाओं से हिंदी ने शब्दों को ग्रहण किया है, वहीं क्षेत्रीय भाषाओं ने भी हिंदी से विविध शब्दों को गृहीत कर अपनी-अपनी शब्दावलियों को समृद्ध किया है। विविध भाषाओं से ग्रहण की गयी शब्द-संपदा हमारे सांस्कृतिक संबंधों को भी प्रकट करती है। इससे हमारे द्वारा एक-दूसरे के भावों को और उनकी संस्कृति को समझना संभव हो पाया है, जिससे मानव-मानव में प्रेम का संचार हुआ है। हम एक-दूसरे की भाषा का भी सम्मान करने लगे हैं। यह सब मनुष्य की

स्वाभविक संकुचित मानसिकता से ऊपर उठने का प्रयास है और हम लघु भारत से बृहद् भारत की कल्पना को साकार कर रहे हैं। इस कारण हमारा भारतवर्ष अपने मूल आदर्श वाक्य 'वसुधैव कुटुंबकम्' की ओर सही अर्थों में बढ़ रहा है।

आज अपनी ही भाषा को फिर से स्थान दिलाने के लिए इतना संघर्ष क्यों करना पड़ रहा है? इसको जानने से पहले इसका थोड़ा इतिहास जानना आवश्यक है। लॉर्ड मैकाले, ब्रिटेन के एक सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, इतिहासकार, निबंधकार एवं कवि थे। वे सन् 1834 ई. से 1838 ई. तक भारत की सुप्रीम काउंसिल में लॉ मेंबर तथा लॉ कमीशन के प्रधान रहे। उनकी अंग्रेज़ी भाषा को भारत की सरकारी भाषा और शिक्षा का माध्यम बनाने में बहुत बड़ा हाथ रहा है। वस्तुत: उन्होंने गुरुकुल शिक्षा-व्यवस्था का नाश कर उसके स्थान पर पब्लिक एवं कॉन्वेंट स्कूलों को बढ़ावा दिया।

प्राचीन काल में, भारतवर्ष में, लगभग 7 लाख 32 हज़ार गुरुकुलों में संस्कृत के माध्यम से अठारह उच्च विषयों में शिक्षा दी जाती थी। उस समय हमारे देश की साक्षरता दर 57 प्रतिशत हुआ करती थी। गुरुकुल में इंजीनियरिंग, चिकित्सा-शास्त्र, प्रबंध-शास्त्र, धातु-शास्त्र, शल्य चिकित्सा-शास्त्र आदि उच्च विषयों की पढ़ाई का माध्यम संस्कृत था। इन सब विषयों में पारंगत भारतवर्ष को मैकाले के एक काले कानून ने खत्म कर दिया, जिसका नाम था - 'इंडियन एजुकेशन एक्ट'। इस कानून के कारण संस्कृत भाषा एवं गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली पर प्रतिबंध लगा दिया गया। प्रतिबंध ही नहीं लगाया, बल्कि गुरुकुल के आचार्यों को उनके घरों में ज़िंदा जलाकर, उनके हाथ-पैर की उंगलियों को काटकर, उनपर भयंकर अत्याचार करके गुरुकुलों को बंद कर दिया गया। आज़ादी के पश्चात् होना यह चाहिए था कि मैकाले ने जो काला कानून भारतीय शिक्षा-व्यवस्था पर थोपा था, उसको तत्कालीन प्रभाव से समाप्त कर देना था। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, न अंग्रेज़ी खत्म हुई और न कॉन्वेंट एवं प्राइवेट स्कूलों को बंद किया गया। सैद्धान्तिक रूप से तो हमने आज़ादी प्राप्त कर ली है, लेकिन अंग्रेज़ी का वर्चस्व इस देश में ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। मैकाले मर गये, लेकिन मैकाले के मानस-पुत्र आज भी इस देश में जीवित हैं।

हिंदी भाषा न केवल एक भाषा है, अपितु इस देश की शान है, इस देश की संस्कृति है और इस देश के समन्वय की भावना का प्रतीक है। हिंदी हमारे देश का और हमारे पुरखों का स्वाभिमान है। जिस मातृभाषा को हमने अपनी माता के मुख से सुना और अपनी तोतली वाणी द्वारा उच्चारित किया, वही हमारी हिंदी भाषा का मूल मंत्र है और उसी का विकास है - 'समग्र हिंदी'।

हिंदी को समृद्ध करने और आगे बढ़ाने में हिंदी साहित्य और उनके साहित्यकारों का अक्षुण्ण योगदान रहा है। 'चंद्रकांता संतति' (जिनकी रचना उन्नीसवीं सदी के अंत में हुई थी) को हिंदी साहित्य में अग्रिम स्थान प्राप्त हुआ है। यह तिलिस्मी एवं ऐय्यारी उपन्यासों के जनक पंडित देवकीनंदन खत्री द्वारा रचित एक ऐसा उपन्यास है, जिसको पढ़ने के लिए अहिंदी भाषी विशेषकर दक्षिण भारत के लोगों ने भी हिंदी सीखी थी। इस उपन्यास को पढ़ते वक्त लोग खाना-पीना तक भूल जाते थे। इस उपन्यास की भाषा इतनी सरल एवं सुगम थी कि पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी भी इस उपन्यास को आसानी से पढ़ सकते हैं एवं उसका आनंद ले सकते हैं। देवकीनंदन खत्री ने जब यह उपन्यास लिखा था, तब उस समय उर्दू का बोलबाला था। यह देखकर ऐसा लगता है कि खत्री जी ने ऐसी रचना प्रस्तुत करने के लिए अपना लक्ष्य बनाया था, जिसके माध्यम से देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार हो सके। परिणामतः अपने इस उद्देश्य में खत्री जी को अपार सफलता भी प्राप्त हुई ।

भारत में, आज़ादी-पूर्व एक बड़ा सवाल भारतीय जनमानस के बीच खड़ा था कि आज़ादी के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय भाषा क्या होनी चाहिए? वास्तव में, हिंदू-मुस्लिम समुदायों के बीच भाषा ही उनकी बढ़ती दूरी एवं खटास का मुख्य कारण थी। उत्तर-भारतीयों के मन में यह बात घर कर गयी थी कि हिंदी हिंदुओं की और उर्दू-मुसलमानों की भाषा है। हालाँकि उस समय उर्दू का अधिक बोलबाला था। लोग उर्दू में ही लिखना और बोलना पसंद करते थे। इसे, वास्तव में, दिल के ज़्यादा करीब माना जाता था। लेकिन हिंदी भाषा एवं देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार भी बढ़ रहा था। हिंदी भाषा की तरफ़ बहुमत था। लोग हिंदी को सहजता और सरलता

से समझ एवं बोल पाते थे। हिंदी वर्णों का उच्चारण उर्दू की अपेक्षा ज़्यादा सरल है।

हमारे देश के अनेकानेक महान् मनीषियों यथा - राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, सुभाष चंद्र बोस, महात्मा गांधी, सुब्रह्मण्यम् भारती आदि ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का अथक प्रयास किया है, जिसमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का नाम शीर्ष स्थान पर आता है। उन्होंने सन् 1915 में दक्षिण अफ़्रीका से भारत लौटकर भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में एवं हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयास में अपनी अहम् भूमिका निभायी थी, फिर भी उनका यह सपना आज भी अधूरा है। सबसे पहले हमें इस बात को समझना चाहिए कि हिंदी में ऐसे कौन-कौन से लक्षण होने चाहिए, जो उसे राष्ट्रभाषा का पद दे सकते हैं। स्वयं गांधी जी ने 'राष्ट्रभाषा' के लक्षण गिनाते हुए बताया है कि -

1. वह भाषा सरकारी नौकरों के लिए आसान होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारत का आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक कामकाज हो सके।
3. वह भाषा जो भारत के ज़्यादातर लोग बोलते हों।
4. वह भाषा जो राष्ट्र के लिए आसान हो।

इनमें से एक भी लक्षण अंग्रेज़ी भाषा में नहीं है। इन लक्षणों पर हिंदी भाषा बिल्कुल खरी उतरती है।

गांधी जी ने सन् 1917 में, भरूच (गुजरात) में 'गुजरात शैक्षिक सम्मेलन' में, अपने अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रभाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था कि भारतीय भाषाओं में केवल हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जिसे राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाया जा सकता है, क्योंकि यह अधिकांश भारतीयों द्वारा बोली जाती है; यह समस्त भारत में आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक संपर्क माध्यम के रूप में प्रयोग के लिए सक्षम है तथा इसे सारे देश के लिए सीखना आवश्यक है। इसके पश्चात् 29 मार्च, सन् 1918 को इंदौर में, आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता में पहली बार गांधी जी ने अपने सार्वजनिक भाषण में भारतीय जन-मानस से अपील की थी कि हिंदी को ही भारत की राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया जाए। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि जैसे अंग्रेज़ अंग्रेज़ी में ही बोलते-समझते तथा उसका व्यवहार करते हैं, वैसे ही मैं आप सभी से विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि आप सभी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। गांधी जी ने इसके बाद पाँच 'हिंदी दूत' उन राज्यों में भेजे, जहाँ पर हिंदी भाषा का ज़्यादा प्रचलन नहीं था। इन पाँच हिंदी दूतों की टोली में गांधी जी का सबसे छोटा बेटा देवदास गांधी भी शामिल था। हिंदी के प्रचार-प्रसार की इस अनोखी मुहिम के तहत इन हिंदी दूतों को सबसे पहले तत्कालीन मद्रास प्रांत के लिए रवाना किया गया था।

एक बार गांधी जी से राष्ट्रभाषा के ऊपर प्रश्न पूछा गया कि क्यों अंग्रेज़ी को आधिकारिक भाषा के रूप में ज़्यादा प्रयोग किया जा रहा है? तो उन्होंने कहा ऐसी स्थिति में इसे बदलने की बजाय ऐसे ही जारी रखा जाए, क्योंकि अब भारतीय भी इसको समझने और अपनाने लगे हैं। इस पर गांधी जी ने अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहा था कि अंग्रेज़ी से बेहतर होगा कि हिंदुस्तानी को भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाया जाए, क्योंकि यह हिंदू-मुसलमान और उत्तर-दक्षिण, सबको जोड़ती है। गांधी जी का यह भी मानना था कि हिंदी का प्रयोग सिर्फ़ आधिकारिक भाषा या बोलचाल की भाषा तक सीमित न होकर न्यायालय की सुनवाई के लिए भी किया जाना चाहिए, क्योंकि जिस भाषा को भारतीय जन-मानस ज़्यादा आसानी से समझ एवं बोल पाता है, ऐसी ही भाषा का प्रयोग न्यायिक प्रक्रियाओं के लिए होना चाहिए। गांधी जी का कहना था कि कोर्ट की सुनवाई के दौरान राष्ट्रीय भाषा का ही प्रयोग होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता है, तो लोगों को राजनीतिक प्रक्रियाएँ पूरी तरह से समझ नहीं आएँगी। उन्होंने एक बार अपने भाषण की समाप्ति पर कहा था कि मेरे विचार में जब तक हम हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं दिला देते और दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं को उनका ज़रूरी महत्त्व नहीं दिला देते, तब तक स्वराज की सारी बातें अर्थहीन रहेंगी। इस प्रकार गांधी जी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रबल समर्थक थे।

भारतीय संविधान में जब 14 सितंबर, 1949 को हिंदी

को संघ की राजभाषा का दर्जा दिया गया, तब गैर हिंदी-भाषी राज्यों में, खासकर दक्षिण भारतीय प्रांतों में, इस बात का विशेष विरोध हुआ। परिणामस्वरूप, भारतीय संविधान को अपने कानून में संशोधन करते हुए हिंदी के साथ-साथ अंग्रेज़ी को भी पन्द्रह वर्षों के लिए राजभाषा का दर्जा देना पड़ा। इसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि हम अंग्रेज़ी और उसकी 'अंग्रेज़ियत' से पूर्णत: मुक्त होकर अपनी भाषा में देश का संचालन करें, किंतु सैकड़ों वर्षों की गुलामी और दासता के कारण हम अंग्रेज़ी भाषा में रच-पच गए थे। अत: हिंदी भाषा को समृद्ध तभी किया जा सकता है, जब हम तत्कालीन अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से अपने गौरव को समझ सकें। इसीलिए मात्र पंद्रह वर्षों के लिए अंग्रेज़ी भाषा को स्वीकार किया गया था। किंतु अंग्रेज़ी के कुछ अंधभक्तों ने हिंदी को वह सम्मान नहीं मिलने दिया, जिसका वह स्वतंत्र भारत में अधिकारिणी थी। अब समय आ गया है कि हम हिंदी को अपने माथे की बिंदी के रूप में स्वीकार करें और उसे वह सम्मान दें, जिसकी वह वस्तुतः अधिकारिणी है।

14 सितंबर को हिंदी दिवस घोषित किया गया है। अब हमारा यह दायित्व है कि हम हिंदी को बढ़ावा देने का न केवल संकल्प करें, अपितु संकल्पानुसार हिंदी भाषा को अपनाकर हम उसके विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दें।

jainanamika84@gmail.com

उज़्बेकिस्तान में हिंदी

सुश्री हुसनोरा बोटिरोवा
उज़्बेकिस्तान

भाषा हमें माँ की तरह पालती है और एहसास-जज़्बे की गहराई का सही अंदाज़ा कराती है। आज हिंदी न सिर्फ़ भारत की जनभाषा एवं राजभाषा है, बल्कि अनेक देशों के विश्वविद्यालयों और शिक्षा संस्थानों में द्वितीय भाषा अथवा विदेशी भाषा के रूप में सिखाई जाती है। हिंदी के माध्यम से पूरे विश्व के लोग आज विज्ञान, तकनीकी, संस्कृति और इतिहास को सीख रहे हैं। हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व बढ़ रहा है। विश्व में हिंदी भाषी समुदाय अधिकांशत: दक्षिण अफ़्रीका, मॉरीशस, फ़िजी आदि देशों में पाए जाते हैं। मध्य एशियाई देशों में विशेषकर उज़्बेकिस्तान में हिंदी सीखने के प्रति लोगों में बहुत रुचि है।

उज़्बेकिस्तान में स्कूल ऑफ़ इंडियन स्टडीज़ की स्थापना को हाल ही में 75 साल हो गए हैं। पिछले सालों के दौरान, हज़ारों उज़्बेक युवाओं ने अनुभवी और जानकार विशेषज्ञों से ज्ञान प्राप्त किया है और वर्तमान में, भारत के सहयोग से स्थापित विभिन्न संगठनों में वे काम कर रहे हैं। उज़्बेकिस्तान और भारत के बीच पारस्परिक ऐतिहासिक संबंधों से इस देश में हिंदी का विकास प्रभावित है। भारत की स्वतंत्रता के बाद, ये संबंध अधिक विकसित हुए। आधुनिक युग में, ऐसे मैत्रीपूर्ण संबंधों की नींव भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने स्थापित की और अब उज़्बेकिस्तान गणराज्य के राष्ट्रपति श्री शौकत मिर्जियोयेव और भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी इस नींव को अधिक मज़बूत कर रहे हैं।

2019 में भारतीय राज्य गुजरात में गणतंत्र के राष्ट्रपति श्री मिर्जियोयेव की आधिकारिक यात्रा के बाद उज़्बेकिस्तान और भारत के बीच मित्रता और सांस्कृतिक संबंध नई ताकत के साथ विकसित होने लगे हैं। इस यात्रा के दौरान, कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए। साथ ही, शैक्षिक प्रणाली में, इन समझौतों के आधार पर, हमारे विश्वविद्यालय ने दिल्ली, जामिया मिलिया और गुजरात के भारतीय विश्वविद्यालयों के साथ एक समझौता-ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते के आधार पर ताशकंद स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ़ ओरिएंटल स्टडीज़ और गुजरात यूनिवर्सिटी के बीच मास्टर स्पेशलिटी में संयुक्त डिग्री (डबल डिग्री) हासिल करने को लेकर बातचीत शुरू हो गई है।

कूटनीति और गणराज्य के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित राज्य एजेंसियों में उज़्बेक के इंडोलॉजिस्ट उच्च पदों पर काम कर रहे हैं। उज़्बेकिस्तान में इंडोलॉजी के विकास में वे अपना योगदान देते हैं। उनकी राजनयिक गतिविधियों के लिए कई इंडोलॉजिस्ट को भारत और अन्य देशों के सर्वोच्च पुरस्कार

मिले हैं। उन्हें राज्य के राज्यपाल द्वारा 'पुण्य के राजदूत' की विशेष मानद उपाधि से सम्मानित किया जाता है। दार्शनिक विज्ञान के डॉक्टर, प्रोफ़ेसर ओज़ोद शामतोव (2014) और जाने-माने अनुवादक अमीरुल्ला फ़ैज़िएव (2020) को भारत सरकार के जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। भाषा-विज्ञान के डॉक्टर, प्रोफ़ेसर उल्फ़त मुखीबोवा (2007) और सिरोजिद्दीन नूरमातोव (2017) को हिंदुस्तान में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (आई.सी.सी.आर.) द्वारा 'हिंदी भाषा के विकास में उनके योगदान के लिए' सम्मानित किया गया है।

वर्तमान में, कई स्नातक उज़्बेकिस्तान के विदेश मामलों के मंत्रालय और एयरलाइंस में तथा ओरिएंटल स्टडीज़ संस्थान, सामरिक अध्ययन संस्थान एवं विभिन्न संस्थाओं और विदेशों में उज़्बेकिस्तान के दूतावासों में कार्यरत हैं।

उज़्बेकिस्तान में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की स्थापना 1995 में हुई थी। मार्च 2005 में इसका नाम बदलकर लाल बहादुर शास्त्री भारतीय सांस्कृतिक केंद्र (LBSCIC) कर दिया गया। लाल बहादुर शास्त्री केंद्र ताशकंद में स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस समारोह के दौरान विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। हमारी आउटरीच गतिविधियों के लिए केंद्र नियमित रूप से नृत्य और योग के छात्रों के साथ विभिन्न प्रांतों (विलॉयट्स) के दौरों का आयोजन करता है। केंद्र अपने परिसर में कथक नृत्य, योग और तबला वादन की कक्षाओं का भी नियमित रूप से आयोजन करता है और साप्ताहिक कार्यक्रम भी आयोजित करता है। इन कार्यक्रमों में नृत्य और संगीत के अतिरिक्त कला प्रदर्शनियाँ, सार्वजनिक व्याख्यान, सेमिनार आदि शामिल हैं।

वर्ष के दौरान युवाओं को भारत से परिचित कराने के लिए लाल बहादुर शास्त्री केंद्र विभिन्न प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करता है। वहाँ भारत से संबंधित विषयों पर प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएँ, भारतीय गीतों का गायन, हिंदी कविता का पाठ और भारत से संबद्ध विषयों पर हिंदी में निबंध लिखवाए जाते हैं। हिंदी फ़िल्मों का भी प्रदर्शन होता है। हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए, केंद्र हिंदी कक्षाएँ, संगोष्ठियाँ और प्रतियोगिताएँ आयोजित करता है और संस्थानों को हिंदी पुस्तकें भी प्रदान करता है। आई.सी.सी.आर. की छात्रवृत्ति की योजनाओं के तहत उज़्बेकिस्तान के कई छात्रों को भारत में हिंदी पढ़ने का अवसर प्राप्त होता है। हर साल 2 छात्रों को हिंदी में प्रशिक्षण के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा भेजा जाता है।

अंग्रेज़ी, हिंदी, रूसी और उज़्बेक भाषाओं में पुस्तकें तथा भारतीय समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ केंद्र के पुस्तकालय में अच्छी तरह से सुसज्जित हैं। आई.सी.सी.आर. (ICCR) ने विश्व अर्थव्यवस्था और कूटनीति विश्वविद्यालय, ताशकंद में 'इंडिया चेयर' की स्थापना भी की है। भारत सरकार की ओर से उज़्बेकिस्तान में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देने के प्रयास जारी हैं।

husnorabotirova94@gmail.com

स्नोफ़ॉल : एक खुशनुमा एहसास

श्रीमती शुभ्रा ओझा
शिकागो, यू.एस.ए.

10 दिसम्बर 2021 का दिन था। लगभग पूरे दिन जमकर बर्फ़बारी हुई। मौसम बहुत ही शांत और बर्फ़ीला था। अभी रात के 9.30 बज रहे थे। बच्चे सो गये और पतिदेव अपने लैपटॉप पर ऑफ़िस का कुछ काम कर रहे थे। वैसे तो आज शुक्रवार का दिन था, बच्चे थोड़ी देर खेलना चाह रहे थे, लेकिन मैंने उन्हें उनके समयानुसार सुला दिया। वीकेंड की वजह से कल स्कूल जाने की कोई जल्दी नहीं थी। न बच्चों को और नाही मुझे, लेकिन रात में सोने और सुबह जागने की जो आदत है, उसे वीकेंड की वजह से क्यों बिगाड़ा जाए? यही सोचकर मैंने आज के अपने सारे काम सही समय पर निपटा दिए और आज की डायरी लिखने बैठ गयी। रोज़ की भाग-दौड़ में हर दिन लिखने के लिए मैंने 30 मिनट का यही रात का समय निर्धारित किया है।

आज किचन के पास डाइनिंग टेबल पर ही लिखने बैठ

गयी हूँ। मेरे पास में ही खिड़की है। खिड़की के पर्दे हटे हुए हैं और बैकयार्ड में पड़ी ढेर सारी बर्फ़ लाइट पड़ने की वजह से चमक रही है। कुछ हरे-भरे पेड़ और कुछ बिना पत्तों के पेड़ भी दिखाई दे रहे हैं। वातावरण बहुत शांत और मनमोहक लग रहा है। भारी बर्फ़बारी (स्नोफ़ॉल) होने की वजह से घर के भीतर थोड़ी ठंड महसूस हो रही है। बाहर की ठंड और घर के अंदर चल रहे हीटर की गर्मी से कुल मिलाकर गुनगुना-सा एहसास हो रहा है।

आज का दिन भी हर दिन की तरह था। बस, दो चीज़ों को छोड़कर - पहला, आज थोड़ा ज़्यादा स्नोफ़ॉल हुआ और दूसरा, बहुत दिनों बाद आज ऋतुप्रिया जी से फ़ोन पर बात हुई। ऋतुप्रिया जी बहुत अच्छी कवयित्री हैं। साथ ही, खूब मधुर गाती भी हैं। वे भोपाल से हैं और यहाँ अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया में आती-जाती रहती हैं। उनसे मेरा परिचय किसी ऑनलाइन गोष्ठी में हुआ था। वे बहुत अच्छे स्वभाव की हैं और उन्हें जब भी समय मिलता है, वे मुझे कॉल करके बात कर लेती हैं। अधिकतर उनसे बातें हिंदी कविताओं, गीत, प्रोग्राम या घर-परिवार के बारे में ही होते हैं, लेकिन आज कुछ ऐसा हुआ कि उनसे बात करने के बाद भी पूरा दिन मन को एक बात परेशान करती रही। उन्होंने आज फ़ोन पर मौसम का हाल-चाल पूछा और मैंने भी उन्हें बता दिया कि वैसे तो यहाँ शिकागो में स्नोफ़ॉल (बर्फ़बारी) होना आम बात है, लेकिन आज थोड़ी ज़्यादा ही स्नोफ़ॉल हुई। यह सुनकर उन्होंने कहा - "इतने स्नो की वजह से ही वहाँ रहने वाले अधिकतर लोग डिप्रेशन (अवसाद) में आ जाते हैं।"

"पता नहीं।" यह बोलकर और थोड़ी बहुत इधर-इधर की बातें करके मैंने फ़ोन रख दिया।

आज मैं पूरा दिन यही सोचती रही, क्या यह स्नो और हाड़ कँपाने वाली यह ठंड, किसी को डिप्रेशन में डाल सकती है? यह लिखते हुए अचानक मेरी नज़र उस बर्फ़ पर पड़ी जो मेरे बैकयार्ड में पड़ी चमचमा रही थी। मैंने वहाँ कुछ देखा। इतना सुंदर दृश्य था कि नज़र ही नहीं हट रही थी। स्नो को लेकर यह दीवानगी मुझे तब से है, जब पहली बार दिसंबर के महीने में मैंने स्नोफ़ॉल देखा था। वह दिन आज भी नहीं भूलती जब आसमान से गिरते हुए रुई के फाहों जैसे स्नोफ़ॉल को देखा था और खुद को उसे छूने के लिए रोक नहीं पायी थी। बिना जैकेट पहने ही कड़कड़ाती ठंड में स्नो को महसूस करने बालकनी में चली गयी थी। इस बात को लगभग छह साल से ऊपर हो गए, लेकिन अगर आज भी स्नोफ़ॉल होने लगे, तो लगता है घर के सारे काम छोड़कर स्नोफ़ॉल देखने बैठ जाऊँ। यह स्नोफ़ॉल का मौसम मुझे बहुत ही अच्छा लगता है और हो भी क्यों न? हम मैदानी लोग स्नो, सागर और पहाड़ को देखकर पागल हो जाते हैं। अब स्नो डिप्रेशन कैसे दे सकती है? मुझे तो हमेशा खुशी और विपरीत परिस्थितियों में डटे रहने का सबब देती है।

हमेशा तो मौसम एक जैसा नहीं हो सकता। चाहे वह बाहर की दुनिया में हो या हमारे भीतर की दुनिया में। लेकिन किसी भी मौसम में खुद को स्थिर कैसे रखें? स्नोफ़ॉल के मौसम में यह स्नो अलग-अलग तरह के पेड़ ही अनुभूत कर सकते हैं। यहाँ शिकागो में अधिकतर दो तरह के पेड़ होते हैं, पहला सदाबहार, जो हर मौसम में हरे-भरे होते हैं, चाहे वह गर्मी हो या सर्दी। यहाँ तक कि भयंकर स्नोफ़ॉल में भी इन पर हरी-भरी पत्तियाँ होती हैं। कुछ सदाबहार पेड़ों के नाम – 'एस्टर्न सीडर', 'पाइन' और 'नॉर्वे स्प्रूस' हैं। दूसरी तरह के जो पेड़ होते हैं, उन पर गर्मियों के मौसम में हरी-हरी पत्तियाँ लगी होती हैं, लेकिन फ़ॉल (पतझड़) के मौसम में ये हरी पत्तियाँ लाल, नारंगी, पीली और अनेक रंगो में बदलकर कुछ दिनों बाद झड़ जाती हैं और पूरा का पूरा पेड़ बिना पत्तियों के दिखता है। इस प्रकार के कुछ पेड़ 'मेपल' और 'मल्बेरी' हैं। ये पेड़ सर्दियों के मौसम (लगभग छह महीने) में इसी तरह रहते हैं। सर्दियों के बाद जब वसंत आता है तब इन पेड़ों पर छोटी-छोटी पत्तियाँ आती हैं।

क्या इन पेड़ों से हमें कुछ सीखना नहीं चाहिए? हमारे आस-पास भी तो हर दिन कुछ-न-कुछ घटता रहता है। कभी कुछ अच्छा, तो कभी कुछ बुरा। अच्छे में तो हम सब हँसते-मुस्कुराते, खुश रहते हैं, बिल्कुल उन सदाबहार पेड़ों की तरह जो हमेशा हरे रहते हैं, लेकिन दुख पड़ते ही हम बहुत विचलित हो जाते हैं या यूँ कहें मुरझा जाते हैं और कभी-कभी हार भी मान लेते हैं। हमें उन पेड़ों से सीख लेनी चाहिए, जो बिना पत्तियों के बर्फ़ीले मौसम में बहुत शान से शांत मन

से सिर उठाए खड़े रहते हैं, इस इंतज़ार में कि हमारा भी समय 'वसंत' आयेगा और आएँगी फिर से हरी-भरी पत्तियाँ।

इन विचारों में मग्न होकर मेरा मन एक दृढ़ विश्वास से भर गया। मैं भी हार नहीं मानूँगी, चाहे जीवन में कितने भी बर्फ़ीले मौसम आए। मैं अपनी कर्मभूमि पर डटी रहूँगी और इंतज़ार करूँगी अपने हिस्से के मौसम 'वसंत' का।

imshubhra.ojha@gmail.com

मोहिं बिसरत नाहीं

श्रीमती ममता माली
मुंबई, भारत

मनुष्य का जीवन एक यात्रा ही है। एक यात्रा जो भीतर-ही-भीतर होती रहती है या यों कहें कि भीतर की ओर होती है। भीतरी यात्रा विचारों, भावों और व्यवहारों की होती है, तो बाहरी यात्रा वह है, जो उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है - एक तरह से आवागमन अथवा स्थानांतरण। इस भीतरी यात्रा की प्रतिपूर्ति के लिए बाहरी यात्रा पूरक ठहरती है। यात्राएँ ज्ञानार्जन प्रदान करती हैं। ऐसी ही एक यात्रा का प्रयोजन मेरे निमित्त भी हुआ, जिसमें अपने भीतरी ज्ञान हेतु बाहरी यात्रा का रुख अपनाना पड़ा। एक शोधार्थी के नाते अपने शोध-कार्य के संदर्भ में ये यात्राएँ मेरे लिए नितांत आवश्यक थीं। इसी क्रम में मेरे शोधकार्य में चयनित आधार ग्रन्थों के रचनाकार एवं कथाकार लेखक एवं लेखिकाओं से मिलना अवश्यंभावी प्रतीत होता था।

'कश्मीर और विस्थापन' संबंधी शोध विषय के अंतर्गत सर्वप्रथम मेरी मुलाकात डॉ. अग्निशेखर जी से हुई। उनके संपर्क व सहायता से ही मुझे शोध विषय के अन्य लेखक-लेखिकाओं से संपर्क स्थापित करना आसान हो सका। अवतारकृष्ण राज़दान एक ऐसा ही नाम, जिसका बार-बार याद आना आज भी बेहद स्वाभाविक है। अवतारकृष्ण राज़दान जी के बारे में ज्ञात हुआ कि वे पुणे शहर में ही रहते हैं। मुंबई से कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर अर्थात् एक ही दिन में उनसे मुलाकात कर लौटा जा सकता है। अतः यह यात्रा बेहतर प्रतीत हुई। कारण यह कि अन्य लेखक-लेखिका बेहद दूर अन्य राज्यों में रहते हैं। इसीलिए अवतारकृष्ण राज़दान जी से मुलाकात से ही अपने शोध कार्यक्रम का शुभारंभ करना तय किया। जीवन की व्यस्तता के बीच आखिरकार वह दिन आ ही गया, जब अवतारकृष्ण राज़दान जी से मिलना तय हो गया। मैंने ही उनसे फ़ोन पर बातचीत कर स्वयं का परिचय देते हुए मुलाकात का दिन और समय तय कर लिया। अवतारकृष्ण राज़दान जी भी इस मुलाकात को लेकर बेहद उत्साहित और प्रसन्नचित्त जान पड़े। पुणे शहर में पहुँचकर हमने उनके प्राप्त पते पर पहुँचने हेतु उनसे संपर्क किया। उनका भरपूर सहयोग मिला। जहाँ हमें दिक्कत आती थी, वहाँ उनका सहयोगी हमारी मदद करता था। अब तक मैं यह सोच रही थी कि वे बहुत बड़े लेखक हैं, शायद इसीलिए कोई सहयोगी उनका सब कार्य करता होगा। हम बताए गए पते पर पहुँच गए। जैसे-जैसे उस इमारत की सीढ़ियाँ चढ़ते गए, वैसे-वैसे हमारा उत्साह एक आश्चर्य में तबदील होता गया। अब हम उस कमरे के बाहर खड़े थे, जिसमें राज़दान जी रहते थे। अवतारकृष्ण राज़दान जी अपनी खाट पर बैठे अपने शरीर के निचले हिस्से को चादर से ढँके बैठे हमारा इंतज़ार कर रहे थे। ऐसा क्यों? क्योंकि अवतार जी दिव्यांग थे। कश्मीरी व हिंदी के वरिष्ठ और चर्चित लेखक, एक बेहतरीन अनुवादक, एक श्रेष्ठ चिंतक, कला-मर्मज्ञ व चितेरे और दिव्यांग होने के बावजूद भी लेखन-कार्य में सदा सक्रिय रहे। राज़दान जी की यह विलक्षण जिजीविषा और प्रतिभा ही उनके दिव्यांग होने पर सदैव अपना वर्चस्व कायम रखी रही।

राज़दान जी 1990 को कश्मीरी पंडितों के सामूहिक निर्वासन पश्चात् कश्मीर से दिल्ली और जम्मू की खाक छानते अंततः पुणे में स्थित एक वृद्धाश्रम में अपना जीवन व्यतीत करने हेतु अपनी शारीरिक लाचारी से कहीं अधिक लाचार हो गए थे। एक ओर उनका समृद्ध लेखन और सोच ही थी, जिसने उन्हें इन हालातों में भी सदैव सक्रिय और ऊर्जावान बनाए रखा। अपने जलावतनी के अपमान को सहन करते हुए नितांत अकेले जीवन जीते रहे। किन्तु लेखन में स्वयं को सक्रिय रखकर अपने विस्थापन के दंश और दर्द को अपनी लेखनी के माध्यम से अपनी रचनाओं में उतारते रहे।

राज़दान जी से कुछ पल की बातचीत के पश्चात् ही वे इतने आत्मीय और भावविभोर हो गए कि उनकी आँखों से आँसू छलक आए। यह दर्द जो अश्रु बन उमड़ पड़ा था, यही दर्शाता था कि वे जीवन में कितना अकेलापन महसूस करते थे, साथ ही यह भी कि जब उनके निर्वासन साहित्य पर चर्चा हुई, तब उस दर्द को भी वे अपने भीतर समा न कर सके थे। राज़दान जी ने अपनी रचना 'एल. बी. डब्ल्यू.' मुझे भेंट स्वरूप

दी। साथ ही, उन्होंने मुझे अपना कहानी-संग्रह 'आतंक बीज' अथवा 'अर्श से फ़र्श तक' को अपने शोध के आधार ग्रंथों में शामिल करने का सुझाव दिया। उन्होंने अपने पूर्ण सहयोग का आश्वासन भी दिया। राज़दान जी ने अपनी कुछ और रचनाएँ भी मुझे पढ़ने और निर्वासन की अधिक व सटीक जानकारी हेतु प्रदान की। मेरे मन में दो भाव आ-जा रहे थे। एक खुशी का भाव कि स्वयं लेखक से उनकी रचनाओं को प्राप्त कर शोध-कार्य करने का अवसर मिल रहा था, तो दूसरा गम था कि हमने उनके दुख को कुरेद दिया। अब हमने उनकी रचनाओं को लेकर उनसे विदा ली।

इस पहली मुलाकात के बाद काफ़ी लंबा अरसा बीत गया। इसी बीच देश में कोरोना वायरस की लहर से लॉकडाउन की स्थिति ने कहीं भी आवागमन पर ही रोक लगा दी, जिससे काफ़ी लंबे अंतराल के बाद भी राज़दान जी से मिलना संभव न हो सका। इस बीच राज़दान जी का अपनी रचनाओं को लेकर, जो पुस्तक उन्होंने मुझे सौंपी थी, उसे लेकर उनका चिंतित होना भी स्वाभाविक था। राज़दान जी ने अपनी पुस्तक संबंधी चिंता को डॉ. अग्निशेखर जी से फ़ोन पर बातचीत कर जताई थी, "सब कुछ कश्मीर में लुटाकर अपनी कुछ पुस्तकें बची थीं, अब वे भी गयीं। देखा जलावतनी में बेबसी क्या और कैसा बना देती है आदमी को...चूँकि मैं एक विकलांग आदमी हूँ और वह भी अकेला, यहाँ जम्मू से हज़ारों किलोमीटर दूर पड़ा एक वृद्धाश्रम में...। यहाँ न मेरी बात किसी को समझ में आती है, ना ही मैं इनकी ठेठ मराठी समझ सकता हूँ।" डॉ. अग्निशेखर जी ने जब यह बात मुझे बताई, तब मुझे चिंता के साथ ही आत्मग्लानि भी महसूस हुई। मैं लेखक तो नहीं, लेकिन शोधार्थी तो हूँ और पुस्तकों से अपनापन और प्यार को बखूबी समझती हूँ और वह भी तब जब मैं किसी अन्य साहित्यकार की पुस्तक पढ़ती हूँ और यह तो स्वयं लेखक की अपनी पुस्तक थी। कश्मीर निर्वासन के पश्चात् बची उनकी एकमात्र पुस्तक या यों कहें कि एकमात्र पाण्डुलिपि ही। यही पुस्तक राज़दान जी की चिंता का कारण थी। देश में लॉकडाउन इस कदर था कि कहीं भी आने-जाने की इजाज़त नहीं थी। जैसे ही लॉकडाउन में ढील दी गई हमने राज़दान जी की किताबें उनके सुपुर्द करने की ठान ली। वह दिन भी आ ही गया। हम पुणे स्थित वृद्धाश्रम में पहुँचकर उनकी किताब उन तक सकुशल पहुँचाने में सफल रहे। वे भी बेहद खुश जान पड़े। मेरा मन भी इस बात को लेकर बेहद हल्का महसूस कर रहा था। साथ ही इस बात से भी कि उनकी पुस्तक किसी लापरवाह के हाथों में नहीं गई थी। राज़दान जी से इस मुलाकात के साथ ही उनकी रचनाओं से संबन्धित प्रश्नों के आधार पर उनसे साक्षात्कार भी सम्पन्न हुआ। इस मुलाकात के दौरान राज़दान जी ने कहा था कि वे इस वर्ष मई में हमेशा के लिए जम्मू जा रहे हैं। उनका मन अब यहाँ नहीं लगता है। जम्मू में उनके बहुत से परिचित, मित्रगण और परिवार रहते हैं, जिनसे मिलते रहने से उनका मन भी लगा रहेगा। इस बात से वे बेहद खुश नज़र आ रहे थे। राज़दान जी के साथ इस आत्मीय मुलाकात के बाद हम अपने घर लौट आए।

अपने शोध-कार्य के सिलसिले में हम मई में जम्मू गए। वहाँ हमने डॉ. अग्निशेखर जी से उनके घर पर ही मुलाकात की। हमने उन्हें अवतारकृष्ण राज़दान जी की जम्मू आने की सूचना भी दी। यह सूचना पाकर वे भी बेहद प्रसन्न हुए। दूसरे दिन दोबारा हम अग्निशेखर जी से उनके घर पर मिले। एक लंबी बातचीत के बाद अचानक याद कर डॉ. अग्निशेखर जी ने कहा कि हमारे जाने के कुछ देर बाद ही उनके एक परिचित ने उन्हें बताया कि अवतारकृष्ण राज़दान जी नहीं रहे। उनका देहावसान हो गया है। यह सुनते ही हम सक्ते में आ गए। माहौल गमगीन होने के साथ ही मानो स्तब्ध हो गया। किसी के लिए भी इस बात पर यकीन करना मुश्किल था। एक दिन पहले ही मैंने राज़दान जी के जम्मू में आने की खबर दी थी और वे इस तरह से जम्मू या फिर शायद अपने कश्मीर के लिए प्रस्थान करेंगे, यकीन करना मुश्किल था। आज उनसे हुई मुलाकात को याद करती हूँ, जब उन्होंने कहा था - "हम कश्मीर को भूल नहीं सकते हैं। हमारी जड़ों के साथ हम वहाँ की मिट्टी भी साथ लाए हैं, वही हमें सालती रहती है, अपने वतन की रह-रहकर याद दिलाती रहती है। मैं अगर जीते-जी न जा सका, तो मेरे प्राण पखेरू मुझे वहाँ अवश्य ही ले जाएँगे।" राज़दान जी अपनी बात के बहुत पक्के थे। एक ओर जहाँ बेहद दुख हुआ कि राज़दान जी आज

हमारे बीच नहीं हैं, वहीं मैं दूसरी ओर इस बात से आश्वस्त थी कि उनके जीते-जी उनकी पुस्तकें मैंने उन्हें सौंप दी थीं। अन्यथा वे अपनी पुस्तकों के न मिलने से गमज़दा होकर इस दुनिया से रुखसत कर जाते और मैं इस आत्मग्लानि से सदा के लिए बोझिल रहती कि मैं उनकी पुस्तकें उनके जीते-जी उन तक पहुँचा न सकी, जबकि वे मेरे शहर से बहुत दूर नहीं थे। हम जम्मू से मुंबई लौट आए। रह-रहकर अवतारकृष्ण राज़दान जी की याद आती और हम उनके बारे में पुरानी बातों को याद कर मन-ही-मन दुखी भी हो जाते। इस बीच काफ़ी अरसा बीत गया।

एक दिन अचानक कुछ यों घटा जो मेरे लिए बेहद ही अकल्पनीय था। एक दोपहर मुझे पुणे से एस. के. राज़दान जी का कॉल आया। एस. के. राज़दान, अवतारकृष्ण राज़दान जी के पारिवारिक सदस्यों में से हैं। वे कई दिनों से मुझसे संपर्क कर बातचीत करना चाह रहे थे, लेकिन कॉल के माध्यम से संपर्क नहीं हो रहा था। आज जब बातचीत हुई, तब उन्होंने बताया कि मेरे हाथों लिखा एक पत्र जो मैंने अवतारकृष्ण राज़दान जी को अपने शोध के संदर्भ में लिखा था, प्राप्त हुआ। उसी पत्र में मेरा संपर्क नंबर था। वे मुझे यह बताना चाहते थे कि अवतारकृष्ण राज़दान जी अब इस दुनिया में नहीं रहे, उनका देहावसान हो चुका है। मैंने उन्हें बताया कि किस तरह से हम अवतारकृष्ण राज़दान जी के संपर्क में आए। इतनी सारी बातें जानने के बाद एस. के. राज़दान जी ने कहा कि वे चाहते हैं कि अवतारकृष्ण राज़दान की तमाम रचनाएँ, जो पुस्तक रूप में उनके पास सुरक्षित हैं, मैं अपने पास रख लूँ और भविष्य में उन तमाम रचनाओं पर भी शोध कार्य करूँ। यह सुनते ही पुस्तकें और पुस्तकों के द्वारा अवतार जी का आशीर्वाद पाकर मेरी आँखें अश्रु से डबडबा आईं। यह मेरे लिए दूसरी अकल्पनीय बात थी कि अवतारकृष्ण राज़दान जी की वे पुस्तकें, जिन्हें वे वापस प्राप्त करने के लिए वे बेहद आतुर थे, वे ही पुस्तकें अन्य माध्यम से आज मुझ तक लौट रही थीं। अवतारकृष्ण राज़दान जी का यह आशीर्वाद ही है, जो पुस्तकों के रूप में मुझे प्राप्त हो रहा है। उनका मुझ पर किया गया एतबार ही है, जो उनके दिवंगत होने के पश्चात् भी यह दर्शाता है कि उनकी पुस्तकें मेरे हाथों में सुरक्षित रह सकती हैं। अब अवतार जी की रचनाओं पर शोध-कार्य करके ही मैं उन्हें सच्चे रूप में श्रद्धांजलि अर्पण कर सकूँगी। इस बात का ज़िक्र जब मैंने डॉ. अग्निशेखर जी से किया, तब वे गदगद और खुश होकर बोले कि इसे ही पुण्य फल कहते हैं। तुम्हें वे उन्नति करने का आशीर्वाद दे गए हैं। तुमने जीते-जी उनकी पुस्तकें उन तक लौटाकर न केवल उस समय उनकी आत्मा को शांति पहुँचाई थी, बल्कि उनका विश्वास भी जीत लिया था। यही वह पुण्य फल है।

आज अवतारकृष्ण राज़दान जी हमारे और उन तमाम साहित्यकारों के बीच नहीं हैं, जो अपनी लेखनी को ही अपना हथियार बनाकर अपने उन अधिकारों के लिए अपना संघर्ष जारी रखे हुए हैं, जो उन्होंने निर्वासन के दौरान खोया है। अवतारकृष्ण जी की तमाम रचनाएँ उसी कश्मीर विस्थापन के दंश और दर्द का आख्यान हैं।

mamtamali88748@gmail.com

पीटर बोथ पर्वत के शिखर पर विजय

श्री बलवंतसिंह नौबतसिंह
मॉरीशस

यह नौवाँ हिंदू बॉइज़ स्काउट्स का पहला जोखिम भरा अभियान था। बालचर के सदस्यों ने इसलिए गुरुजी भीरू के नेतृत्व का चयन किया था, क्योंकि वे चार बार पीटर बोथ शिखर पर अपनी विजय पताका फहरा चुके थे। और तो और वे साईकल पर सवार हो, पूरे देश का चक्कर दो बार काट चुके थे। ऐसा अनुभवी आरोही और कसरती व्यक्ति हमारे बीच में कोई नहीं था। अगर वे हमारे साथ जाएँगे, तो भला कौन-सा अभिभावक होगा, जो अपने पुत्र को हमारे साथ जाने से इन्कार करेगा। ऐसे में हम दिशाभ्रम होने के भय से बच सकते हैं और हर अभिभावक का विश्वास बना रहेगा कि उनकी औलाद वापस घर सही-सलामत अवश्य आ जाएगी।

उनसे बातचीत करने की ज़िम्मेदारी मुझे सौंपी गयी।

मेरी मुलाकात गुरुजी भीरू से हिंदी प्रचारिणी सभा शखा नंबर 1, मेज़ोनेट रोड के तिराहे पर अकस्मात हुई। मैंने उनसे बातें की।

"नमस्कार गुरुजी" मैंने कहा।

"नमस्कार, बलवन्त। बालचर दल कैसा है?"

"बालचर दल पीटर बोथ की चढ़ाई करने के अभियान पर विचार कर रहा है। क्या आप छुट्टियों के दिनों में हमारे साथ, पथप्रदर्शक के रूप में और एक बार पीटर बोथ पर्वत की चढ़ाई में शामिल हो सकते हैं?"

गुरुजी हमारे प्रस्ताव पर विचार करके बोले -

"बालचर दल इस अभियान पर विचार कर रहा है।

"वे दोनों हाथ अपने हॉफ़ पैंट की बगल की जेबों में डालकर सोचने लगे। उन्होंने गला कुछ ठीक किया। वे सोचते रहे। "कृपा करके हमें बतावें।" फिर से मैंने पूछा।

"हाँ, बहुत खुशी के साथ अवश्य शामिल होऊँगा।" उन्होंने कहा।

वे मुस्कुराए और फिर उनका चेहरा गंभीर हो गया।

"पाँचवी बार सही। बालचर दल भी क्या याद करेगा। तुम जवानों के साथ बिल्कुल चढ़ सकता हूँ।"

"धन्यवाद, गुरु जी! आप पथप्रदर्शक के रूप में जाएँगे, तो सारा बालचर दल में जोश भर जाएगा। हमारे माता-पिता इत्मिनान से हमें जाने देंगे।"

"लेकिन एक बात कहूँगा, यह पहली और अंतिम बार जाऊँगा।" गुरुजी ने गंभीरता से सोचते हुए कहा।

"कोई बात नहीं, गुरु जी, आप हमारे साथ में होंगे, तो हमारा हौसला बढ़ेगा, बालचर दल सोच रहा है कि स्कूल की छुट्टियों के दिनों में बुधवार 26.04.67 तारीख को जाना ठीक होगा। मौसम अनुकूल होगा तो।"

"बिल्कुल ठीक, मैं तैयार रहूँगा" गुरु जी ने कहा।

निश्चित दिन सुबह होते ही बालचर दल ने बस पकड़ी और हम ला लोरा पहुँचे, जो ठीक पर्वत के नीचे एक गाँव है। पीटर बोथ पर्वत की तराइयों से कुछ पुरुष व महिलाएँ जलावन की लकड़ी या गाय के चारे के लिए घास का बोझ सर पर लिये वापस आ रहे थे। गुरुजी बालमुकुण्ड भीरू (सुखदेव) के नेतृत्व में बेफ़िकर हम निकल पड़े थे। ला लोरा पहुँचते ही हम अपनी-अपनी सामग्रियाँ और पाथेय कसकर कंधे से बाँधकर हम जंगल में घुसने के लिए तैयार हुए।

तभी गुरुजी भीरू ने हम पाँचों आरोहियों को इकट्ठा करके मिले-जुले स्वर में गायत्री मंत्र बोलने के लिए कहा। फिर आरोहन सफल हो, ऐसी कामनाएँ करते हुए हमारा हौसला बढ़ाया। हम लोग उद्विग्न थे।

गुरुजी भीरू ने समझाया कि पर्वत का ढाँचा एक इन्सान जैसा ही था। उसके पाँव, घुटना, उदर, कंधा, गला, ठोड़ी, नाक, माथा और सिर थे। आरोहियों का एक उसूल ध्यान में रखना होगा - "पीछे मुड़कर देखना सख्त निषेध है।"

पद

हम पर्वत के निचले हिस्से पर चढ़ने लगे। घना जंगल था। यहाँ पर अनेक पेड़ थे जैसे - जामुन, पाकड़, प्रीवेट और झाड़-झंकाड़, लंबी कँटीली झाड़ियों के झुरमुट आदि। हम उन्हीं के सहारे फ़िसलन भरे चट्टानों पर चढ़ते रहे। असल में सुबह के समय यदा-कदा पानी के बहाव थे। कुछेक चट्टानों पर मिट्टी के बदले दानेदार कंकड़ थे, जिसपर चढ़ना खतरे से खाली नहीं था। कुछ पठार-चट्टान ऐसे भी थे, जो ढीले-ढाले थे और किसी भी वक्त नीचे घाटी में सरक-लुढ़क सकते थे। जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर बढ़ते गये, वैसे-वैसे वृक्ष कम होते गये। तभी मैंने देखा कि जगदीश को छोड़कर, सारे आरोही गुरु जी के पीछे-पीछे आगे बढ़ गये थे। मैंने रुककर उसकी प्रतीक्षा की।

फिर मुझे लगा कि जगदीश ऑक्सीजन की कमी के कारण हाँफने लगा था। वास्तव में, वह सब से जवान था, करीबन पंद्रह साल का लड़का था। पैरों में कमज़ोरी के कारण बचपन में बहुत देरी से चलना सीखा था। वह बचपन से नाज़ुक-सा था। बाकी सब आरोही बीस साल से ऊपर के थे। आयु के मुकाबले वह अधिक लम्बा था। वह गोरा-चिट्टा था। पैर में थकान के कारण ही पीछे रह गया था, न कि ऑक्सीजन की कमी से। दल के लीडर की हैसियत से यह देख सकूँ कि सभी जन पर्वत पर सही सलामत चढ़ रहे हों, मैंने इरादा बदल दिया। सब पीछे-पीछे हो लिये, जगदीश के पीछे-पीछे।

उदर

अब जगदीश और मैं, हमने पर्वत के उदर पर चढ़ना प्रारम्भ किया। घना जंगल नीचे छूट गया था। खुला आसमान था और पर्वत की चट्टानी ढलान थी। यदा-कदा पर्वत की चट्टानी ढलान में हल्के पानी के स्राव थे। पानी के बहाव को रोकते हुए यहाँ-वहाँ घास की मुट्ठियाँ जमी हुई थीं, जोकि मज़बूती से पहाड़ी ढलानी चट्टानों की फाँक पकड़ी हुई थीं। यहाँ उदर पर पेड़-पौधे बिल्कुल नहीं थे, मानो किसी नाई ने उस्तरे से उन्हें सफाचट कर दिया हो। यहाँ-वहाँ से पानी बह रहा था, मिट्टी के बजाय यहाँ पर दानेदार कंकड़ भी थे। यदि गलती से उस पर पैर रखें, तो काम तमाम समझो - नीचे तराई में बेलचे के सहारे शरीर के कचुमड़ उठाने पड़े।

सूरज की नर्म-नर्म धूप पीठ पर लग रही थी। आरामदेह थी। पहाड़ की ढाल पर जगदीश चार-पाँच इंचों की लम्बी घास की मुट्ठियों के सहारे ऊपर की ओर अग्रसर हो रहा था। तभी मैंने गौर किया कि एक झुण्ड पिंक चिड़ियाँ ढलान के घास के बीज चुग रही थीं। हमारे पास पहुँचने पर चिड़ियाँ उड़कर थोड़े-से ऊपर की ओर चली जाती थीं। दो तीन बार ऐसा हुआ। चिड़ियों के झुण्ड को देखते-देखते मैं अपने आरोही साथियों को भी देखता रहा। वे कहाँ तक पहुँचे हैं। वाकई इन पक्षियों को हमारे चट्टान के चढ़ाव और उतराव से कोई मतलब नहीं था। न तकलीफ़, नाही परेशानियाँ।

हमारे गुरुजी बिना पीछे आरोहियों को देखे, दल के बाकि लोगों के साथ तीर के जैसे चढ़े जा रहे थे। एक तो हमारे गुरुजी सम्मान के पात्र थे, दूसरा वे अधेड़ थे, तीसरा कुछ कूबड़ थे। हम युवकों की हिम्मत नहीं हुई कि उन्हें पुकारकर उन्हें रोकें।

नौवाँ हिंदू बॉइज़ स्काउट्स के वर्दीग्रहण विधि शांतिलाल दानजी, जो मॉरीशस के कमीशनर ऑफ़ स्काउट्स थे और जो दानजी कॉलिज के प्रबंधक थे तथा इंद्रजीत गोपाल, जो रोज़ हिल के प्रथम हिंदू बॉइज़ स्काउट्स के स्काउट्स मास्टर थे, की उपस्थिति में रीव्येर डे ज़ाँगी हिंदी प्रचारिणी सभा में एक भव्य समारोह के दौरान संपन्न हुई थी। उसी दिन हमने स्काउट्स मास्टर जयदेव सिबरत जी और लीडर, यानी कि मैंने मिलकर बालचर की स्थापना की थी। शुरू से ही पुलिस में भर्ति होने के इच्छुक बालचर नियमित रूप से ट्रेनिंग करने आते थे। खासकर के जगदीश साजीवन, जो बहुत कम उम्र का था, बालचर की हर गतिविधि में सक्रिय रूप से भाग लेता था। जब जगदीश ने पर्वतारोहण की इच्छा ज़ाहिर की, तब स्काउट्स मास्टर जयदेव सिबरत अस्वीकार नहीं कर पाया।

कंधा

फिर मैंने देखा कि जगदीश एकाएक खड़ा हो गया। उसने अपने-आपको बीस फ़ीट ऊँची चट्टान की दीवार के सामने खड़ा पाया। वह एकदम अकेला था। वह नि:स्तब्ध खड़ा होकर देखते रह गया। मैं दीवार के सामने पहुँचा, तो मैंने भी ऊपर दृष्टि दौड़ाई। गुरुजी भीरू शिखर पर पहुँच चुके थे। बाकी आरोही बदन खसीटते हुए पर्वत के माथे पर चढ़ रहे थे। जगदीश घोर विडंबना में पड़ गया था। वह कुछ सोच नहीं पा रहा था कि क्या किया जाए? गुरुजी और साथियों को देखकर वह विस्मित-सा हो गया था। वे सब शिखर पर पहुँच गये थे। नौवाँ हिंदू बॉइज़ स्काउट्स के सदस्य शिखर पर दिख गये। दल का आखिरी सदस्य भी अंतिम मुश्किलतम छलाँग भर रहा था।

जगदीश को बगल में पाकर मैं भी सांत्वना का भाव महसूस कर रहा था। जगदीश मेरे पास अभी तक सही सलामत था। मौसी के वचन से बँधा हुआ था कि उसके पन्द्रह साल के पुत्र को सही सलामत घर वापस ले आऊँगा।

मैंने उससे पूछा - "क्या करना चाहते हो जगदीश भाई?" पर्वत के कंधे पर मधिम हवा के झोंके बह रहे थे।

उसका चेहरा पसीने से तर था। उत्साह की कमी और थकान झलक रही थी। थोड़ी-सी साँस लेने के पश्चात् उसने जवाब दिया - "भाई जी, जहाँ तक मैं चढ़ पाया हूँ, वही काफ़ी है, अब मुझसे चढ़ा नहीं जाएगा।"

"ठीक है, यहीं पर रुक जाएँगे। अब तो तुम्हारी मनोकामना पूरी नहीं हो पाई..." मैंने कहा।

उसने जवाब दिया - "जितना मैं चढ़ सकता हूँ, उतना चढ़ा हूँ। बाद में और मौके मिलेंगे, तो चढ़ने का संकल्प पूरा करूँगा।"

"मुझे अफ़सोस है कि मेरे कारण आप शिखर तक चढ़

नहीं पाएँगे।" इतने में हमने देखा कि एक झुण्ड में षोडशियाँ चट्टान की खड़ी दीवार से दनादन उतर रही थीं। सब के सब मिनि स्कर्ट पहनी हुई थीं। अन्त में षोडशियों का गाइड उतरा। बातचीत से पता चला कि वह रोज़ हिल का एक पाद्री है। ऐसे कैसे वे षोडशियाँ उतर सकती थीं। कुछ दिमाग लड़ाकर सोचा, फिर जाने दिया। कुछ इन्तज़ार करने के बाद गुरुजी और बालचर दल के बाकी लोग उतरे और हमसे आ मिले। उन सब को मालूम हो गया था कि मैं क्यों शिखर तक नहीं जा पाया। उन सबको अफ़सोस था, मगर कुछ कहे बिना हम सब लोगों ने पर्वत की ऊँचाई से उतरने का रास्ता लिया। नज़ारा बहुत सुहावना था। पर्वत पर से तराई और दूर तक फैली ईख के खेतों की हरियाली की लम्बी-चौड़ी चादर थी। ऐसा मनोरम दृश्य था कि आज तक उसकी छवि दिमाग से नहीं उतरी।

दूसरा अभियान

एक साल बाद स्काउट्स मास्टर जयदेव सिबरत जी ने मुझे बताया कि आरोहण के पहले अभियान के फलीभूत होने पर वे दूसरा अभियान करने के बारे में सोच रहे हैं। मैं ने उत्सुक्ता दिखाई। पर सवाल यह था कि कौन हमारा पथप्रदर्शक बनेगा। गुरु जी भीरू ने पहले कह दिया था कि वे अन्तिम बार चढ़ाई करेंगे। तो जयदेव सिबरत जी ने बताया कि अपने बालचर टोली में से एक सदस्य ऋषि मातादीन का रिश्तेदार क्रेव केअर रहता है। उसका नाम था ब. बर्टन। वह हमारा पथप्रदर्शक बनने को तैयार हो गया है। क्रेव केअर दूसरा गाँव है, जो पीटर बोथ पर्वत की तराई में स्थित है। दल बाँधा गया, तारीख निश्चित की गई।

फिर शुक्रवार 6.11.68 को बालचर दल एक बार फिर पीटर बोथ के शिखर पर विजय पाने के लिए निकला। बर्टन जी के गाँव की तरफ़ रुख किया। बस क्रेव केअर रुकी। ऋषि मातादीन अपने रिश्तेदार को लेने चला गया। स्काउट्स मास्टर जयदेव जी ने शिखर पर खाने-पीने के लिए नाश्ते-पानी का बन्दोबस्त किया। कुछ देर बाद में बर्टन जी आए और हम क्रेव केअर से ही गन्ने के खेतों को पार करके पर्वत की तराई में पहुँच गये।

हमने गायत्री मंत्र बोलने के पश्चात् चढ़ना प्रारम्भ किया। इस बार सावधानी के तौर पर स्काउट्स मास्टर ने अपने साथ एक मज़बूत रस्सा ले लिया था। देखते-ही-देखते हम वहीं पर चढ़ चुके, जहाँ पर से जगदीश और मैं पिछली बार लौट आये थे। वहाँ वही दीवार खड़ी थी, जैसे सदियों से खड़ी थी। लोटे की काँटी के ज़रिये हम बन्दर चाल से आसानी से चढ़ गये। तभी तो मुझे पिछले अभियान के दौरान वह घटना याद आई कि कैसे-कैसे वे युवतियाँ चट्टान की खड़ी दीवार से दनादन उतर रहीं थीं। हमें कतई मालूम नहीं था कि ऐसे भलमानस होंगे, जो इन फर्राटों को वहाँ डाल देंगे। जिन्होंने काँटी लगाई थीं, उन्हें मन-ही-मन कृतज्ञता प्रस्तुत करते हुए, हम चढ़ते गये। वह खड़ी ऊँची दीवार जितना भयानक और अजय लगती थी, उसे हम लोग उतनी ही आसानी से चढ़ सके। पर्वत की बाँह फाँदकर हम उसके कंधे पर लपक पड़े थे।

पर्वत के गले तक का फ़ासला तय करना हमारे लिए कुछ मुश्किल नहीं था, बन्दर चाल से हम गले और शिखर पर चढ़े।

अब जोखिमभरी चढ़ाई शुरू हुई। गले से ठुड्डी तक पहुँचने के लिए सिर्फ़ हाथों का इस्तेमाल करना था, पैर हवा में लटके होंगे, धरातल से पूर्ण रूप से मुक्त। बर्टन जी पहले चढ़ा, फिर स्काउट्स मास्टर, जिस-जिसको आवश्यकता थी, उसको रस्सी बाँधी गयी।

जब मेरी बारी आई, तब मैंने आरोहियों का उसूल तोड़ दिया। नीचे की तरफ़ झाँकने लगा था। मैंने देखा कि खतरनाक मौत विकराल मुँह बाये सामने खड़ी है। पहली बार ज़िंदगी में मैं मौत से रूबरू हुआ। अनन्त खाड़ी में, नुकीले भयानक चट्टानों के गर्त में अब गिरा तब गिरा। मेरी आधी शक्ति क्षीण हो गई थी। तभी स्काउट्स मास्टर जयदेव ने मुझे टोका - "आप नीचे मत देखिए। ऊपर चढ़ना है, ऊपर की ओर देखिए। आपने घोर उल्लंघन किया है। रस्सी बाँधिए।" मैं अपने-आपको बहादुर समझता रहा... धिक्कार।

जो किया सो बुरा किया। बर्टन जी के पीठ पीछे स्काउट्स मास्टर जयदेव सिबरत चढ़ चुके थे। हमेशा की तरह मैं सबसे अन्तिम था। स्काउट्स मास्टर ने बारी-बारी से हमें बताया कि लोहे की काँटी सब जगह नहीं हैं। दो-चार होंगे, बाकी

अपने हाथों-बाहुओं के बलबूते चढ़ना है। घुटनों को चट्टान की दीवार से सटाकर छिपकली की चाल से अग्रसर होना होगा। एक बार अपनी बाँहों में शक्ति संचय कर, विजय निश्चय ही प्राप्त होगी। मैंने वैसा ही किया और मैं शिखर पर चढ़ गया। अंतिम क्षण में लोटे की काँटी नहीं थी, खुद को चट्टान पर सिमटकर आहिस्ता-आहिस्ता बाहू बल से खींचना पड़ा। यही अंतिम जोखिम भरा कदम था। फिर हमारी विजय सिद्ध थी। हम शिखर पर पहुँच गये थे।

सफलता प्राप्ति

हम ने नौवें हिंदू बॉइज़ स्काउट्स का पताका फहराया। हम बादलों की ऊँचाई पर आ गये थे। हम चहूँ ओर दृष्टि दौड़ाकर नज़ारा देखने लगे। मॉरीशस कितना छोटा टापू है हमारा, आज दिखाई दिया। चहूँ ओर समुद्र-ही-समुद्र। फिर आपस में बाँटकर हमने नाश्ता-पानी किया। हम ने फ़ोटो खींचे। हमने आसमान से नीचे की तरफ़ नज़ारा देखा, क्या भव्य दृश्य था, लग रहा था कि हम पर्वतों की शृंखला के बराबर खड़े हैं, ज़िंदगी में हमने कम-से-कम एक बार आसमान को ठोस रूप से छुआ। हमने शिखर पर विजय पाई। खुशी के मारे टहलने लगे। शिखर पर काफ़ी जगह थी, बीस व्यक्तियों के बैठने की जगह थी। कागज़ के स्वरूप समुद्र में जहाज़ देखे। अनन्त घाटी देखी, फैली तराइयाँ देखीं, चहूँ ओर गन्ने के खेतों की हरियाली देखी।

सफलता प्राप्ति के बाद हमने महसूस किया कि पहले से कुछ बढ़ गये थे। ऐसा लगा कि वे परियाँ जो अक्सर पीटर बोथ पर्वत की किंवदंतियों से संबंधित हैं, हम उनसे आ मिले हैं और उन्होंने हमारे मन में इतनी सारी शक्तियाँ भर दी हैं कि किसी भी मॉरीशसीय पर्वत के शिखर को चुनौती दे सकते थे।

मुक्ति

श्रीमती प्रीति गोविंदराज
अमेरिका

नाइट ड्यूटी मुझे सर्वथा अप्रिय लगती थी! कारण अनेक थे, किंतु उनमें सर्वोच्च था, दिन के समय नींद न आना। मेरी रूम-मेट जानती थी कि नाइट ड्यूटी करने पर दिन के समय मुझे नींद आने से रही और यदि आ भी जाए, तो यह दुर्लभ नींद हल्की आहट से छूमंतर हो जाती थी! इसलिए मैं दिन के समय किसी अन्य सखी के कमरे में विश्राम कर लेती। इस असुविधा को झेलना उसके लिए कष्टदायक था, किंतु वह मेरी अशक्तता से अवगत थी। उसकी सहृदयता के लिए आज तक मैं आभारी हूँ! दूसरा मुख्य कारण था पाचन क्रिया में विघ्न! भाग्यशाली व्यक्तियों का शरीर प्रायः इतना अड़ियल नहीं होता। वे भोजन और निद्रा इत्यादि की उथल-पुथल के अनुकूल समायोजन कर लेते हैं। किंतु मेरा शरीर प्रत्येक अनियमितता का एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर विरोध करता था।

उन दिनों सैन्य नर्सिंग कॉलिज के कुछ छात्रों की नाइट ड्यूटी अलग-अलग वार्डों में निश्चित की गई थी। मेरी नाइट ड्यूटी आई.सी.यू. सर्जिकल अर्थात् शल्य-संबंधी गहन चिकित्सा-कक्ष में लगी थी। इन रोगियों को अत्यधिक दक्षता और प्रचुर सेवा की आवश्यकता थी। छात्र एक वरिष्ठ नर्सिंग ऑफ़िसर की निगरानी में उनके साथ ड्यूटी करते थे। दस शयन कक्षों के वार्ड में एक से बढ़कर एक गंभीर रोगी थे, किंतु एक विशेष मरीज़ मेरी स्मृति में आज भी उभर जाता है।

उसकी आपबीती मेरे जीवन में एक अमिट छाप छोड़ गई। आज तक उसका प्रभाव उतना ही गहरा है, जितना उन दिनों। उस समय श्रीलंका के गृह युद्ध में भारतीय सैन्य अभियान के कारण अनेक घायल फ़ौजी सिपाही हमारे अस्पताल में भर्ती हो रहे थे। अधिकतर बड़ी दयनीय स्थिति में थे, यह ऐसे ही एक युवक का दर्दनाक अनुस्मरण है। लांस नायक गोपालन नायर से जब मेरी प्रथम भेंट हुई, तब एक बात स्पष्ट थी कि उसकी पीड़ा देख पाना भी कठिन था। उसकी

चिकित्सा रिपोर्ट मानो उसके मरणासन्न का प्रमाण था! पच्चीस की आयु का वह शैयाग्रस्त सिपाही था, जिसके बटालियन के दो सेवक चौबीस घंटे उसकी सेवा में उपस्थित रहते। उन सहायकों की तत्परता और उनकी लगन यही दर्शाती थी कि समूचा बटालियन गोपालन के इस बलिदान पर कितना कृतज्ञ और गौरवान्वित था। मेरे हृदय में उसकी दयनीय स्थिति के प्रति अपार करुणा थी। जल्द ही उन सहायकों से यह जानकारी मिली कि वह जासूस के रूप में शत्रु-दल में सम्मिलित किया गया था। प्रकटीकरण पर शत्रु-घेरे में गोपालन को गोलियों से छलनी किया गया। परिणामस्वरूप उसके तन पर और विशेषकर उदर में अनेक छेद हो गए थे। बिना उन्हें देखे, कल्पना करना असंभव है कि किस स्थिति में उन्हें श्रीलंका से भारत के युद्ध चिकित्सा केंद्र में लाया गया होगा! तीन शल्य प्रक्रियाओं के बाद भी उनकी वर्तमान स्थिति रुला देने वाली थी। अंतड़ियों में पाँच छिद्र थे, जहाँ से द्रव्य मल पदार्थ लगातार रिसता रहता था। इन सुराखों को पूर्ण रूप से बंद करना नामुमकिन था। घाव इतने थे कि एक अवस्था में उनका एक घंटे से अधिक विश्राम कर पाना अत्यंत कठिन था। मल में भीगते चादरों और पट्टियों को बदलना हर दूसरे घंटे का काम था। इसे संपन्न करने के लिए, मेरे साथ दस-पंद्रह मिनट तक हर सहायक को अपनी साँस रोककर जुटे रहना पड़ता था। केवल कपड़े बदलने की क्रिया आधे घंटे का काम था। गोपालन पीड़ाग्रस्त होते हुए भी अपने डॉक्टर, सिस्टर और सहयोगियों का सादर धन्यवाद करता रहता। तीव्र वेदना के कारण उसके कराहों को सुनकर चिकित्सा-कक्ष में बैठे-बैठे मैंने बहुत आँसू बहाए हैं। मुझे और अन्य नर्सिंग छात्रों को वह 'सिस्टर' कह संबोधित करता था, क्योंकि हम आयु में उनसे छोटी थीं। वरिष्ठ अफ़सरों को वह केवल 'मैडम' या 'सर' कहकर पुकारता। उसकी पट्टी करते-करते कुछ देर उससे बातचीत हो जाती, जब वह दर्द की दवा के प्रभाव में होता। ऐसे ही एक समय उसकी जीवन-गाथा मुझ पर खुली। वह केरल के एक छोटे-से गाँव में पला-बढ़ा। 'पट्टनमतिट्टा ज़िले' में उसने सरकारी स्कूल से हाई स्कूल पास किया और एक साल कॉलिज भी गया। वह सेना में भर्ती हुआ था आर्थिक विवशता के कारण, किंतु उसने सैनिक जीवन को स्वतः अपना लिया। जब इन्टेलिजेन्स कोर में उसने प्रशिक्षण पाया, किसे पता था कि एक दिन उसका यह हाल हो जाएगा? अपने जीवन में अकस्मात् आए इस दुखद परिवर्तन के कारण वह गहन चिंता में डूबा रहता। घर पर उसके माता-पिता और छोटे भाई-बहन सब उसी पर आश्रित थे। "अब वे किस तरह जीवन-यापन करेंगे? उनके जीवन में खुशहाली लाने वाला एकमात्र आशा दीप था मैं!" गोपालन स्वयं से बातें कर रहा था या मुझसे? उसकी कहानी सुनकर मेरी आँखें नम हो जाती थी। "ईश्वर के पास समस्या का हल है, आपकी बहादुरी पर आपके परिवार को कितना गर्व होगा।" सहसा मेरे मुख से शब्द उभरे, पता नहीं भावुकता में भीगा मन इतनी समझदारी से आशावादी बात कहाँ से सोच लेता है?

"नहीं बिल्कुल नहीं, मैंने अपने बटालियन कमांडर से कह दिया है कि मेरी वर्तमान स्थिति घरवालों से छिपाकर रखें। इस पीड़ा और असहाय अवस्था से स्वयं मुझे ही घृणा होती है, मैं नहीं चाहता कि वह मुझे इस प्रकार तड़पता हुआ देखें। मेरी मृत्यु के बाद बक्से में मेरा शव जाए, यही बेहतर है। मैं जिस प्रकार देह का चिथड़ा बन गया हूँ, वह मैं उन्हें दिखाना नहीं चाहता। कम-से-कम उनकी स्मृति में मेरा अस्तित्व बचा रहे, यही चाहता हूँ।"

"आपकी बात मैं समझ सकती हूँ, लेकिन आपको उनसे मिलने की इच्छा नहीं होती?" "कल्पना कर लेता हूँ बस, इतना ही तो कर सकता हूँ। परिवार से मिलना कौन नहीं चाहता? किंतु उनका दिल दुखाकर क्या मिलेगा? मेरी बटालियन के साथी मेरी देखभाल कर रहे हैं। दिन-रात मेरे सगे भाइयों की तरह मेरी सेवा करते हैं। आप और डॉक्टर भी अपूर्व स्नेह और धैर्य के साथ मेरी चिकित्सा कर रहे हैं।" "आप से एक रिक्वेस्ट है। आपको कोई श्लोक या प्रार्थना आती है?" "हाँ आती है, बचपन में मेरी माँ ने मुझे सिखाया था।" "क्या आप मुझे सिखायेंगी?" मेरी निजी धार्मिकता कर्मकांडों से कम और मानवता से अधिक प्रेरित है। बचपन से माँ के सिखाये गए श्लोक और पूजा का विधि-विधान मैंने अनायास ही अपना लिये थे। किंतु घर का प्रबंध खुलते ही यह प्रणाली भी बिखरती चली गई। जब तक मन में कोई बात नहीं

उतरती, वह जीवन-शैली का अंग नहीं बन पाता है। "मुझे अधिक आध्यात्मिक ज्ञान तो नहीं है, लेकिन जो भी आता है आपको सिखा दूँगी।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद।" उसने धीरे से कहा।

मैंने यह विनती स्वीकार तो कर ली, लेकिन जब उस आग्रह पर पुनः गौर किया, तब क्षुब्ध हो गई। क्या एक रोगी की विनती दूसरे रोगियों के आगे भारी पड़ जाएगी? सोचने लगी, रात के बारह बजने में बीस मिनट शेष थे, पूरा वार्ड नींद में डूबा हुआ था। ऑपरेशन के बाद निद्रा और व्यथा में डूबे मरीज़ों को कोई तकलीफ़ कैसे दे सकती थी? ड्यूटी करने वाले भी सब काम निपटाकर लेट चुके थे। मैं पूरी रात जागकर या तो कुछ पढ़ती या घूम-घूमकर प्रत्येक रोगी की जाँच करती रहती थी। नींद कितनी आवश्यक है यह मुझसे अधिक कौन जान सकता है! यदि मैं श्लोक कहते-कहते अन्य रोगियों को जगा देती, तो?" "नहीं, मैं आपको श्लोक सिखाने के लिए अन्य रोगियों को जगा नहीं सकती।" सुबह होते-होते जब मैं दोबारा ड्रेसिंग करने लगी, तब मैंने अपना निश्चय सुना दिया। "आप समझ नहीं सकतीं, मेरी क्या स्थिति है सिस्टर। मैं कभी मंदिर नहीं गया, न मैंने कोई प्रार्थना की। माँ मुझे बुलाती रहती, पर मैं जीवन भर नास्तिक ही रहा। अब सोच रहा हूँ क्या यह नरक जो मैं जीते-जी भुगत रहा हूँ, मेरे दुष्कर्म का दंड है? कम-से-कम मृत्यु से पूर्व क्षमा माँगने के लिए मार्गदर्शन चाहता हूँ। मैं आपको मजबूर नहीं कर सकता, लेकिन सच आपको हमेशा दुआएँ दूँगा, प्लीज़ सिस्टर। केवल पाँच मिनट ही सही, ड्रेसिंग के समय या ड्रेसिंग के बाद?" उसकी बातें मुझे छू गयी, नास्तिक होने का बोझ, उसे भारी लग रहा था। बेचारा मृत्यु से पूर्व मुक्ति का मार्ग ढूँढ रहा था। किंतु इस विचित्र आग्रह को पूरा करने की क्या मेरी क्षमता थी?

दूसरे दिन मैंने ड्यूटी के लिए तैयार होते समय, इस संदर्भ में अपनी ईसाई रूम मेट से राय माँगी। मैंने आशंका व्यक्त की, तो वह हैरान होकर बोली - "किस बात का डर है तुम्हें? जाने उसके पास कितना समय बचा है, प्रायश्चित के लिए! धीमे स्वर में प्रार्थना बुदबुदाने से यदि किसी मरणासन्न व्यक्ति को शांति मिल सकती है, तो इस बारे में इतना मत सोचो। हमारे धर्म में तो इसकी विधिवत प्रक्रिया है, पादरी अस्पताल में इस तरह के रोगियों के पास आकर यह पुण्य काम कर देते हैं। बेचारा गोपालन बड़ी हिम्मत करके तुमसे यह मदद माँग रहा है, इसलिए कि तुममें और उसमें धार्मिक और सांस्कृतिक समानताएँ हैं। समय रहते यदि तुमने उसकी मदद न की, तो तुम्हें बाद में पछतावा होगा। इसी बहाने तुम भी कुछ पुण्य कमा लोगी।"

इस सलाह मशवरे के बाद मेरे मन की दुविधा कुछ कम हुई। ईश्वर-स्तुति का ज्ञान शायद माँ ने ऐसे ही किसी अंधेरे में उजाला फैलाने के लिए सिखाया होगा। उस रात जब ड्यूटी पर पहुँची, तब गोपालन की आँखों में अजीब-सी चमक थी। शायद उसके हक में मेरे निर्णय का पूर्वानुमान उसे हो गया था। ड्रेसिंग करते समय स्वभाव अनुसार उसने छोटे भाई और बहन के बारे में बात की। अपनी किशोरावस्था में वह किस तरह अपनी माँ को स्कूल की सारी बातें सुनाता और अपने छोटे भाई की शरारत किस तरह छुपाता था इत्यादि। बहन पूरे परिवार की चहेती थी - "उसके लिए तो सात खून माफ़ थे।" वह हँसने लगा; किन्तु अचानक दर्द के कारण उसे रुकना पड़ा। पिताजी किसान थे, शांत और बेहद परिश्रमी, किंतु बच्चों को उन्होंने खेतों के कड़े श्रम से दूर ही रखा। उनकी इच्छा थी कि सब बच्चे दफ़्तर में ही काम करें। धूप और गर्मी में उनकी तरह न झुलसे! मुस्कुराता हुआ उसका चेहरा मीठी यादों में खो गया। पल भर के लिए वह सत्रह साल का किशोर बन गया था, शारीरिक पीड़ा के इस लोक से मीलों दूर। "आज आप मुझे श्लोक सिखाएँगी न?" रात के साढ़े दस बजे थे। नाइट ड्यूटी कर्मचारी अपना खाना खा रहे थे और अधिकतर रोगी सो रहे थे। ड्रेसिंग के बाद गोपालन के दोनों सहायक भी रात का खाना खाने वेटिंग रूम में जा चुके थे। मैंने अधिक समय न गँवाते हुए, धीमे स्वर में श्लोक कहना शुरू किया। गोपालन मेरे पीछे-पीछे श्लोक उच्चारित करता रहा। बीच में रुककर बोला - "सिस्टर यदि मैं सही नहीं बोल रहा, तो मेरे उच्चारण को सुधार दीजिए, मैं बुरा नहीं मानूँगा।" "अच्छा" मैं नया श्लोक कहने लगी। गोपालन अपनी आँखें बंदकर, बड़े ध्यान और श्रद्धा से उसे दोहराता रहा। उसकी आँखों के किनारों से आँसुओं की धार

बहने लगी। यह देखकर मेरा स्वर भी रुआँसा हो गया, फिर भी किसी प्रकार मैंने श्लोक का पाठ पूरा किया। कुछ देर बाद गोपालन ने अपनी आँखें खोलकर, दोनों हाथ जोड़कर मुझे कृतज्ञता से देखा, तो मैंने भी चुपचाप हाथ जोड़े। मास्क के कारण मेरा अधिकांश चेहरा ढँका हुआ था, किंतु आँखें खुली थीं। इससे पहले कि वह मेरी भीगी आँखें देख पाता, मैं पलट कर ड्रेसिंग-ट्रे लेकर ड्यूटी रूम में चली गई।

दूसरे दिन जब मैं ड्यूटी पर पहुँची, तब गोपालन के बिस्तर पर कोई और रोगी था। गोपालन जा चुका था, इस दुनिया से बहुत दूर! अपने दुर्भाग्य और वेदना-भरे शरीर को त्याग कर, ऐसी दुनिया में जहाँ वह पीड़ा मुक्त था। उसकी आत्मा शायद परमात्मा से मिल रही होगी। उस रात की ड्यूटी मेरे लिए बहुत भारी गुज़री, रह-रहकर गोपालन का 'थैंक यू सिस्टर' याद आता रहा। मन चिंता में डूबा रहा कि जब उसकी मृत्यु की खबर उसके परिवार को मिलेगी, तब वे इस त्रासदी को कैसे झेल पाएँगे? ईश्वर उन्हें यह दुख सहने की शक्ति प्रदान करें। अपने युवा पुत्र का शव देखकर उनपर क्या बीतेगी, यह सोचकर मन भर आता है। परिस्थितियों के कारण, मृत्यु से पहले गोपालन की मुक्ति में मेरा कुछ योगदान था, यह सोचकर मैंने तसल्ली कर ली। आँखें बंदकर, एक बार और उसकी आत्मा के लिए श्लोक बुदबुदा दिया।

cs_preethi@hotmail.com

आनन्द धाम में आनन्द के पल

श्रीमती शशि पाधा

यू.एस.ए.

एक वरिष्ठ सैनिक अधिकारी की पत्नी होने के नाते मुझ पर बहुत से दायित्व थे। युद्धरत सैनिकों के परिवारों का मनोबल बनाये रखने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करना, कम पढ़ी-लिखी सैनिक पत्नियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित करना, सैनिक परिवार कल्याण केन्द्रों में उनके लिए घरेलू लघु उद्योग के संसाधन जुटाना आदि-आदि। सैनिक परिवार समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है, चाहे इन परिवारों को शहरों से थोड़ा दूर सैनिक छावनियों में रहना पड़ता है। जिस प्रकार एक सैनिक अपने देश की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहता है, वैसे ही हर सैनिक पत्नी का भी अपने देश और समाज के प्रति उतना ही उत्तरदायित्व होता है, जिसे वह बड़ी सहजता से निभाती है।

वर्ष 1997 से लेकर वर्ष 1999 तक मैं अपने सैनिक परिवार के साथ पंजाब राज्य में स्थित फ़िरोज़पुर छावनी में रहती थी। भारत-पाक सीमा से सटे हुए इस छोटे-से ऐतिहासिक नगर के कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों द्वारा वर्षों से स्थापित अनाथालय, अंध विद्यालय और कुष्ठ रोगियों की सेवा के लिए बने 'आनन्द धाम' में सेवाएँ दी जा रही थीं। नगर से कुछ ही दूर एक गाँव में मदर टेरेसा द्वारा स्थापित संस्था 'निर्मल हृदय' में भी स्वयं सेवकों द्वारा सेवा-शुश्रूषा का कार्य किया जाता था। छावनी के सैनिक परिवार द्वारा भी समय-समय पर इन केन्द्रों में यथा योग्य सहायता-सेवा की जाती थी। छावनी के प्रमुख अधिकारी की पत्नी होने के नाते मैंने अन्य सैनिक अधिकारियों की पत्नियों के साथ इन सेवा केन्द्रों में अपनी सेवाएँ देने का मन बना लिया था।

भारत में अक्टूबर-नवम्बर के महीने में बहुत-से त्योहार मनाये जाते हैं, जिनमें दिवाली प्रमुख है। यह त्योहार खुशियाँ बाँटने और अपनों को गले लगाने का त्योहार है। हमने भी आनन्द बाँटने वाले इस सांस्कृतिक पर्व को नगर में स्थित 'आनन्द धाम' के निवासियों के साथ बिताने का निर्णय लिया। मुझे बताया गया कि इस धाम में कुष्ठ रोगियों के परिवार रहते हैं।

सच कहूँ तो उस दिन से पहले मैंने हरिद्वार में कुष्ठ रोगियों को मंदिर की सीढ़ियों पर बैठे हुए भिक्षा माँगते हुए ही देखा था और वह भी बचपन में। उनके हाथों-पैरों में पट्टियाँ बँधी देखकर नन्हा-सा मन पसीज गया था। माँ सुनाती है कि मैंने अपने खिलौनों के लिए बचाए हुए सारे पैसे उन लोगों में ही बाँट दिए थे। उसके बाद शायद कभी किसी रेलवे स्टेशन पर ही कुष्ठ रोगियों को देखा होगा। आम मेले-बाज़ारों में कभी नहीं। जाने का निर्णय लेने के बाद कई प्रकार के भाव-

अनुभाव मेरे मन में उमड़ रहे थे।

हम सब सैनिक पत्नियों ने तय किया कि हम दिवाली की सुबह 'आनन्द धाम' के निवासियों के साथ बितायेंगे। हमने खूब-सा स्वादिष्ट भोजन तैयार करवाया, बहुत से मौसमी फल, मेवे आदि टोकरियों में सजाये। भोजन और फलों के साथ उपहारों का होना भी ज़रूरी था। हमने कुछ सूती साड़ियाँ, ऊनी शाल और कमीज़ें और बच्चों के लिए खिलौने भी उपहारों के डिब्बों में बंद करवा लिये।

उस दिन आनन्द धाम में रहने वाले परिवारों से मिलने की उत्सुकता भी थी और अन्दर से एक भय भी सता रहा था कि न जाने उन्हें किस परिस्थिति में देखेंगे? क्या हम उन्हें छू पाएँगे? क्या हम उनके साथ मिलकर भोजन कर पाएँगे? जल्दी ही हमारे साथ जाने वाले स्वास्थ्य कर्मियों ने हमारे भय और आशंका को दूर कर दिया। उन्होंने हमें बताया कि कुष्ठ रोग संक्रामक रोग नहीं है और न ही यह कोई ईश्वरीय प्रकोप है। इन लोगों से हम पूरे खुले दिल से जैसा चाहे सम्पर्क कर सकते हैं। सुनकर हमारी बचपन की भ्रांतियाँ दूर हो गई थीं।

आनन्द धाम को दिवाली के शुभ अवसर पर सजाया गया था। एक खुले पंडाल में वहाँ के निवासी अपने परिवार सहित बैठे हुए थे। जैसे ही मैंने वहाँ प्रवेश किया, दो प्यारे-से बच्चों ने पुष्पगुच्छ से हमारा स्वागत किया। पंडाल में सभी लोग ज़मीन पर बिछीं दरियों पर बैठे हुए थे। बहुत-सी महिलाओं और पुरुषों के पैरों और हाथों की अँगुलियों पर पट्टियाँ बंधी हुई थीं। एक-दो वृद्ध लोगों की आँखों पर भी पट्टी बँधी थी। लेकिन उनकी स्थिति इतनी दयनीय नहीं लग रही थी, जितनी मुझे आशंका थी। उनका इलाज चल रहा था, इसलिए वे किसी दर्द या पीड़ा से नहीं कराह रहे थे।

हमने उन्हें अपने लाये हुए उपहार भेंट किये। बच्चे तो उसी समय अपने खिलौने देखकर उनके साथ खेलने लगे। महिलाओं ने खुशी से नये शाल ओढ़ लिये। मैंने हर पंक्ति में जाकर उनसे बातचीत करनी शुरू की। खुशी हुई यह जानकर कि इनका इलाज सुचारु रूप से चल रहा था और स्थानीय स्वास्थ्य विभाग इनकी देखभाल कर रहा था। आश्वासन की सबसे बड़ी बात यह थी कि इनके बच्चे इस रोग से संक्रमित नहीं थे और ना ही होंगे।

आनन्द धाम में बैठे हों और कुछ आनन्द का वातावरण न हो - यह कैसे हो सकता था! हमने उनसे ही पूछा कि उनमें से कौन गा सकता है, कौन-सा बच्चा नृत्य कर सकता है। हॉल में बैठे बहुत-से लोगों के पट्टियाँ बंधे ऊँचे हाथ देख-देखकर बहुत सांत्वना हुई कि यह सब खुशी मनाने के लिए पूरी तरह से तैयार थे। और फिर शुरू हो गया गाने-बजाने का सिलसिला। आनन-फानन में ढोलक आ गया, मंजीरे बजने लगे और सारा पंडाल भजनों के पावन स्वरों से गूँज उठा। कुछ कुशल गायकों ने महात्मा गांधी का प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे' इतने मधुर स्वरों में गाया कि पूरा वातावरण भक्ति-रस में डूब गया। आनन्द से गाते-बजाते इन रोगियों को देखकर मैंने महसूस किया कि रोग तो इनके शरीर के बाह्य अंगों में है, इन्हें शायद पीड़ा भी है। किन्तु इनका मन तो पूर्णतया स्वस्थ है। ये लोग जीवन को अपने ढंग से जीने और परिस्थतियों से जूझने की कला में पारंगत हैं। ये तो हमारे जैसे हैं और शायद हमसे अधिक साहसी और हिम्मत वाले हैं। ये दया नहीं चाहते हैं, केवल उपचार चाहते हैं और समाज में उचित स्थान।

अब मैं भी भावुक हो गयी थी। मैंने उनके साथ मिलकर बहुत-से भजन गाये। हँसी-मज़ाक के दौर में मैंने हरी चूड़ियाँ पहने हुए एक युवा लड़की से पूछा कि क्या उसका विवाह हो गया है? तो उसने बहुत शरमाते हुए हामी में सर हिला दिया। उसके आस-पास बैठीं स्त्रियों ने मुझे उसके युवा पति से भी परिचित कराया। मेरे मन के उस प्रश्न का उत्तर भी मुझे मिल गया कि कुष्ठरोगी भी सामान्य जीवन बिता सकते हैं ।

अब हमारी बारी थी बच्चों के साथ समय बिताने की। हमने उनसे कुछ बालगीत सुने और कुछ चित्रकारी की। दो बच्चों ने रावण और हनुमान बनकर रामलीला के एक अंश का मंचन करके दिखाया। उन बच्चों की प्रतिभा को देखकर मैंने उसी समय निर्णय लिया कि स्थानीय लोगों से मिलकर इनके लिए शिक्षा की अधिक-से-अधिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने के क्षेत्र में हमें बहुत लगन के साथ काम करने की आवश्यकता है।

हमारे साथ आए सेवा कर्मियों ने तब तक भोजन का बंदोबस्त कर दिया था। बगीचे में लगे शामियाने में मेज़ों पर

रखे गए भोजन को हम सबने मिलकर खाया। उस दिन हम मिठाइयाँ तो नहीं बाँट पाए, क्योंकि स्वास्थ्य और चिकित्सा को ध्यान में रखते हुए 'आनन्द धाम' में मिठाइयाँ ले जाना वर्जित था। अच्छा ही हुआ क्योंकि हम सबने मौसमी फलों का जी भर आनन्द उठाया।

विदाई के पल सदैव ही भावुक करने वाले होते हैं। मैं हैरान थी कि मैंने 'आनन्द धाम' के वासियों के साथ कुछ घंटे ही तो बिताये थे, लेकिन जाते समय जितना वे लोग रो रहे थे, उतना ही मैं भी। मुझे अन्दर से आत्म-ग्लानि के भाव ने घेर लिया था कि मैं इससे पहले इनसे मिलने क्यों नहीं आई। शायद मेरे बचपन का भय अभी तक मेरे साथ था या मुझे मेरी शिक्षा के दौरान कभी ऐसी संस्थाओं में जाने के लिए प्रेरित नहीं किया। दुख की बात यह थी कि मेरी तरह बहुत-से लोगों को शायद इस बात का ज्ञान ही नहीं होगा कि कुष्ठरोग संक्रामक नहीं है और इसका उपचार हो सकता है।

मैं कार में बैठ रही थी तो 'आनन्द धाम' का प्रांगण 'भारत माता की जय', 'महात्मा गांधी की जय' के नारों से गूँज उठा। पट्टियाँ बँधे हाथ जोड़कर वे सब मुझसे विदा ले रहे थे। मैं इनकी जिजीविषा की उद्दात भावना के आगे नतमस्तक थी।

shashipadha@gmail.com

कुछ अविस्मरणीय क्षण

श्रीमती इंदु बारौठ
यू.के.

जीवन में कुछ क्षण होते हैं, जिनको हम चाहकर भी नहीं भूल पाते हैं, जिनके बारे में जब भी सोचते हैं, मन में टीस-सी उठ जाती है। यह बात तब की है, जब कोरोना ने पूरी दुनिया को ग्रस्त कर रखा था और लोग बाहर जाने से भी डरते थे। 17 जनवरी को संध्या के समय, भारत से मेरी ननद का फ़ोन आया कि ससुर जी की तबियत खराब हो गयी है और अस्पताल में उनकी भर्ती करवायी है। लग ही रहा था कि कुछ तो गड़बड़ है, वरना सास और ससुर दोनों ही दोपहर को रोज़ाना फ़िक्स टाइम पर फ़ोन कर देते हैं, तो मन को शांति मिलती है कि दोनों स्वस्थ हैं। लेकिन आज फ़ोन नहीं आया, तो सोचा बेटी है, तो दोनों बेटी पर लाड़-प्यार लुटाने में व्यस्त होंगे। अस्पताल की बात सुनते ही मन में एक अजीब-सा डर पैदा हुआ और उसके साथ दुख होने लगा कि जिसके दोनों बेटे विदेश में हैं, वे स्वयं को ऐसे समय में कितना एकाकी और असहाय महसूस कर रहे होंगे। पर हमारी किस्मत कहें या ससुर जी की, कि मेरी ननद उनके साथ थी, जिन्होंने अस्पताल में भर्ती करवा दिया, लेकिन अस्पताल में भी पहले कोविड चेक करने के बाद ही इलाज की व्यवस्था की गयी।

यहाँ हम दोनों को ग्लानि की भावना ग्रसित किये जा रही थी कि ऐसे समय में तो कम-से-कम उनके साथ होना चाहिए। बच्चे बुढ़ापे की लाठी बनते हैं, किन्तु आजकल कमाई के कारण बाहर जाना पड़ता है और ऐसे चक्रव्यूह में फँसते जाते हैं कि कोई रास्ता दिखाई नहीं देता या फिर हम देखना नहीं चाहते, विदेश की सुविधाओं की आदत जो हो जाती है। खैर यह ऐसा विषय है, जिसका कोई अंत नहीं है।

मेरे पति ने आनन-फ़ानन में 19 जनवरी की टिकटें बुक करा दीं, पर यह सब कोविड-19 के समय आसान नहीं था। यात्रा करने से पहले पी.सी.आर. टेस्ट फ़िट-टू-फ़्लाइ का सर्टिफ़िकेट बहुत ज़रूरी था। इसके बिना हवाई जहाज़ में बैठने की अनुमति नहीं थी, पी.सी.आर. टेस्ट के नाम पर भी लूट मची हुई थी, मतलब की बहुत महँगा पर ज़रूरत के समय तो क्या महँगा और क्या सस्ता? खैर वेटिंग लिस्ट में हमारा नाम डाल दिया गया तथा 18 जनवरी को पीसीआर टेस्ट के लिए अपॉइन्टमेंट मिला। सुबह-सुबह हम सब चले गए और हम चारों का पी.सी.आर. टेस्ट हो गया।

वहाँ बोला गया कि 18 को शाम तक रिज़ल्ट मेल द्वारा मिल जाएगा। 19 की सुबह सात बजे की फ़्लाइट थी, 18 की रात होने को आ गई, सब पैकिंग हो गई, घर का पूरा काम समेट लिया कि 15-20 दिन तो रुकना ही है, लेकिन अभी तक कोई मेल नहीं मिला। एक-एक क्षण निकालना भारी पड़ रहा था, बार-बार मेल चैक कर रहे थे। इतने पलक पाँवड़े कभी नहीं बिछाये किसी के लिये, जितने आज पी.सी.आर.

टैस्ट की प्रतीक्षा में दिख रहे थे।

आखिरकार रात के 10 बजे मेल आया, पति का चेहरा खुशी के साथ-साथ दुख मिश्रित दिखा, पता चला कि केवल एक उनका ही रिज़ल्ट आया है, मेरा और दोनों बच्चों का कोई अता-पता नहीं है। कोई नहीं, वैसे भी हम गृहणियाँ सामंजस्य बिठाना बखूबी से जानती हैं, तो मैंने भी कर लिया सामंजस्य और कह दिया पति को कि कोई चिन्ता नहीं, आप अकेले चले जाओ बाकी बाद में सोचेंगे, पर कहावत है न कि 'उम्मीद पर ही तो दुनिया कायम है', सो पति ने भी उम्मीद नहीं छोड़ी और घुमा दिये हर ऑफ़िस में फ़ोन, कर दिये मेल जहाँ भी करने थे। आखिरकार मेहनत रंग लाई और रात के 2 बजे दोनों बच्चियों के रिज़ल्ट भी मिल गये। अब आशा जाग चुकी थी कि मेरा भी आ ही जाएगा, फिर भी रात के तीन बजे पति ने एक बार और फ़ोन किया, तो दूसरी तरफ़ से सकारात्मक सुझाव सुनकर अच्छा लगा कि आप लोग हवाई अड्डे पर चले जाओ, हम पूरा प्रयास करते हैं। कितनी विनम्रता से बात करते हैं ये लोग, मेरे पति कम-से-कम दस बारह बार फ़ोन कर चुके थे, पर दूसरी तरफ़ से हर बार धैर्य के प्रदर्शन की ही माँग होती रही।

पाँच बजे हम लोग निकल गये, वहाँ सभी कतारें व्यवस्थित ढंग से थीं, सहायता के लिए अलग से व्यक्ति उपस्थित थे। मेरे पति ने भी सब ज़रूरी कागज़-पत्रों की एक फ़ाइल बना ली थी, आज पता चल रहा था कि अपने देश से बाहर होना कभी-कभी दुखदायी भी होता है। जब तक हमारा नंबर आया, ईश्वर की कृपा से मेरा रिज़ल्ट भी आ गया मेल से तो सब कागज़ात अधिकारी के सामने बिछा दिये। इतने नियम कि प्रतीत हो रहा था कि बस ईश्वर यह परीक्षा पास करवा दे। वैसे भी हर काम के लिए भगवान् को ही याद किया जाता है।

हवाई जहाज़ में कोविड-19 सुरक्षा हेतु एक बैग दिया गया, जिसमें मास्क, सैनीटाइज़र, टिशू आदि कई सामान थे। खाने के भी पैकेट दिये गये। पर ऐसे समय पर किसको खाना अच्छा लगे! हम सब सो गये, थकान तो थी ही।

अब जो समय था वह अविस्मरणीय था, जिसको अभी भी सोचकर सिहर-सी जाती हूँ। हम पहुँच गये भारत की धरती पर, भारत का दिल यानी कि दिल्ली, भारत की राजधानी में।

सबसे पहले इमिग्रेशन की लाइन में लगे वहाँ प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार ऐसा था, जैसे कि हम अछूत हों। वहाँ पासपोर्ट ले लिये गये, अनेक औपचारिकताएँ पूरी करवाते तथा कितने ही फ़ॉर्म भरवाते-भरवाते एक बड़े हॉल में कोविड टेस्टिंग के लिए हमें बिठा दिया गया। नंबर आने पर टेस्ट हुआ और अब रिज़ल्ट की प्रतीक्षा का नंबर था फिर से पूरे जहाज़ के यात्री एक ही कमरे में थे और कमरे के दरवाज़े बंद थे। लेकिन सुविधा अच्छी थी, कमरे में पाँच छः शौचालय थे, खाने-पीने की सुविधा और हाँ आज के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण इंटरनेट, जिसके बिना दस मिनट भी भारी लगने लगते हैं। आठ-दस घंटे बाद एक अधिकारी के साथ पुलिस के दो-तीन सिपाही हाथ में सारे पासपोर्ट लिये आये तथा बड़े जोश भरी आवाज़ में बोले कि सभी को बहुत बधाई, आप सभी नेगेटिव हैं। सबने तालियों के साथ स्वागत किया। फिर प्रारंभ हुई गणना, सबको नाम के साथ बोलते रहे तथा छोटे-छोटे समूह बनाते गये। हाँ! पासपोर्ट अभी भी उनके ही पास था।

आगे-आगे अधिकारी और पुलिस का सिपाही, पीछे-पीछे हम एक कतार में, विद्यालय की याद आ रही थी। ऐसे ही तो क्लास रूम में ले जाते थे, एक कतार में। हर पचास कदम की दूरी पर कोई-न-कोई फ़ॉर्म, लेकिन डोमेस्टिक हवाई अड्डे का कुछ पता नहीं। भागमभाग में 19 जनवरी की सुबह 5 बजे से 21 जनवरी की सुबह हो गई, सोच सकते हैं बच्चों का क्या हाल हो रहा था।

अचानक जाते समय अधिकारी को धक्का लगा और हाय री किस्मत सारे पासपोर्ट नीचे गिर गये, हर पासपोर्ट में दो-तीन फ़ॉर्म भी थे, जो तितर-बितर हो गये। बैठने की कहीं जगह नहीं। बच्चियों को नीचे ज़मीन पर बिठाकर पासपोर्ट और फ़ॉर्म को समेटने में अधिकारी की सहायती की। सब कुछ लेकर अधिकारी महोदय के साथ-साथ लिफ़्ट से डोमेस्टिक हवाई अड्डे पर पहुँच गये। लग रहा था जैसे गढ़ ही जीत लिया, पर पता नहीं था कि अभी तो कई और मुसीबतों का सामना करना बाकी है। चैकिंग मेज़ के पास छोड़कर अधिकारी महोदय पासपोर्ट के साथ अचानक गायब हो गये, इधर बोर्डिंग पास लेना है, पर हाथ में पासपोर्ट नहीं। किसी

के साथ ऐसा कभी न हुआ होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर बिना पासपोर्ट के हों। पति और बच्चों को वहीं बिठाकर मैं ढूँढने चल पड़ी, क्योंकि धीरज की तो सदा थोड़ी कमी ही रही है। सब जगह देखा, किसी ने कहा वे दूसरी तरफ़ गये हैं। मैं एक बड़े से दरवाज़े के पास पहुँच गयी, जोकि शायद बाहर जाने का रास्ता था, वहाँ थोड़े बुज़ुर्ग से एक सिपाही खड़े थे, जो फ़ोन पर काफ़ी ऊँचा-ऊँचा बोल रहे थे, मेरे पूछने पर कि वापस जयपुर के चैकिंग कॉर्नर कैसे जाना है, उन्होंने सामने का संकेत दिखाया, मैं भी बिना सोचे-समझे उस दरवाज़े से निकल गयी।

जैसे ही निकली तुरंत मुड़ भी गयी, पर तब तक बेवकूफ़ी का तीर तो म्यान से निकल चुका था। बुज़ुर्ग महोदय फ़ोन रख चुके थे तथा मुझे अंदर आने से मना करने लगे। कुछ ऐसे क्षण आते हैं जीवन में जो हम भूलना नहीं चाहते हैं और कुछ चाहकर भी भुलाये नहीं जाते, मेरे जीवन का भी ये ऐसे ही क्षण थे, जिनको मैं चाहकर भी नहीं भूल सकती। मैं उनको बार-बार समझा रही थी कि आपके कहने पर ही बाहर गयी थी, मेरे पास मेरा पासपोर्ट भी नहीं है। मेरा परिवार अंदर है, मेरी फ़्लाइट जयपुर पर जाने वाली है। बंदा टस-से-मस नहीं हुआ। बहुत मिन्नतें की, गुस्सा दिखाया, गिड़गिड़ाई। कहते हैं न कि कई बार ऐसे आदमी से पाला पड़ जाता है, जो खुद से कुण्ठित हुआ रहता है, वह किसी की सहायता करना तो दूर सीधे मुँह बात भी नहीं करता। मैं स्वयं पर झुंझला रही थी कि भारत में कभी नहीं रहना चाहिए। यहाँ हर आदमी खुद से ही परेशान दिखता है, किसी से कुछ पूछना तो ऐसा होता है कि बहुत बड़ा पाप कर दिया। कैसे हैं ये बुज़ुर्ग इन्सान जो सुनने को ही तैयार नहीं हैं!

पर सभी ऐसे तो नहीं होते हैं न? कहीं से तो ईश्वर कुछ रोशनी झोली में डाल ही देते हैं। एक आर्मी के भाई साहब ने मेरी पूरी कहानी सुनी तथा काउंटर पर जाकर पता किया कि लंदन से दिल्ली आने वाली फ़्लाइट में मेरा नाम है, तो पूरी इज़्ज़त के साथ वे मुझे अंदर ले गये। जाते-जाते बुज़ुर्ग आदमी को बोलकर गयी कि आप जैसे लोगों के कारण ही हमारा भारत बदनाम होता है। यह तो मैं थी और मेरा देश था, सोच सकते हैं कोई दूसरे देश से आए और ऐसा व्यवहार देखने को मिले, तो उसकी क्या स्थिति होगी? आर्मी वाले भाई साहब के साथ जयपुर बोर्डिंग पास वाली जगह पहुँची, तो बच्चियाँ और पति बेहद गुस्से से भरे मुझे देख रहे थे, जैसे तीन शेर मिमियाती बकरी को अभी फाड़कर अपना भोजन बना लेंगे।

वाह रे किस्मत! पास पहुँचने पर पता चला कि फ़्लाइट मिस कर दी है। यह एक और तमाचे से कम न था।

कुछ अधिकारियों की समझदारी कहें या उदारता, जिनके कारण एक घंटे बाद की ही दूसरी फ़्लाइट में हमें एडजस्ट करा दिया और आखिरकार जयपुर की फ़्लाइट में हम बैठ गये। शाम के समय घर पहुँचे तब तक ससुर जी को छुट्टी मिल चुकी थी। घर पहुँचकर ऐसा लग रहा था कि बहुत बड़ी परीक्षा पास कर ली है। अंत भला तो सब भला।

indu.barot@yahoo.in

पत्थर पर नक्काशी

श्रीमती मकतूबा मुर्तज़ाखोदजाएवा
ताशकंद, उज़्बेकिस्तान

संस्मरण एक अवधारणा है, जो कभी भी कहीं भी आ-जा सकता है। अचानक एक बिन बुलाए मेहमान की तरह दरवाज़ा खटखटाता है। हम इसके बारे में लंबे समय तक खूब बात कर सकते हैं। लेकिन मैं बीच में एक पहेली पेश करना चाहती हूँ; पहले वह चार पैरों पर चलता है, फिर वह 2 पैरों पर चलता है और फिर 3 पैरों पर चलता है। आपका उत्तर? आपने ठीक जवाब दिया है - मानव का जीवन। एक बच्चे के रूप में वह चारों पैरों से रेंगता है, फिर वह दो पैरों पर चलता है और जब वह बूढ़ा हो जाता है, तब वह एक बेंत का सहारा लेता है।

मानव का जीवन अजीब है। जीवन के रास्ते में एक व्यक्ति विभिन्न लोगों से मिलता है। वह अलग-अलग प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है। आप जिन लोगों से मिलते हैं, उनमें से कुछ क्षणभंगुर होते हैं या उन्हें हम जल्दी ही भूल

जाते हैं और कुछ हमारे मानस पटल पर गहरी छाप छोड़ते हैं। हमारे गुरु आज़ाद शामातोव एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने न केवल मेरे जीवन पर एक गहरी छाप छोड़ी, बल्कि मेरे जीवन को एक नई दिशा भी दी। उनके द्वारा मेरे जीवन पर कई गहरे प्रभाव पड़े, जिसे किसी तरह से मिटाया नहीं जा सकता। आइए, मैं आपको शुरू से उस विराट व्यक्तित्व के असर से परिचित कराती हूँ।

10 साल अरबी पढ़ने के बाद हिंदी में पढ़ना मेरे लिए एक अप्रत्याशित घटना थी। पहली मुलाकात में प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव से मैंने कहा कि मैं एक अरबी विद्वान बनना चाहती हूँ, तो उन्होंने संयम के साथ कहा -

"बेटी, अगर आप 5 नंबर पाकर हिंदी पढ़ती हैं, तो हम आपको आपकी पसंद की अरबी भाषा में स्थानांतरित कर देंगे, लेकिन आपको उत्कृष्ट नंबर के साथ पहला कोर्स पूरा करना होगा।"

मेरी स्थिति की कल्पना कीजिए! मेरे हाथ-पाँव चार नहीं, बल्की आठ हो गए और मन लगाकर पढ़ना पड़ा। हमारे ग्रुप में ऐसे लोग थे, जो पहले से हिंदी जानते थे। हमारी हिंदी की अध्यापिका तमारा खादजायेवा जी अधिकांशतः रूसी की सहायता से हिंदी पढ़ाती थीं। उच्चतम लक्ष्य के रास्ते में रूसी भाषा मेरे लिए कोई समस्या नहीं बनी। मैंने निष्ठापूर्वक विज्ञान का अध्ययन किया। सर्दियों का महीना था। अचानक एक दिन, विभाग के प्रमुख प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव ने मुझे बुलाया। किसी खुशखबरी की तलाश में मैं उनके कमरे में चलकर नहीं, बल्कि उड़कर गयी। उन्होंने बड़े शांत भाव से बोला।

''बेटी, मुझे पता चला कि आपकी भाषा सीखने की कुशलता उच्चतम है। मैं आपको-शोध कार्य करने की सलाह देता हूँ। आपकी बोलने की गति भी तेज़ है। दक्षिण भारत में रहने वाले तमिल लोग भी बहुत तेज़ी से बोलते हैं। स्वाध्याय करने का प्रयास क्यों नहीं करती हो? आपको अपनी क्षमता दिखाने का एक और मौका मिलेगा। आप सेमिनार में वैज्ञानिक व्याख्यान देंगी। मैंने आपके लिए एक बहुत ही रोचक विषय तैयार किया है। आप तमिल लोगों के राष्ट्रीय अवकाश के बारे में एक व्याख्यान देंगी। हमारे भारत विद्या अध्ययन में एक नये क्षेत्र का उद्घाटन होगा ...''

अभियान लंबा नहीं चला। मैं तुरंत सहमत हुई। मैंने अपने गुरु जी के मार्गदर्शन में नया शोध-कार्य करने का फ़ैसला किया। उस वक्त बना हुआ 'गुरु-शिष्य' का रिश्ता अभी तक मौजूद है।

जब मैंने प्रथम कोर्स समाप्त किया, तब गुरु जी ने मुझे फिर से बुलाया और उन्होंने बड़े ही आत्मीयता से बात की। विषय यह है - "मेरा हिंदी में रहना।" मेरी योजनाओं और इरादों को हमेशा की तरह गौर से सुनने के बाद, वे एक पिता की तरह वात्सल्य-भाव से बात करने लगे -

"बेटी, आपने एक बड़ा काम शुरू किया है। अधूरा मत छोड़ना।"

मैंने गहरी साँस ली ...। उन्होंने आगे कहा -

"ठीक है, मान लीजिए कि आपने अरबी का अध्ययन किया और स्नातक की उपाधि प्राप्त की, आप आगे क्या करना चाहती हैं? अरब देश लड़कियों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते... आपका भविष्य हिंदी में है। आप भारत जाएँगी..."

मेरे मन में प्रश्न उठा - "मेरी अरबी भाषा का क्या होगा?"

उन्होंने उत्तर दिया "वह हमेशा आपके साथ है। 10 साल से सीखी गई भाषा को भुलाया नहीं जाता। इसकी स्थिरता आपके हाथों में है..."

ऐसे प्रेरक वचनों से मेरे हृदय में फिर से एक नए उत्साह का संचार हो गया। मेरे हृदय में एक चिंगारी जल उठी। जब मैं घर लौटी तब मेरे आँसू भी उस आग को शांत नहीं कर सके।

घंटों के बाद दिन और दिन के बाद साल बीते। स्थिति के अनुसार, मैंने तमिल भाषा और साहित्य का थोड़ा बहुत स्वयं से अध्ययन करने की कोशिश की। मैंने हर पाठ्यक्रम में तमिल भाषा की संस्कृति और कला पर टर्म पेपर लिखे। मेरे डिप्लोमा का कार्य भी इस क्षेत्र में गुरु जी के मार्गदर्शन में लिखा गया। वे भारत-विद्या के अध्ययन के साथ-साथ तमिल अध्ययन का विकास करना चाहते थे। वे भारतीय अध्ययन के उज़्बेक स्कूल को मास्को और सेंट पीटर्सबर्ग स्कूलों के स्तर पर पहुँचाना चाहते थे।

भाग्य से, 1993-1994 में मैंने आगरा में 'केंद्रीय हिंदी संस्थान' के 400 वें पाठ्यक्रम में अध्ययन किया। जनवरी 1994 में उज़्बेकिस्तान गणराज्य के पहले राष्ट्रपति स्वर्गीय इसलाम करीमोव राजकीय यात्रा पर दिल्ली पहुँचे। प्रतिनिधिमंडल में गुरु जी प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव भी शामिल थे। हम, उज़्बेकिस्तान की 3 लड़कियों को आगरा से दिल्ली बुलाया गया था। प्रभाव और भावनाएँ अलग थीं। हम एक फ़ाइव स्टार होटल में थे, शाही खाने...

गुरु जी बहुत संवेदनशील आदमी थे। दिन भर दुभाषिया रहने के बाद, जब रात बिताने के लिए जगह खोजने की समस्या का समाधान नहीं हुआ, तब हमारे लिए गुरुजी ने अपना कमरा खाली कर दिया और वे दूसरे मेहमान के कमरे में चले गए। उस समय हम से खुशनसीब और कोई न था। छात्र के लिए फ़ाइव स्टार होटल में रहना अकल्पनीय घटना थी। अगले दिन प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव ने कहा - "अगर अपने घरवालों के लिए कुछ देना हो, तो आज ही तैयार करना।" मैंने जल्दबाज़ी में कुछ दिया। मेरी स्वर्गीय माँ बहुत ही सादी और शर्मीली महिला थीं। वे प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव से मिलने पर और जो कुछ वे लाए थे, उन चीज़ों से बड़ी खुश हुईं।

मेरे गुरु जी ने मुझे न केवल अक्षर-ज्ञान दिया, बल्कि मुझे जीवन का सबक भी सिखाया। वे समय-समय पर मेरी निजी ज़िंदगी में भी दिलचस्पी लेते थे। अप्रैल 2006 में मेरा एक गंभीर ऑपरेशन हुआ। मेरा तीसरा बच्चा, जो समय से पहले पैदा हुआ था, वह भी तीन दिन जीवित रहने के बाद चल बसा। जब मैं अपने ही आग में जल रही थी, तब गुरु जी ने मुझे बुलाया और मेरी हालत देखकर मुझे सलाह दी। उनके तसल्ली देने के बाद वे फिर से सामान्य संयम से बात करने लगे। मुझे पता था कि हर चीज़ के पीछे कोई प्रस्ताव या छुपा काम होता है।

"बेटी, अप्रत्याशित रूप से, हाई स्कूल की हिंदी शिक्षिका मरहाबा जी की भी अचानक मृत्यु हो गई। शैक्षणिक सत्र समाप्त होने में 2 माह शेष हैं। उनके स्थान पर आप काम करें।"

जब मैंने बहाना बनाया कि मैं तनाव की स्थिति में हूँ और मेरा दर्द मेरे लिए काफ़ी है और कुछ अन्य बहाने, तो गुरु जी ने कठोर स्वर में कहा-

"यह विभाग का आदेश है, जाना ही पड़ेगा!"

मुझे बाद में पता चला कि इस कठोरता के पीछे मुझे अपने दर्द से बाहर निकालना ही उनका उद्देश्य था। मेरे गुरु जी अच्छी तरह से जानते थे कि अगर मैं घर पर रहूँगी, तो मेरे लिए इस परीक्षा को सुरक्षित रूप से पास करना मुश्किल होगा।

गुरु जी ने मेरे जीवन में ऐसे कई अमिट छाप छोड़े। मैं उनमें से कुछ का ही ज़िक्र केवल कागज़ पर करने में सक्षम हूँ। गुरु जी ने हमें ज्ञान, नम्रता, शील, निष्पक्षता और ईमानदारी का महत्त्व बताया। गुरु जी ने मेरे लिए एक आशा भी छोड़ दी। 2015 के वसंत में, जब मैंने उनसे कहा कि हम आपके बारे में एक टीवी प्रोग्राम बनाना चाहते हैं, तब उन्होंने कहा कि बेटी, थोड़ा ठीक हो जाऊँ, मुझे दो महीने दे दें। मैंने कहा - "ठीक है"। और यह "ठीक है" मेरे लिए महँगा पड़ा। 15 अगस्त, 2015 की सुबह हमारे गुरु जी का निधन हो गया। यह तारीख भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण तारीख है, यानी आज़ादी का दिन है।

हर बार जब भी हम भारत आते हैं, तब जहाँ भी प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव का नाम आता है, वहाँ मुझे गुरु जी पर गर्व होता है। इन दिनों में प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव की याद बहुत आती है, क्योंकि 8 अक्टूबर, 2022 में हमारे दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशियाई भाषा विभाग की 75वीं सालगिरह मनायी गयी। 40 साल से अधिक समय तक इसी विभाग के विभागाध्यक्ष प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव रहे। 2014 में उनको भारत सरकार की तरफ़ से 'जॉर्ज ग्रियर्सन' पुरस्कार मिला था।

मैंने इस लेख में हिंदी भाषा और उसके प्रचार-प्रसार के बारे में नहीं, बल्कि हिंदी भाषा के भक्त, प्रचारक के बारे में लिखा है। जैसा कि एक बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा है कि मैं यादों में हमेशा जीवित रहता हूँ। शिक्षक और महान् शिक्षाविद्, प्रोफ़ेसर आज़ाद शामातोव हम छात्रों की यादों में हमेशा जीवित रहेंगे। जो निशान वे छोड़कर गए हैं, वे पत्थर पर उकेरी गई नक्काशी की तरह हैं।

said_lola@mail.ru

सर्दियों में बोलपुर

श्री रोनित गांगुली
हैदराबाद, भारत

मुझसे अधिक ठंड सहन नहीं होता है। मैं हैदराबाद में पला-बढ़ा, जिस कारण से मैंने गर्मी का कहर अधिक देखा है। मैंने ठंडे देशों में कुछ समय व्यतीत किया है। वहाँ पर अधिकतर समय घर के अंदर बिताया और इस बात का ध्यान रखा कि किसी भी तरह से ठंड न लगे। लेकिन 2009 में बोलपुर जाते समय एक ऐसी घटना घटी, जिससे मेरे अंदर सर्दी का डर और बढ़ गया। दिसंबर 2009 में पौष के महीने में कई दिनों के बाद मैं सपरिवार कोलकाता गया और वहाँ से बोलपुर की यात्रा शुरू हुई।

कोलकाता में दिन और रात का समय हैदराबाद से कुछ अलग है। यहाँ सुबह 5:30 बजे सूर्योदय हो जाता है और शाम के 5:00 बजे सूर्यास्त होने लगता है। यही कारण है कि पहले हमारे देश में दो समय क्षेत्र (Time Zone) हुआ करता था, पर स्वतंत्रता के बाद इसे मिर्ज़ापुर (प्रयागराज के समीप) आधारित कर दिया गया। रूस, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में यह अभी भी है। यूरोप भी हर साल सर्दियों के समय अपने समय को एक घंटा बढ़ा या घटा देता है। मेरा मानना है कि भारत को भी दो अलग-अलग समय क्षेत्र व्यवस्था को अपना लेना चाहिए, ताकि हम देश के हर कोने पर दिन का सही उपयोग कर सकें।

सर्दी के समय हैदराबाद और कोलकाता के तापमान में लगभग 10 डिग्री का अंतर रहता है। कोलकाता में उस समय का तापमान लगभग 14-15 डिग्री था, इतनी ठंड हैदराबाद में अधिकतम सर्दियों के दिनों में होती है। हम पहले दो दिन कोलकाता के पर्यटन स्थलों में गए, उस बारे में किसी और समय बताऊँगा। तीसरे दिन सुबह 8:00 बजे हावड़ा स्टेशन गए और वहाँ से बोलपुर जाने के लिए ट्रेन पकड़ी। बोलपुर बीरभूम ज़िले में है।

कोलकाता पार कर जब हम उत्तर बंगाल की ओर बढ़ते हैं, तब बीरभूम पड़ता है। वर्तमान राजनीतिक सीमाओं को माना जाये, तो इसे उत्तर में कहना ठीक नहीं होगा, परन्तु प्राचीन समय में (पौराणिक समय से मौर्य साम्राज्य तक) यह बंगाल के उत्तरी क्षेत्र (पुण्ड्रवर्धन) में ही आता था। वीर (बंगाली में बीर) का अर्थ है बहादुर और भूम का अर्थ है भूमि, इन दोनों से इस जगह का अर्थ बनता है 'वीरों की भूमि'। कहा जाता है कि यह मुख्यतः मुंडा आदिवासियों का स्थान है। मुंडा भाषा में बीर का मतलब जंगल होता है और कुछ के अनुसार आदिवासी अपने मुखिया को बीर के नाम से बुलाते थे।

पूरा बोलपुर पौष मेला के उत्सव में मग्न था। ट्रेन में लोगों का उत्साह देखा जा सकता था। पौष मेला की शुरुआत देवेंद्रनाथ ठाकुर (रवींद्रनाथ ठाकुर के पिता) ने ब्रह्म समाज में भाग लेने पर आरम्भ की थी। पौष महीने के सातवें दिन से पौष मेला प्रारंभ होता है। देखने के लिए बहुत कुछ था, लेकिन हमारे पास जितना समय था, हमने उसमें कुछ मुख्य स्थान ही देखे।

पहले दिन हम थके हुए थे, इसलिए कहीं नहीं गए। दूसरे दिन हम कंकालीतोला मंदिर गए, जो एक शक्तिपीठ है। वैसे तो बीरभूम में 5 शक्तिपीठ हैं, पर यह हमारे रहने के स्थान के समीप था। मंदिर को लाल और सफ़ेद रंगों से रंगा गया था। कम भीड़ और शांत वातावरण था। इसके पास एक शिव मंदिर था। हम थक गए थे और हमने निर्णय लिया कि उस दिन थोड़ा विश्राम कर अगले दिन अच्छी तरह से शांति निकेतन घूमेंगे।

अगले दिन सुबह हम शांति निकेतन घूमने निकले। शांति निकेतन को 'विश्व भारती विश्वविद्यालय' के नाम से भी जाना जाता है। जब हम वहाँ पहुँचे तब हमने पाया कि यह पर्यटकों के लिए शाम 4:00 बजे से खुलता है, क्योंकि उस समय तक कक्षाएँ चलती हैं। इसलिए हमने 4:00 बजे के बाद वापस आने का फ़ैसला किया और तब तक हम अन्य जगहों को देख लेंगे। चूँकि बोलपुर जंगलों से घिरा हुआ है। इस क्षेत्र में साल के पेड़ों की अधिकता है। बड़े-बड़े साल के पेड़ और उसमें असंख्य सालिक (तिलियर) पक्षियों वाले 'सोनारझुरी' जंगल को देखना एक अद्भुत अनुभव था। हमने अपनी कार सड़क के किनारे खड़ी की और इस जंगल में काफ़ी देर तक टहलते रहे। जंगल में घूमने का अपना एक अलग ही मज़ा है।

शाम 4:00 बजे, हम दो रिक्शा शांति निकेतन देखने के लिए भाड़े पर लेते हैं। शांति निकेतन जाते समय मुझे पहली बार संथाल आदिवासियों के बारे में पता चला। हमारी 15वीं राष्ट्रपति (श्रीमती द्रोपदी मुर्मू) भी संथाली हैं। दोनों रिक्शा चालक संथाली थे। शांति निकेतन रवींद्रनाथ ठाकुर का सपना था। इस विश्वविद्यालय को इसलिए खोला गया ताकि छात्र बंद कमरे में न रहकर खुले आसमान के नीचे प्रकृति के साथ पढ़ाई का आनंद उठा सकें। हमने पेड़ों के नीचे कई बेंच देखे, जहाँ छात्र बैठकर पढ़ते हैं। पहले केवल कला या भाषा से जुड़े विषय पढ़ाए जाते थे, लेकिन अब नये विषय भी पढ़ाए जाते हैं, जिस कारण बाहर पढ़ना संभव नहीं हो रहा है। इस विश्वविद्यालय के परिसर में रवींद्रनाथ ठाकुर जी का घर भी है। घर में रवींद्रनाथ के जीवन के हर पड़ाव में उपयोग की हुईं वस्तुएँ संग्रहित हैं। यह संग्रहालय उनके जीवन का प्रतिबिंब माना जा सकता है। एक खास चीज़ जो हम देखना चाहते थे; वह थी नोबेल पुरस्कार। यह न केवल भारत का बल्कि एशिया महाद्वीप का पहला नोबेल पुरस्कार है। 1913 में पहली बार यह पुरस्कार यूरोपीय और अमेरिकी के अलावा किसी और देश के नागरिक को मिला था। 1907 में अमेरिका ने पहला नोबेल पुरस्कार जीता था, जिसके सिर्फ़ 4 साल हुए थे। हालाँकि, मूल पुरस्कार 2004 में चोरी हो गया था और उसकी जगह एक नकली नोबेल दिया गया था। वैसे तो जिस कमरे में नोबेल पुरस्कार रखा गया था वह साफ़-सुथरा था, लेकिन ज़्यादातर अंधेरा था। प्रकाश की हल्की-सी आभा थी। नोबेल पुरस्कार को विशेष आकर्षण के रूप में न दिखाकर रवींद्रनाथ के जीवन की आम वस्तुओं के साथ रख दिया गया था। आशा करता हूँ कि आज वहाँ का दृश्य अलग ही होगा। मैं फिर कहूँगा कि हम (मैं और मेरे परिवार के सदस्य) नोबेल पुरस्कार की दयनीय स्थिति को देखकर खुश नहीं थे। यहाँ से हम शांति निकेतन के आसपास फ़ैकल्टी क्वार्टर, छात्र निवास देखने गए। इसके अलावा एक बरगद का पेड़ देखा, जिसके नीचे कविगुरु ने कई कविताओं की रचना की।

शांति निकेतन को देखते-देखते लगभग 7:00 बज चुके थे और भूख भी लग रही थी। निकलते समय हल्की ठंड तो थी, पर बाद में 'सोनारझूरी' जंगल में घूमते समय गर्मी के कारण पसीने छूटने लग गए थे। हमने अपने जैकेट और स्वेटर उतार दिए, लेकिन जैसे-जैसे सूरज ढलने लगा, ठंड बढ़ती गई और हमारे पेट में चूहे भी दौड़ रहे थे। बाहर सर्दी की ठंड और अंदर भूख की ताप है।

हम एक रेस्टोरेंट में रुके और यहीं पर खाने का फ़ैसला किया। गरमा-गरम भोजन और साथ में 'धानी मिर्च', पूरे शरीर में गर्मी की अनुभूति होने लगी थी। ऐसा लगा जैसे कि कभी लगी ही नहीं। हम खाकर वापस रिक्शा में बैठते हैं और होटल की ओर चल पड़ते हैं। होटल वहाँ से काफ़ी दूर था और इस बात का पता शायद ही हमें था। उस समय बाहर का तापमान 5 डिग्री था और ऐसे में मैंने केवल जीन्स पैंट, समान्य-सी शर्ट और जैकेट पहन रखा था। जैकेट के कारण शरीर तो बचा था, लेकिन जीन्स कब तक ठंड को रोकेगी। सिर और गर्दन पर कुछ भी नहीं था। चारों तरफ़ अंधेरा जंगल और कोहरा, जो धीरे-धीरे बढ़ रहा था। ऐसा लग रहा था मानो कोहरा जंगल को अपने में समाहित कर रहा हो। ठंडी हवा कान और गले को ऐसे छू रही थी, जैसे कोई उन जगहों को धारदार चाकू से बार-बार रगड़ रहा हो। कुछ देर बाद माँ ने मुझे एक रूमाल दिया, जिसे मैंने अपनी गर्दन पर लपेट लिया। घर के सभी सदस्यों का यही हाल था। ऐसा लग रहा था कि होटल का रास्ता कभी खत्म ही नहीं होगा।

होटल पहुँचने के बाद, हमने रिक्शा चालकों का भुगतान कर, रिसेप्शन से 5 कम्बल मँगवाए। कुछ ही देर बाद हमें कम्बल दे दिए गए। सभी लोग कंबल ओढ़कर सो गए। ठंड और थकान के कारण मैं जल्दी सो गया, लेकिन नींद में भी ठंड से ठिठुरने का आभास मुझे हो रहा था। यह ठंड का अनुभव, बाद में गुजरात और स्वीडन की सैर के समय काम आया। बोलपुर में यातायात के लिए अधिकांश साइकिल रिक्शा चलते हैं। मेरे अनुसार साइकिल रिक्शा की जगह अगर हम ऑटो रिक्शा में बैठे होते, तो इतनी ठंड न लगती। अगले दिन सुबह उठकर, हम सभी ने गर्म चाय पी, हालाँकि मुझे चाय पीना पसंद नहीं है। शरीर ने ठिठुरना बंद कर दिया था, लेकिन रात की घटना सबको याद थी। सर्दी हमारे उत्साह को कम नहीं कर सकी और हम फिर से तैयार होकर बोलपुर की यात्रा के लिए निकल पड़े।

ronitganguly468@gmail.com

उत्तराखंड की वन वीथियों से

डॉ. विजया सती
नैनीताल, भारत

पहाड़ विस्थापन, पलायन - इन शब्दों से मिलती रही हूँ। माँ और पिता की जन्मभूमि पहाड़ से हम भी तो बिछुड़े ही रहे! पिता गांधी जी के आन्दोलन का हिस्सा बनकर पहाड़ से दूर हुए, फिर दिल्ली बस गए और इस तरह हम हुए जन्मजात दिल्लीवासी!

बचपन की अधभूली स्मृतियों को छोड़ भी दें, तो होश संभालने के बाद हमने पहाड़ से प्यार करना शुरू किया। ये वे रास्ते थे, जहाँ से आते-जाते कभी थकान नहीं होती है! मन कहता - काश ! यह यात्रा न थमे! पहाड़ की बोली से बचपन से जुड़े रहे - घर में खूब सुनी, बोलने में शरमाते रहे।

फिर ज़िन्दगी ने करवट बदली। पहाड़ी रास्ते, उनके बीच पड़ने वाले नदी-नाले, पेड़-जंगल, तारों भरा आकाश, पंछी-हिरण बहुत पास आ गए। एक दिन तय हुआ इस परिवेश में अच्छी तरह घूमना। तो शुरू हुई पहाड़ी यात्रा। कुमाऊँ का प्रवेश द्वार कही जाने वाली ग्रीन सिटी हल्द्वानी। पहाड़ की छाँह में ये वह नगरी है, जहाँ ठीक-ठीक ठंडी हवा है, हरियाली है, पंछियों का कलरव है। हल्द्वानी शहर से कोई पच्चीस किलोमीटर दूर एक छोटा-सा कस्बा है, जो अब अंगड़ाई लेकर जाग रहा है। कालाढूंगी नाम है कस्बे का! यात्रा का पहला पड़ाव यही था।

लोकप्रिय पर्यटन नगरी नैनीताल से भी कालाढूंगी की दूरी तीस किलोमीटर ही है। लोक भाषा में 'ढुंग' का अर्थ है 'पत्थर' इस तरह अर्थ बना - काला पत्थर! इस कालाढूंगी में खेती की उपजाऊ ज़मीन है। आम-लीची के बगीचे हैं, कटहल के भरपूर पेड़ हैं। आसपास घने जंगल भी हैं, इसलिए सड़क किनारे हिरण का परिवार दिख जाए, बारहसिंघा झाड़ियों के बीच चित्रवत खड़ा मिल जाए या आपको देखते ही सड़क के किनारे से ये अबोध प्राणी झट से झाड़ी में दुबक जाएँ - ऐसा हो सकता है।

कालाढूंगी बाज़ार अब दिन-पर-दिन सँवरता जा रहा है। बाज़ार से ज़रा हटकर, खेत-खलिहानों की विस्तृत दुनिया है, जहाँ आम के बड़े-बड़े बगीचों में कोयल की कूक है, लीची के बागों में रंग और खुशबू है। कटहल से लदे पेड़ों के आसपास गूल (छोटी नहर) में बहता पानी है।

हमें इसी कालाढूंगी के जिम कॉर्बेट पार्क में जाना था। कालाढूंगी का एक नाम कॉर्बेट नगरी भी है। यहाँ रहते थे जिम कॉर्बेट - जो प्रसिद्ध शिकारी भी थे, वन्य जीवन के संरक्षक भी और साहित्यकार के रूप में भी वे प्रसिद्ध हुए। शिकारी और संरक्षक - एक साथ होना कैसे संभव हो सकता है ? दरअसल जिम कॉर्बेट ने उन आदमखोर बाघ और तेंदुओं का शिकार किया, जो मनुष्य को जीने नहीं देते थे और उन निरीह जंतुओं के संरक्षण की पहल की, जो शौक और स्वाद के चलते मारे जाते थे।

वर्तमान जीवन की आपाधापी और भागमभाग में हम कितना कुछ खो रहे हैं, इसका जीता-जागता उदाहरण जिम कॉर्बेट का स्मारक ही है। जिम कॉर्बेट नेशनल पार्क की सफ़ारी के वैभव-गौरव में सब भूल जाते हैं कि इसी रास्ते के आस-पास जिम कॉर्बेट फ़ॉल है और कालाढूंगी में छोटी हल्द्वानी नाम का वह गाँव भी, जिसमें जिम कॉर्बेट, भोले ग्रामीणों के साथी बनकर रहे, यहीं है सर्दी के मौसम का जिम कॉर्बेट का निवास, उनका बंगला जो अब उनकी स्मृति में संग्रहालय बन गया है।

आज का विख्यात जिम कॉर्बेट नेशनल पार्क पहले जिनके नाम पर 'हैली पार्क' कहलाता था, वे सर मैल्कम हैली तत्कालीन संयुक्त प्रांत के गवर्नर थे। 1954-55 में यह सुरक्षित क्षेत्र रामगंगा नेशनल पार्क कहलाए जाने लगा। लेकिन 1957 में इस विशाल अभयारण्य को जो नया नाम दिया गया वह जिम कॉर्बेट के प्रति सम्मान के कारण उनकी स्मृति में दिया गया - 'जिम कॉर्बेट नेशनल पार्क'। इस बड़े पार्क में चार मुख्य प्रवेश द्वार हैं - 'झिरना', 'धनगडी', 'आमडंडा' और 'दुर्गादेवी'। यहाँ तमाम पशु-पक्षियों का मुक्त आवास है।

1930 से ही जिम कॉर्बेट इस परिवेश से जुड़ गए थे।

'Man eaters of kumaon' किताब के लेखक जिम कॉर्बेट का पूरा नाम जेम्स एडवर्ड कॉर्बेट था। गढ़वाल और कुमाऊँ मंडल में वे कॉर्बेट सैप यानी साहब हैं।

आयरिश ब्रिटिश मूल के जिम कॉर्बेट का पैतृक घर 'गर्नी हाउस' नैनीताल में था, किन्तु सर्दियाँ कालाढूंगी में बीतती। बचपन में कालाढूंगी के जंगलों-वन-वीथियों में घूमते हुए जिम कॉर्बेट के मन में प्रकृति प्रेम, वनस्पतियों और जीव-जंतु-पंछियों से प्यार की भावना पनपी और निरंतर गहरी होती चली गई। वनों और जीव-जन्तुओं के संरक्षण में उनकी अभिरुचि इसी पृष्ठभूमि की देन कही जा सकती है। कॉर्बेट न केवल बन्दूक चलाना जानते थे, वे लकड़ी पर रंदा चला लेते थे और एक अच्छे छायाकार भी थे, प्राकृतिक दृश्यों और शेर-बाघों के स्वाभाविक चित्र लेने में माहिर!

यह सब जानकारी कालाढूंगी के जिम कॉर्बेट संग्रहालय में सप्रमाण मौजूद है। इलाके के निरीह जनों की पुकार पर, कैसे भले शिकारी कॉर्बेट अकेले पैदल आदमखोर बाघों के शिकार को निकल पड़ते, यह संग्रहालय के चित्र बताते हैं। बाघों की घटती आबादी को लेकर चिंता करने वाले कॉर्बेट की किताबें बताती हैं कि उन्होंने बाघ और चीतों के आदमखोर हो जाने के कारणों पर विचार व्यक्त किए। संग्रहालय में उनकी पुस्तकों की जानकारी है, जिनमें प्रमुख हैं - 'माई इंडिया', 'मैंन ईटिंग लेपर्ड ऑफ़ रुद्रप्रयाग', 'जंगल लॉ', 'टेम्पल टाइगर', 'जंगल स्टोरीज़'। अपनी पुस्तक 'माई इंडिया' के समर्पण में वे लिखते हैं - "मेरे दोस्त, भारत के ये गरीब लोग जो वास्तव में गरीब हैं, जिनके बीच मैं रहा और जिन्हें मैं प्यार करता हूँ, मैं विनम्रता से यह पुस्तक भारत के अपने गरीब दोस्तों को समर्पित करता हूँ।"

संग्रहालय के पास ही छोटी हल्द्वानी नाम का वह गाँव है, जहाँ के भोले-भाले ग्रामीणों के बीच जिम कॉर्बेट ने बहुत समय बिताया। उन्होंने इस गाँव को अपना ही लिया था। यहीं मोती हाउस नाम का वह बंगला है, जिसे कॉर्बेट ने अपने मित्र मोती सिंह के लिए बनवाया था। मोती हाउस मित्रों से मिलने का स्थान था और पास ही कॉर्बेट वॉल भी है, सात किलोमीटर से अधिक लम्बी वह दीवार जिसे 1925 में जंगली जानवरों से फ़सल को बचाने के लिए गाँव के चारों ओर बनाया गया था।

यात्रा के इस प्रथम उत्थान में हमें मिले - प्रकृति और वन्यजीव प्रेमी, मानव प्रेमी और लोकप्रिय साहित्यकार जिम कॉर्बेट अपनी अमिट स्मृतियों के साथ।

कालाढूंगी से आगे हमारा अगला पड़ाव था - गर्जिया मंदिर।

जैसे पहाड़ में बादल हैं, हवा है, हरियाली है, वैसे ही असंख्य मंदिर हैं। बहुत पारंपरिक रूप से, लगभग हर घर में मंदिर है, नियम से पूजा है, व्रत हैं, वर्ष भर बहुत-से अनुष्ठान होते रहते हैं! यहाँ द्वाराहाट के दूनागिरी मंदिर की प्रसिद्ध कहानी है, जागेश्वर धाम का बखान है, बागेश्वर में विराजे बागनाथ का गुणगान, नैनीताल की नंदा देवी के मेले के साथ-साथ हनुमान गढ़ी की कथा का किस्सा है। गंगोलीहाट में पाताल भुवनेश्वर और हाटकालिका के विख्यात वैभव की चर्चा है, चम्पावत, अल्मोड़ा-घोड़ाखाल के ग्वेल देवता के मंदिरों के लिए श्रद्धा-भाव है। स्टीव जॉब और मार्क ज़ुकरबर्ग के आगमन की कहानी समेटे नीमकरोली महाराज की आभा से मंडित कैंची धाम का मोहक परिवेश है।

कॉर्बेट पार्क की राह में रामनगर से आगे ढिकुली गाँव के प्रसिद्ध गर्जिया मंदिर की पवित्र संकरी सीढ़ियाँ, पथरीला परिवेश और बहती नदी का वैभव दर्शनीय है! मिट्टी के छोटे से टीले पर बना यह मंदिर दूर-दूर से सैलानियों को अपने आँगन में खींच लाता है। कोसी नदी का जल प्रवाह कितना भी बढ़ जाए, मिट्टी का टीला यथावत टिका रहता है। गर्जिया – यानी गिरिजा, देवी दुर्गा मंदिर। मंदिर ने इस कविता के अनुभव को धूमिल किया।

सब द्वारों पर भीड़ मची है, कैसे भीतर जाऊँ मैं?
द्वारपाल भय दिखलाते हैं, कुछ ही जन जा पाते हैं,
शेष सभी धक्के खाते हैं, क्यों कर घुसने पाऊँ मैं?
मंदिर की सीढ़ियों पर तो सभी का सहज प्रवेश था।

पद्मश्री यशोधर मठपाल और उनका लोक कला संग्रहालय

पहाड़ के दूसरे छोर पर भीमताल से हमारी अगली यात्रा आरम्भ हुई। मुख्य सड़क से ज़रा ढलान वाले रास्ते पर पैदल

उतरे तो, एक शांत-एकांत घर मिला, जिसके मुख्य द्वार पर डोर से बँधी छोटी-सी घंटी लटक रही थी। घंटी की रुनझुन सुनकर द्वार खुला। हमारे सामने थे पद्मश्री यशोधर मठपाल!

इसी समय हरी-भरी सब्ज़ियों से भरी एक छोटी-सी टोकरी सिर पर लिए, नीचे से लकड़ी की सीढ़ी चढ़ते हुए जो भीतर आईं, वे ही श्रीमती यशोधर मठपाल थीं। यह भीमताल में 'लोक कला संग्रहालय' का परिसर था, जो यशोधर मठपाल जी की देन है। चित्रकार हमें अपने कला जगत के साथ उस संग्रहालय में ले गए, जहाँ सब कुछ उन्हीं का सँवारा हुआ खज़ाना था - पुराने सिक्के, बर्तन, आभूषण, नाप-तोल के उपकरण, औज़ार-हथियार, काठ के बर्तन!

सुंदरतम थे उनके कलात्मक रंग भरे कैनवस! बोलते हुए से चित्र पेड़ पर चढ़कर दरांती से लकड़ी काटती युवती का चित्र दूर बैठे दिख रहे हैं, चिलम पीते पुरुष शीर्षक था - कटु सत्य! सिर पर उपहार की गठरी रखे जंगल की राह अकेली जाती माँ शीर्षक 'भिटोली'! भिटोली कुमाऊँ अंचल में चैत्र मास में विवाहिताओं को मायके से मिलने वाली भेंट है। मांगलिक अवसर पर ऐंपण देती महिलाओं के समूह का आकर्षक चित्र था। ऐंपण कुमाऊँ की पारंपरिक लोककला है – रंगोली के समकक्ष।

कलाकार ने बताया कि अधिकांश स्त्री-चित्रों में उनकी पत्नी का ही प्रतिबिंब है। सब कुछ उन्मुक्त, उदार, खुला था कलाकार के साथ संवाद में, जिसकी स्मृति मन में आज भी ताज़ा बनी हुई है !

रामगढ़ में महादेवी स्मृति

भीमताल से आगे भुवाली के पास से जाते हुए रामगढ़ को हमने सेब के बगीचों, अरविन्द आश्रम और अपने गुरुजी के ग्रीष्मकालीन निवास के रूप में पाया। गागर के पास से होकर हम उमागढ़, मल्ला रामगढ़ में महादेवी सृजन पीठ पहुँचे। एक छोटी-सी पहाड़ी पर ऊँचे पेड़ों से घिरा-छोटा सा ठेठ पहाड़ी बंगला हिंदी की विशिष्ट कवयित्री महादेवी वर्मा का निवास था। उनके अध्ययन कक्ष की शीशे जड़ी खिड़कियाँ प्रकृति और कवयित्री के मन के बीच आड़े न आकर खुला विस्तार दर्शाती रही होंगी।

अब यह महादेवी के समय का रामगढ़ नहीं है। फिर भी रामगढ़ के नैसर्गिक सौन्दर्य के बीच महादेवी की स्मृति का बने रहना मूल्यवान है। यहाँ महादेवी साहित्य संग्रहालय है, पुस्तकालय और शोधार्थियों के लिए अध्ययन कक्ष हैं। कई बरस पहले कथाकार निर्मल वर्मा और कवि अशोक वाजपेयी द्वारा संस्था का उद्घाटन हुआ। महादेवी सृजन पीठ में कई साहित्यिक विमर्श संपन्न हुए। केवल हिंदी ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं के जाने-माने विशिष्ट साहित्यकार यहाँ आमंत्रित किए गए।

लक्ष्मी आश्रम कौसानी

रामगढ़ से बहुत आगे हमारी यात्रा का अगला पड़ाव था - कौसानी, बहुत-से विशेषणों से लदी-फंदी सुन्दर पर्यटन नगरी कौसानी - भारत का स्विट्ज़रलैंड कही जाने वाली नगरी!

जहाँ गांधी जी के आगमन की स्मृति अनासक्ति आश्रम के रूप में मौजूद है। चाय बागान हैं, हिंदी कविता के विशिष्ट हस्ताक्षर सुमित्रानंदन पंत का जन्मस्थान है। जहाँ सैलानी ट्रैकिंग का आनंद लेते हुए कुछ भूले-बिसरे मंदिरों को भी छू आते हैं। जहाँ जाने वाला हर व्यक्ति सूर्योदय और सूर्यास्त देखने के लिए आकुल-व्याकुल होता है। ऐसी कौसानी जहाँ बांज के जंगल तहस-नहस होने के बावजूद बचे हुए हैं और बुरांश (एक सदाबहार पेड़ जो उत्तराखंड का राज्य वृक्ष है) भी खिलता है। ऐसी कौसानी में संभवतः आने-जाने वालों की पहुँच से दूर अछूता रह जाता है - लक्ष्मी आश्रम कौसानी।

एक विदेशी महिला, जिन्होंने गांधी जी को सुनने और देखने के बाद युवावस्था में भारत आना तय किया, 1932 में भारत पहुँचकर भारतीय नाम अपना लिया और 1945 में गांधी जी के परामर्श से कौसानी आईं, यह आश्रम स्थापित हुआ और वे यहाँ आ बसी सरला बहन, जिनके नाम पर आश्रम पहले सरला आश्रम कहलाता था। आश्रम ने एक पिछड़े हुए क्षेत्र में, गरीब और अनाथ लड़कियों-महिलाओं की शिक्षा और स्वावलंबन के क्षेत्र में पहल की। आज भी यहाँ पढ़ने के साथ-साथ बागवानी, पशु-पालन, सिलाई-बुनाई और पाक कला की अनौपचारिक समझ देने का वातावरण

बना हुआ है। जीवन में आत्मनिर्भर होने की शिक्षा, आश्रम का मुक्त आँगन और प्रकृति का अमित वैभव कितनी अलग है; लक्ष्मी आश्रम की दुनिया कौसानी में इस दुनिया के होने का कुछ अर्थ है!

मुनस्यारी

यात्रा क्रम में हम पहुँचे सुदूर मुनस्यारी। कौसानी पारकर बैजनाथ से चोकोरी और बिरथी जलप्रपात के सौन्दर्य को निहारते भरपूर ऊँचाई पर पहुँचे मुनस्यारी, जिसे जानना एक अनूठा अनुभव बना। नंदा देवी मंदिर के खुले आँगन से पूरी घाटी में दूर-दूर तक फैले गाँव-घर-इलाके दिखे। दूर बहती गोरी नदी दिखी। मुनस्यारी से नीचे उतार पर यही गोरी नदी काली नदी बनकर साथ हो लेती है, जिसके एक तट पर है नेपाल और दूसरे पर भारत। फिर एक ही छत के नीचे सारी स्थानीय वस्तुओं की खरीदारी करते हुए आखिर हम आए - ट्राइबल हैरिटेज म्यूज़ियम, मुनस्यारी में। एक अकेला व्यक्ति अपने प्रयास को यह रूप दे सकता है, यानी चाहे तो क्या नहीं कर सकता इन्सान !

यहाँ के निवासी डॉ शेर सिंह पांगती जी के प्रयासों से यह संग्रहालय बना है।

वहाँ के समाज के जीवन के रहन-सहन, पहनावे, आभूषण, खान-पान, उपयोगी वस्तुओं को दर्शाता जीवंत घर-आँगन ही है यह संग्रहालय, जहाँ नक्काशीदार दरवाज़े-चौखटें संजोए गए हैं, परंपरागत मेहराबदार खिड़कियाँ जड़ी हैं, जिनके पास बैठकर जी भरकर बाहर का वैभव निहार लें ! संग्रहालय में एक बिक्री काउंटर भी है। बहुत ही रोचक आभूषणों और वस्त्रों का प्रदर्शन करतीं माटी की मूरतों पर, लोकभाषा में दर्ज पंक्तियाँ इस प्रकार हैं – "मैं पार ठसक झन लाग्या हाँ" अर्थात् "please don't touch me!"

पर्यटन विभाग के दिलकश रंगीन पोस्टर जैसा नहीं है सारा पहाड़, लेकिन उत्तराखंड की वनवीथियों में घने जंगल के बीच बसा है अद्वैत आश्रम-मायावती, श्यामलाताल, देवीधुरा की बग्वाल, जौलजीवी, अस्कोट, डीडीहाट, पिथौरागढ़, चम्पावत, पुन्यागिरी यात्राओं का एक पूरा संसार!

vijayasati@gmailcom

महाकवि की खोज में

सुश्री अनुपमा ऋतु
मथुरा, भारत

रात गहरा चुकी है। अंधेरे में सिर्फ़ ट्रेन के पहियों की आवाज़ सुनाई पड़ रही है। ये पहिए सवेरे तक वहाँ जा पहुँचेंगे जहाँ जीवन और मृत्यु दोनों के गीत को गुनगुनाती हुई गंगा बहती है। खिड़की के पार जाने घोर अंधेरे में कौन दृश्य पीछे छूट रहा है। पर क्या सचमुच कुछ पीछे छूटता है? देखा जाए, तो कुछ भी पीछे नहीं छूटता, हमारी आशाएँ और चिंताएँ, हमारे स्वप्न और संघर्ष, हमारा कर्म और आनंद... हमारी हर गाथा जीवन के इन्हीं रास्तों-पगडंडियों पर अशेष छूट जाती है।

कैसी अजीब बात है, अभी ट्रेन चल रही थी और प्लेटफ़ॉर्म पीछे छूट रहा था और अब ट्रेन पीछे छूट चुकी है और प्लेटफ़ार्म मेरे साथ-साथ चल पड़ा है! यह काशी है। शिव जी की नगरी। सीढ़ियों और संन्यासियों की नगरी। एक अलमस्त जुलाहे का बनारस। एक महाकवि का गीत। यहाँ गंगा अकेली नहीं बहती, उसके साथ यह पूरा शहर बहता है। सामने कबीर घाट है। उगती हुई भोर है। वैराग्य और जीवन एक साथ मुझे खींच रहे हैं। मणिकर्णिका घाट पर लपटें-ही-लपटें हैं। अंतिम क्रिया में आए लोग चाय के ठेलों पर टूट रहे हैं। मटियली लहरों पर नीली नावें डोल रही हैं। एक शिशु माँ की गोद में मुस्काए जा रहा है। यह मुस्कान ही जीवन की झलक है। यह मुस्कान ही शिव तत्त्व का प्रतिबिम्ब है। लेकिन मैं यहाँ शिव जी की नहीं, प्रसाद की खोज में आई हूँ।

पर प्रसाद हैं कहाँ? हिंदी साहित्य के इतिहास में? विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में? हमारी स्मृति और विस्मृति की क्षितिज रेखा पर या उस संकरी तंग गली में जहाँ केवड़ा, केसर, खस, गुलाब और मोतिया का कंपाउंड बनाते हुए वे

दर्शन और सौंदर्य का प्रगाढ़ रस छलकाते रहे?

गौदोलिया से चौक की ओर जाते हुए गंगा किनारे की एकांतिकता पीछे छूटने लगी। कितनी ही दुकानों-ठिकानों पर राह पूछते-पाछते आखिर सराय गोवर्धन की वह गली मिल ही गई, जो प्रसाद की जन्म और कर्मभूमि रही। कितने ही संस्मरणों में पढ़ा था कि 'प्रसाद जी फूलों के शौकीन थे। प्रसाद जी ने बड़ी दूर-दराज़ से यहाँ तक कि बर्मा-मलाया-श्यामा और श्रीलंका से भी अनेक वृक्ष मंगवाकर अपने बगीचे में लगवाए थे। इसलिए सुंघनी साहू की गली में प्रवेश करते हुए आँखें उन्हीं वृक्षों की सघन छाया तलाश रही थीं, जिन्हें कामायनीकार ने अपने आँगन में किसी कविता या कहानी की तरह लिख दिया था। अब कैसे होंगे वे वृक्ष? पुरातनता का कैसा भव्य दर्शन होगा उनमें? हो न हो महाकवि की स्मृतिगंध सबसे अधिक वहीं ठहरी मिलेगी... कुछ कदम आगे भैंसों का बाड़ा था। दोनों ओर दीवारों पर उपले। टीन का एक बड़ा-सा दरवाज़ा। तो यही है सुंघनी साहू का घर? जयशंकर प्रसाद की सर्जनास्थली?

भीतर पुरातनता और नीरवता की मिली-जुली गंध थी। पीली मिट्टी में जाने किन-किन पेड़ों-झाड़ियों के हरे-सूखे अवशेष कीलों-खूटों की तरह गड़े थे। प्रसाद की सृजन-धरा पर इस नीरव अवसाद का भला क्या प्रयोजन हो सकता था? तभी कामायनी का एक बिंब कौंध गया। लगा जैसे किसी ने इस शंका का समाधान दे दिया हो...

"मौन! नाश! विध्वंस! अंधेरा! शून्य बना जो प्रगट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते! तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव।"

सामने शुभ्रता में लिपटी एक बुज़ुर्ग छवि दिखाई दी। गोद में शिशु। व्यक्तित्व में प्रसादीयता का आभास। वे किरनशंकर थे। जयशंकर प्रसाद के पौत्र। रत्नशंकर जी के पुत्र। परिचय होने पर वे बोले - "यहाँ बैठिए, ये हमारा पैतृक मंदिर है। कामायनी का आमुख यहीं, इसी मंदिर में लिखा गया था, कुछ और सर्ग भी यहीं लिखे गए। विशेषकर इसी खंभे के पास बैठते थे, जहाँ आप खड़ी हैं..."

मैं सायास वहाँ से थोड़ा खिसक कर बैठ गई - "मेरी तरह बहुत लोग आते होंगे उन्हें ढूँढते हुए?"

वे हँसे "महाकवि कितनों को याद हैं? पर आते हैं कोई-कोई भूले-भटके हुए आपकी तरह!"

"इस दिशा में रत्नशंकर जी ने तो काफ़ी काम किया था। बहुत योजनाएँ बनाई थीं।"

"हाँ, बहुत कुछ किया उन्होंने। बुहत कुछ करना चाहते भी रहे। कुछ लोगों को जोड़कर एक संस्था बनाई थी - 'जयशंकर प्रसाद स्मृति वातायन'। प्रसाद जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोधपरक कृतियों के प्रकाशन, उनकी रचनाओं के नाट्य रूपांतरण और उनके साहित्य के अन्य भाषाओं में अनुवाद की योजनाएँ थीं। यह भी सोचा था कि उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए प्रसाद सभागार, नाट्यशाला, संगीत प्रशिक्षण केंद्र, पुस्तकालय आदि की स्थापना की जाए... लेकिन कुछ हो नहीं पाया। एक तो पिता जी और मिश्र जी का निधन हो गया और कुछ मुकदमेबाज़ी ले डूबी।"

मैंने बात का रुख बदलते हुए कहा "अच्छा, ये बताइए कि घर में प्रसादत्व सबसे अधिक किसमें है?"

"प्रसादत्व... वो अब कहाँ रहा है? नहीं... किसी में नहीं है..."

"अच्छा, दालमंडी वाली दूकान... वह है अभी? "

''है, उसे छोटा भाई देखता है, आनंदशंकर। पास ही है, पर क्या करेंगी जाकर...''

मैंने मन-ही-मन कहा - ''उन जीवन चिह्नों की तलाश, जिन्हें खोजते हुए यहाँ तक आई हूँ... ''

नारियल बाज़ार से होते हुए सुंघनी साहू की दूकान तक पहुँचना भी एक पूरी यात्रा थी। दालमंडी चमकीली रंगीन नदी की तरह उफ़न रही थी। तभी बोर्ड नज़र आया - 'शिवरत्नसाहू देवीप्रसाद साहू वितरक चित्राधार एजेंसी... 'सामने तीन पीढ़ियों के चित्र लगे थे। दूकान नए रंगरूप में थी, पर खाली शेल्फ़ कारोबार के हालात बयान कर रहे थे। एक चित्र कल्पना में उभरने लगा। कभी इसी दूकान में वे अपने बड़े तकिये के सहारे बैठते होंगे। कैसा दृश्य होता होगा? भंग का शरबत, कुल्हड़ की चाय, पान की गिलौरियों के बीच केवल साहित्य ही नहीं, आगम से निगम तक, गोचर से अगोचर तक, व्यक्त से अव्यक्त तक जीव, जड़ और चेतन... कितने रहस्यों पर चर्चाएँ होती होंगी। पं. विनोदशंकर व्यास,

रायकृष्णदास, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, प्रेमचंद, निराला और मैथिलीशरण गुप्त जैसे साहित्य मनीषियों का जमावड़ा कैसा होता था, लेकिन आज ये गली, ये गद्दी, ये परिवेश अपनी वह अतीतगंध न जाने किन परतों में छिपाए बैठा था। सामने अगर वे तीन चित्र न हों, तो अतीत की कोई सिलवट खोजे न मिले। दूकान पर एक किशोरवय लड़का था। पूछने पर उसने कहा "आनंदशंकर तो मेरे पिता जी हैं, अभी दो-तीन घंटे बाद दूकान पर आएँगे। ऐसा कीजिए आप कल घर आ जाइए। पिताजी से मिलने..."

"आपका क्या नाम है? "

"मैं राजशंकर हूँ।"

"पढ़ते हैं? "

"नहीं, मैं नहीं पढ़ता। मेरी रुचि नहीं है पढ़ाई में।"

"प्रसाद जी का कुछ पढ़ा है? "

"हाँ, कामायनी पढ़ी है, पर कुछ और नहीं पढ़ा।"

उससे बात करते-करते दृष्टि दूकान के सामने जड़ी दो जर्जर खिड़कियों पर जा ठहरी। क्या ये वही खिड़कियाँ हैं, जिनसे शशिमुख पर घूंघट डाले वह झाँक लिया करती थी हर रोज़? और जिसके अभाव ने 'आँसू' को जन्म दे डाला था? प्रसाद के आँसू को...। लेकिन इस सत्य या मिथक का जवाब देने वाली सारी खिड़कियाँ तो अब बंद थीं...

जिज्ञासाएँ अभी और भी थीं कि किस हाल में होगी नागरीप्रचारणी सभा, वह संस्था जिसकी नींव उन्होंने स्कूल के दो साथियों के साथ मिलकर रखी थी? कैसा होगा दुर्लभ पांडुलिपियों, साहित्येतिहास के विलक्षण दस्तावेज़ों और ग्रंथ निधियों को संरक्षण देने वाला आर्यभाषा पुस्तकालय? नागरीप्रचारणी सभा में पसरा ठंडा सन्नाटा इन सारी जिज्ञासाओं के जवाब दे रहा था। हिंदी के प्रसार और निर्माण में अनिवार्य भूमिका निभाने वाली एक सदी से भी अधिक पुरानी यह संस्था जर्जरहाल थी। सभी दरवाज़ों पर ताले थे। लिहाज़ा अंदर पढ़ने वालों के लिए रखी सभी कुर्सियाँ खाली थीं। ऊँघते हुए कर्मचारियों ने कहा कि पांडुलिपि देखने के लिए पर्मिशन लेनी होगी। दो-चार दिन लग जाएँगे।

सांझ घिरने को थी। पांडुलिपियों को देखने की चाह छोड़ मैं जाग्रत करुणा के साक्षी सारनाथ की ओर चल पड़ी। जहाँ बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था और जहाँ प्राचीन ऋषिपत्तन के मृगदाव में मूलगंध कुटी विहार की प्रतिष्ठा के अवसर पर प्रसाद जी ने वरुणा की शांत कछार को संबोधित किया था...

"अरी वरुणा की शांत कछार, तपस्वी के विराग की प्यार, सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार..."

चारों ओर की शांति और एकाकीपन में भी ढाई हज़ार साल पहले का वर्तमान जीवंत होकर धड़क रहा था। कालचक्र की धुरी से मुक्त होना और किसे कहेंगे? हर तरफ़ अतीत के कोलाज... मृत नहीं, साँस लेते हुए... सम्राट, धामेख स्तूप, चौखंडी स्तूप और संग्रहालय... एक सम्राट और एक तपस्वी के विराग की गाथा को ढूँढते हुए कहाँ-कहाँ से चले आए हैं लोग? मंदिर के बाहर ठेलों पर भी कितनी ही मुद्राओं में सजे बैठे थे बुद्ध। यह स्मृत देर तक दृष्टि पर अंकित रह गया।

सारनाथ से लौटकर बनारस बहुत बोलता हुआ लगा, लेकिन यह भी लगा कि शांति और स्वर के बीच अंतत: दोनों का साध्य बोध ही तो है। सारनाथ के बुद्धत्व और काशी के शिवत्व में फ़र्क कहाँ है? एक यदि जीवन के दुख में सत्य का संदेश बाँच रहा है, तो दूसरा मृत्यु की भयावहता में निस्पृहता के सूत्र बाँट रहा है।

अगले रोज़ प्रसाद जी के सबसे छोटे पौत्र आनंदशंकर के शब्दों में एक वेदना पूरी विकलता से बहती दिखी। घर के बाहर एक लंबे-चौड़े आँगन को दिखाते हुए वे बोले - "यह ज़मीन जो आप देख रही हैं, वहाँ प्रसाद स्मारक बनाने की परिकल्पना थी पिता जी की, पर कोई सहयोग नहीं मिल पाया उन्हें। फिर ढेरों कागज़ात समेट लाए, बोले, देखिए, ये पिता जी की लिखी एक इच्छा है, जो अभी तक पूरी नहीं हुई है। वे इस कमरे में एक शिलापट लगवाना चाहते थे, जिससे यह इंगित हो सके कि कामायनी का रचनारंभ इस स्थान से हुआ। वे चाहते थे कि उस शिलापट के नीचे कामायनी की पांडुलिपि भी रखी जाए, ताकि साहित्यकार और जिज्ञासु शोधार्थी उसे देख सकें। ऐसे ही उनकी बहुत-सी योजनाएँ थीं। बहुत से काम थे, जो पारिवारिक और परिस्थितिजन्य कारणों से अधूरे रह गए। हम छह भाई और चार बहनें हैं। एक मध्यमवर्गीय परिवार में दस संतानों के पालन-पोषण का निर्वाह करना

कितना कठिन होता है, आप स्वयं कल्पना कर सकती हैं। मतभेद और मनभेद के चलते परिवार भी उनका साथ नहीं दे पाया। वर्ष 1989 में प्रसाद जी की जन्मशती का आयोजन हुआ था। उसमें डॉ. शंकरदयाल शर्मा भी आए थे। सोचा था कि अब कुछ हो पाएगा, लेकिन... देखते-देखते पूरे 25 साल निकल गए और अब यह संपत्ति विवाद में घिरी है।"

"विवाद?"

"हाँ, असल में यहाँ एक विग्रह चल रहा है। एक तरफ़ संपत्ति का लोभ है, दूसरी तरफ़ स्मृतियों का। मेरा व अन्य भाइयों का मात्र इतना भेद है कि मैं इसे अक्षुण्ण रखना चाहता हूँ और वे आज के भौतिक युग के अनुरूप इससे कुछ अर्थोपार्जन करना चाहते हैं। उनके विचारों से मैं सर्वथा असहमत नहीं हूँ, लेकिन पूरी तरह सहमत भी नहीं हो पा रहा हूँ। कामायनी में उन्होंने लिखा है कि सर्प एक समय आने पर केंचुल छोड़ देता है। आगे के जीवन के लिए जैसे सर्प को केंचुल त्यागना होता है, वैसे ही हमें भी आगे बढ़ने के लिए पुरानेपन को छोड़ना होता है। अब इसे मेरे भीतर की दासता कहिए या पुरातनता, मैं उस केंचुल को छोड़ नहीं पा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि ये सब यथावत रहे। उनकी स्मृति में स्मारक बने। या चाहे तो भारत सरकार इस संपत्ति को ले ले, लेकिन उनकी स्मृतियों को कैसे भी सहेज लिया जाए।"

प्रसाद आवास से लौटते हुए कामायनी फिर हमारे साथ संज्ञा के रूप में उपस्थित थी। बनारस का कंट्रास्ट पूरे कंठ से बोल रहा था। एक तरफ़ दुनिया के तमाम रंग समेटीं संकरी गलियाँ और दूसरी तरफ़ काठ-ही-काठ। लकड़ियाँ ही लकड़ियाँ... महसूस हुआ कि हमारे होने का अर्थ जीवन की निर्धूम अग्नि ही नहीं, मृत्यु का ओजस्वी ताप भी है। कितनी ही चिताएँ एक साथ जल रही थीं। हर दो मिनट पर कोई-न-कोई अंतिम यात्रा के लिए चला आ रहा था। लेकिन उसे देखकर यहाँ कोई ठहरता नहीं... कोई नहीं रुकता... मथुरा और काशी में एक सूक्ष्म-सा भेद यही दिखा कि वह मृत्यु को देखकर ठिठकना सिखाती है। इस भाव से कि वह जो जा रहा है, यह उसकी अंतिम यात्रा है और जीवन ने उसे चाहे जितना ही पीछे क्यों न धकेला हो, कम-से-कम एक बार तो, आखिरी बार तो उसे आगे जाने दिया जाए... जबकि काशी मृत्यु को देखकर नहीं रुकती... वह बहती जाती है... सतत, अनवरत, अविराम... और यह बहाव ही काशी का संदेश है और काशी के उस महाकवि का भी जो इसकी सुधियों में लीन कहीं खोया हुआ है...

anupamartu@gmail.com

मॉरीशस : अतीत की ओर खींचती एक यात्रा

श्री अशोक ओझा
न्यू जर्सी, अमेरिका

हिन्द महासागर में स्थित द्वीप मॉरीशस की यात्रा मेरे जैसे भारतीय मूल के वासी के लिए अतीत में झाँकने जैसी है। मैंने एक पर्यटक की भाँति मॉरीशस-यात्रा की योजना बनाई थी। सर शिवसागर रामगुलाम अंतर्राष्ट्रीय विमान स्थल पर वीज़ा की मुहर लगते समय पर्यटक होने का एहसास उस समय तक था, जब तक कि महिला वीज़ा अधिकारी ने वापसी की टिकट और तारीख पूछा। वीज़ा अधिकारी भारतीय लग रही थी, अपने आप को उससे पूछने के लिए रोक नहीं पाया कि "आपके पूर्वज कहाँ से आये थे?" पासपोर्ट पर मुहर लगाने के बाद जब नज़रें मिलीं, महिला अधिकारी ने बताया- "मेरे पूर्वज दक्षिण भारत से आये थे।" पर्यटक होने का एहसास शीघ्र ही आत्मीयता में बदल गया। विमान-स्थल से बाहर निकलते ही हर मॉरीशसवासी से पूछने की इच्छा हुई - "आपके पूर्वज कहाँ से आये थे?"

मेरा होटल विमान-स्थल से पाँच मिनट की दूरी पर था। उसकी हर मंज़िल पर खुली छत और वहाँ बैठने की जगह थी। सुबह सूरज निकलने से पहले हम छत पर बैठ गए सूरज के आगमन की प्रतीक्षा में। क्षितिज पर धुंधलका छँटा, आसमान गुलाबी-सा सुनहरा होने लगा, तभी बादल छा गए। सूरज नहीं दिखा। कुछ मिनटों बाद क्षितिज की लालिमा के पीछे से सूर्योदय की पहली किरण मॉरीशस के समतल मैदान पर पसर गयी। छत की चारों तरफ़ उजाला छा गया

था। मैंने देखा मॉरीशस की विशाल, खुली धरती दूर-दूर तक खुले मैदान के बीच पतली सड़क को रेखांकित करती इक्की-दुक्की कारें। लेकिन समंदर कहाँ है? यह स्वाभाविक प्रश्न नाश्ते के टेबल पर सामने खड़ा था।

"दस बजे होटल की मिनी बस आपको निकटतम गाँव में ले जाएगी, जहाँ हमारा 'बीच हाउस' है। वहीं समंदर की हल्की लहरों का आनंद लेते हुए स्नान कर सकते हैं। 'बीच हाउस' में चाय आदि की व्यवस्था भी है। शाम तक वहाँ आप समंदर का आनंद लें, फिर वापसी की बस से होटल लौट आएँ" होटल कर्मचारी ने, जिनका नाम वेद था, सुझाव दिया। वेद जी के सुझावों का पालन करते हुए हम ठीक दस बजे होटल के मुख्य द्वार पर आ गए, जहाँ मिनी बस हमारा इंतज़ार कर रही थी। लगभग दस मिनट तक हमारी बस विशाल नीले समुद्र के साथ-साथ चल रही थी। यह सफ़र एक सुखद अनुभव था। सड़क मार्ग से यात्रा के दौरान हमारा परिचय दो युवकों से हुआ, जोकि मैडेगास्कर द्वीप से आये थे। हमने उनसे पूछा - "क्या आपका देश मॉरीशस जैसा है?" उन्होंने कहा - "प्राकृतिक रूप से तो ऐसा ही है, लेकिन सामाजिक-राजनीतिक जीवन शांत नहीं है।" मैडेगास्कर में राजनीतिक उथल-पुथल से मैं परिचित था। मन-ही-मन संतोष हुआ कि मॉरीशस इस किस्म की अशांति से बचा हुआ है। एक लोकतान्त्रिक समाज-व्यवस्था के रूप में मॉरीशस को मॉडल देश माना जाता है, जहाँ की वर्तमान अर्थव्यवस्था संतुलित है, वरिष्ठ नागरिकों और स्कूली छात्र-छात्रों को बसों में निःशुल्क यात्रा की सुविधा दी जाती है और सार्वजनिक स्थानों पर कागज़ के टुकड़े या गन्दगी दिखायी नहीं देती। हम सड़क और उसके पार फैले समुद्री सतह को देखने लगे। सागर सुबह की खामोशी ओढ़े शांत स्थित था। तटवर्ती लहरें खामोश थीं। बस उस सड़क पर समंदर के किनारे-किनारे चल रही थीं। कहीं-कहीं सड़क पानी पर बने पुल से गुज़रती थी। बस एक छोटे-से कॉटेज में घुसी। यही 'बीच हाउस था'। बस से बाहर निकलकर हमने एक मंज़िले 'बीच हाउस' की तरफ़ देखा। मेरी निगाहें कॉटेज के ड्राइंग रूम और उसके पार छोटे आँगन से गुज़रती हुई समन्दर की सतहों पर आ रही सफ़ेद लहरों को छूने लगी। कॉटेज के प्रभारी ने हमारा स्वागत किया। हमने उनसे पहला प्रश्न किया - "समुद्री लहरें किनारे की तरफ़ क्यों नहीं आ रहीं?" उन्होंने बताया - "इस तट पर पानी की सतह के ठीक नीचे 'कोरल रीफ़' का विस्तृत संसार है, जिसके कारण लहरें उन्हें पार नहीं कर पातीं। सफ़ेद लहरें रीफ़ से दूर उठती हैं और बिखरती रहती हैं। 'कोरल रीफ़' को नज़दीक से देखने के लिए नौकाएँ किराये पर ली जा सकती हैं" उन्होंने सुझाया।

कुछ नौका-चालकों ने छिछले पानी में एक घंटे तक घुमाने का प्रस्ताव रखते हुए दूर क्षितिज पर दीख रहे नन्हे द्वीप की तरफ़ इशारा किया, जहाँ हम सब तैर सकते थे। 'कोरल रीफ़' के विस्तार और रंग-बिरंगी मछलियों को दिखाने का वादा करते हुए नौका चालक ने बताया कि मछलियों को इतना नज़दीक से देख सकते हैं, छू सकते हैं और उनके भोजन के लिए कुछ खाद्य पानी में फेंककर, दर्जनों मछलियों को उस पर झपटती हुईं भी देख सकते हैं। जैसे ही हम नौका में सवार हुए, देखा, पेंदा पारदर्शी था; यानी हम पानी की सतह और उसके नीचे के हिस्से को आसानी से देख सकते थे। इस रोमांचक अनुभूति को शब्दों में बयान करना मुश्किल है। थोड़ी ही देर में हम 'कोरल रीफ़' की झाड़ियों के ऊपर से गुज़र रहे थे। इन झाड़ियों में छोटी मछलियाँ भी रहती हैं। हम जैसे-जैसे आगे बढ़ते गए, झाड़ियाँ घनी होती गयीं, उनमे रहने वाली मछलियों की संख्या में विस्तार होता गया। एक स्थान पर नौका चालक ने पानी में कुछ खाने की सामग्री फेंकी, जिस पर दर्जनों मछलियाँ झपट पड़ी। हमारी नौका के पास ही आधा दर्जन अन्य नौकाएँ खड़ी थीं, जिनके पर्यटक पानी में तैर रहे थे। "समुद्र स्नान करने का यह बहुत आदर्श स्थान है, शांत लहरें और थोड़ा गहरा पानी और तैरतीं मछलियों का साथ - और क्या चाहिए? थोड़ी देर मछलियों के साथ मन बहलाने के बाद हम उस छोटे द्वीप की तरफ़ चल पड़े, जहाँ विश्राम करना था। द्वीप पर सिर्फ़ विदेशी सैलानियों को जाने की इजाज़त थी। यह बात समझ में नहीं आयी कि द्वीप कुछ पर्यटकों के लिए वर्जित क्यों है? बहरहाल, हमने वहाँ समुद्र स्नान किया। समुद्री पवन के झोंके तेज़ हो रहे थे, ठंड बढ़ रही थी, हम नौका में बैठकर अपने 'बीच हाउस' में लौट आये।

मॉरीशस के दक्षिण-पूर्व में स्थित इस समुद्र तटीय गाँव

का नाम है माहेवर्ग। अगले दिन माहेवर्ग का सामाजिक जीवन देखने का निर्णय किया। माहेवर्ग समुद्र-तट से स्थानीय बस लेकर हम पास के बाज़ार का भ्रमण करने पहुँचे। हमारे साथ अमेरिका से आयीं दो हिंदी शिक्षिकाएँ भी थीं - अखिला और संध्या। दोनों ही बाज़ार घूमने के लिए अत्यंत उत्साहित थीं। सन् 1804 में माहेवर्ग नगर की स्थापना हुई थी और 1810 में नेपोलियन की नौसेना ने यहीं अंग्रेज़ों पर विजय प्राप्त की थी। एक ज़माने में यह शहर गुलामों का बाज़ार हुआ करता था। आज वहाँ अनेक व्यापारिक गतिविधियाँ होती हैं, बहुत कुछ वैसी है, जो किसी भारत के शहर में देखने को मिलता है। बाज़ार में स्थानीय सब्ज़ी, फल आदि के आलावा दैनिक उपयोग के सस्ते सामान भी थे, जिनमें से अनेक भारत या चीन से आए होंगे। मुख्य बाज़ार से पाँच दस मिनट चलने के बाद कबाड़ी बाज़ार - यहाँ भी दैनिक उपयोग की चीज़ें मिलती हैं। हमारी सहयोगी शिक्षिका संध्या जी ने इन बाज़ारों में बहुत कुछ खरीदे। उन्होंने अपने लिए सैंडल और स्वेटर खरीदे - पाँच डॉलर से ज़्यादा खर्च नहीं हुआ। तभी एक साइकल पर नारियल वाला दिखायी पड़ा। हम सबने उसे नारियल छीलने और उसमें से मलाई अलग और पानी अलग करने को कहा। आधे घंटे तक प्रयास के बाद हमें नारियल पानी पीने को मिला और मलाई खाने को भी! एकाध घंटे घूमने के बाद हम भोजन की तलाश में थे। एक फ़्रेंच रेस्टोरेंट में मेनू कार्ड देखा। फ़्रेंच नाम होने के बावजूद भारतीय सब्ज़ी आदि पसंदीदा शाकाहारी भोजन सूची में शामिल थे। रेस्टोरेंट में एकमात्र वेटर थी - बीस साल की एक छात्रा, जो नौकरी के साथ पढ़ाई भी करती थी। हमने उसे शुभकामनाएँ दीं, पढ़ने के साथ काम करने के उसके फ़ैसले की तारीफ़ की और जाते-जाते आकर्षक टिप भी छोड़ी। माहेवर्ग के जीवन से रू-बरू होने के बाद हम बस स्टैंड की तरफ़ चल पड़े, जहाँ से समंदर का नीला संसार दीख रहा था। बस से हमें 'बीच हाउस' जाना था। माहेवर्ग की सुखद यात्रा कभी गोवा के समुद्र-तट से परिचित कराती, तो कभी वहाँ के विनम्र सीधे-सादे लोगों से!

अगली सुबह हम मॉरीशस की भौगोलिक-सामाजिक यात्रा पर निकल पड़े। भारतीय मूल के टैक्सी चालक को बताया कि हम ग्रामीण इलाके का दौरा करना चाहते हैं। मॉरीशस के गाँव भारत के अभावग्रस्त गाँव की तरह नहीं - टूटी-फूटी सड़कों और गन्दगी के भंडार देखने को नहीं मिले। हमारी टैक्सी चल रही थी पक्की सड़क पर - दोनों तरफ़ चहारदीवारी से घिरे पक्के मकान, जिनके आँगन में झाँककर देखने पर तुलसी के पौधे-चबूतरे और हनुमान की मूर्ति दीख जाती। गाँव से बाहर निकलते ही सिर्फ़ एक स्थान पर कूड़े का ढेर दिखाई पड़ा, जिसके बारे में टैक्सी चालक ने बताया कि कुछ लोग कचरे का ढेर गाँव के बाहर छोड़ जाते हैं, ताकि कचरे की गाड़ी उसे उठा ले जाएगी। थोड़ी दूर जाने पर हमारी टैक्सी गन्ने के विशाल कृषि क्षेत्र से गुज़रने लगी। आज भी मॉरीशस की अर्थव्यवस्था पर पश्चिमी देशों, खासतौर पर फ़्रांस का अत्यधिक प्रभाव है। कृषि क्षेत्र का बड़ा हिस्सा पश्चिमी देशों में रह रहे मॉरीशस वासियों और अन्य लोगों के हाथ में है। मॉरीशस में जिन विदेशी मुद्राओं का अत्यधिक चलन है, वे डॉलर और यूरो हैं। गन्ने के खेतों से गुज़रते हुए ग्रामीण माहौल की झलक प्राप्त करने के थोड़ी ही देर बाद हम मॉरीशस के प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण प्रदेश में पहुँचे, जहाँ पर्वतों से आकर घाटी में प्रवेश करने वाले जल-प्रपात, घने जंगल और उनमें रहने वाले प्राणियों के दर्शन हुए। शामारैल जल-प्रपात इस इलाके का सर्वाधिक दर्शनीय स्थल है। बड़ी सावधानी से इस इलाके को सँवारा गया है, वहाँ ऐसा लगता है, जैसे उनके मार्ग को किसी बाग के माली ने साफ़-सुथरा बनाया हो। जल-प्रपात की दो धाराएँ पहाड़ी से 321 फ़ीट नीचे खाई में गिरती हैं। पर्यटक खाई के उस पार से झरने के निरन्तर प्रवाह का दृश्य देख सकते हैं। जल धाराएँ नीचे जहाँ एकत्र होती हैं, वह स्थान तो दिखाई नहीं पड़ा, लेकिन बताते हैं कि वहाँ एक सुन्दर तालाब बन गया है, जहाँ पहुँचना अपने-आप में साहसिक कार्य है। शामारैल वन के पास ही एक अद्‌भुत मैदान है, जहाँ करोड़ों वर्षों से कोई पौधा न उगा, न उग सकता है। 'इंद्रधनुषी मैदान' के नाम से परिभाषित इस भू-भाग की मिट्टी सात रंगों की है। इस मिट्टी की वैज्ञानिक जाँच के बाद पता चला कि करोड़ों वर्ष पूर्व वहाँ ज्वालामुखी का लावा फैल गया था, जो ठंडा होने के बाद सात से अधिक रंगों में बिखर गया। इस मैदान को सूर्योदय

की किरणों के प्रकाश में देखने का अद्‌भुत आनंद लिया जा सकता है, हालाँकि हम दोपहर में वहाँ पहुँचे थे, जब सभी रंगों की परछाईं देखने को नहीं मिली।

शहरी वातावरण की झलक

मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुइस के आधुनिक बाज़ार में घूमते हुए यह अहसास मन में बैठ जाता है कि मॉरीशस वासियों ने अपने अतीत को संजोकर रखा है, चाहे वह आप्रवासी घाट हो, गिरमिटिया माई की अश्रुपूर्ण प्रतिमा हो, या उस झोपड़े की प्रतिकृति हो, जोकि महात्मा गांधी संस्थान के संग्रहालय में सुरक्षित है। दशकों पूर्व बिहार के गाँव में पैदा होकर उस वातावरण से बचपन में ही अलग हो गया था, गिरमिटिया माई की प्रतिमा आज बचपन की अनेक स्मृतियों को ताज़ा करती है। ऐसा लगा जैसे अभाव और सादगी की तस्वीर दो शताब्दी पुरानी न होकर आज की है।

पर्यटकों के लिए पोर्ट लुइस का आप्रवासी घाट न सिर्फ़ बिहार, उत्तर प्रदेश से एक पराए द्वीप में आए ग्रामीणों के आगमन की स्मृतियों का प्रतीक है, बल्कि वह मानवता के इतिहास का महत्त्वपूर्ण अध्याय भी संजोया हुआ है, जबकि सन् 1834 में ब्रिटिश सरकार ने दासता समाप्त करने के नाम पर करीब पाँच लाख बंधुआ मज़दूरों को मुख्यतः भारत से मॉरीशस द्वीप में बसाने का कार्य प्रारम्भ किया, जिसका एकमात्र उद्देश्य गन्ना की उपज बढ़ाकर अन्य देशों में भेजने का व्यवसाय विकसित करना और एक नई अर्थव्यवस्था को जन्म देना था। 1834 से 1920 तक भारतीय मज़दूरों से करारनामे पर हस्ताक्षर कराकर मॉरीशस लाकर 'एक महान आर्थिक प्रयोग' के अंतर्गत उन्हें 'गुलाम' न कहकर 'गिरमिटिया मज़दूर' कहा गया। मानव इतिहास में विस्थापन की यह अद्‌भुत घटना थी, जिसमें मज़दूरों को बिना वेतन कार्य करने के लिए भारत से मॉरीशस, ऑस्ट्रेलिया, अफ़्रीका और कैरिबियन देशों में भेजा गया। पोर्ट लुइस का आप्रवासी घाट आज उन्हीं मज़दूरों की कहानी कहता है, जिन्होंने डेढ़ शताब्दी तक मेहनत-मज़दूरी कर न सिर्फ़ अपनी संस्कृति को बचाये रखा, वरन् अपनी कार्यभूमि 'मॉरीशस' को एक सुशिक्षित और संपन्न राष्ट्र के रूप में विकसित किया। 1865 की चौदह सीढ़ियाँ, जिन्हें चढ़कर 'गिरमिटिया' मज़दूर मॉरीशस की धरती पर आये, आज भी सुरक्षित हैं। यूनेस्को के विश्व विरासत केंद्र के रूप में मान्यता प्राप्त आप्रवासी घाट एक आधुनिक संग्रहालय के रूप में विकसित किया गया है, जिसमें घाट की मौलिकता को बरकरार रखते हुए आप्रवासियों के जीवन के अनेक पहलुओं को चित्रित और पुनर्जीवित किया गया है। जिस पानी के जहाज़ से वे आये उसकी प्रतिकृति, स्त्री-पुरुषों के लिए रहने के स्थान, खाने-पीने के सामान, रसोई के बर्तन आदि उनके जीवन के साक्षात् दृश्य प्रस्तुत करते हैं। घाट पर भी मज़दूरों के आगमन के समय की इमारतों के अवशेष निवास-स्थान, स्नान-घर, अस्पताल आदि सुरक्षित हैं। अपने-अपने गाँव की तरफ़ जाने के लिए वाहनों की प्रतीक्षा के लिए बनाए स्थान आज भी 180 वर्ष पूर्व की उस यात्रा की याद दिलाते हैं, जिसे अमिताव घोष ने अपनी पुस्तक 'सी ऑफ़ पॉपीज़' (अफ़ीम का सागर) में वर्णित किया है। आप्रवासी घाट के आधुनिक संग्रहालय में उन दिनों की झोपड़ियाँ, रसोई, स्नानघर, जिनमें आठ-आठ मज़दूर गुज़ारा करते थे, खाना पकाते थे और गन्ने के खेतों में काम करते थे, सबकी प्रतिकृतियाँ संग्रहित हैं। इतिहास को याद रखने की परम्परा किसी भी समाज को न सिर्फ़ जीवंत रखती है, बल्कि उसे सशक्त भी बनाती है। सन् 2014 में मॉरीशस ने आप्रवासियों की डेढ़ सौवीं बरसी मनाई, तब शायद यह भावना हर मॉरीशसवासी के मन में प्रबल रही होगी कि उन्हें और मज़बूत बनाना है। वे अतीत के प्रति सजग हैं, शर्मिंदा नहीं। महिलाओं में बिहार के भोजपुर इलाके की औरतों की तरह माँग में सिन्दूर का लम्बा टीका लगाना, पल्लू से माथे को ढकना आदि परंपरागत आदतें उन्हें आधुनिकता से दूर नहीं रखतीं, न ही रेडियो, टेलीविजन पर भोजपुरी कार्यक्रमों की रोचकता में लीन हो जाने के प्रति कोई हिचक। मॉरीशस में आधुनिक बाज़ार, शॉपिंग मॉल वहाँ के समाज को आधुनिक भौतिकवाद से दूर नहीं रखते।

मॉरीशस की यात्रा डोडो की चर्चा के बिना अधूरी रहेगी। यह पक्षी मॉरीशस की पहचान है, जैसे कि भारत का मयूर पक्षी। 1507 में पुर्तगाल के नाविकों ने इस पक्षी को देखा था, जिसके बाद से समुद्री-यात्रा पर निकले पश्चिम के विभिन्न

देशों के खोजी नाविक डोडो को अपना शिकार बनाते रहे। शायद उड़ने की अपनी अक्षमता के कारण डोडो सन् 1681 तक लुप्त हो गया, नाविक उसे आसानी से मारकर अपनी भूख मिटाते रहे। आज विश्व के अनेक संग्रहालयों में डोडो के सिर और पाँव संग्रहित किये गए हैं, लेकिन मॉरीशस की सांस्कृतिक विरासत में 23 किलोग्राम का यह पक्षी अमर है। लकड़ी या धातुओं में बनी उसकी प्रतिकृतियाँ पर्यटकों के लिए यादगार के रूप में द्वीप की दुकानों में उपलब्ध हैं।

मॉरीशस के वासी कई मामलों में सृजनशील हैं। भारतीय मूल के लोगों के लिए गंगा का विशेष महत्त्व है। रामचरितमानस और हनुमान चालीसा की प्रतियाँ साथ लेकर आने वाले भारतवंशी गंगा तो अपने साथ ला नहीं सकते थे, वे गंगाजल लेकर ज़रूर आये और अपने तालाब को गंगाजल से शुद्ध किया। 'गंगा तालाब' भारतीय मूल के लोगों की धार्मिक और आध्यात्मिक आस्था को परिलक्षित करने का एक जीता-जागता स्त्रोत बन चुका है, जहाँ अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ यात्रियों को हिंदुत्व का सन्देश देती हैं। प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि के समय मीलों सफ़र कर मॉरीशस वासी गंगा तालाब पहुँचते हैं, अपनी आस्था को पुनः परिभाषित करने।

साठ के दशक में आज़ादी प्राप्त करने के बाद भारत के साथ भाईचारे का सम्बन्ध बनाना मॉरीशस के लिए स्वाभाविक था। भारत के लिए भी अपने विदेशी निवेश का लगभग 42 प्रतिशत मॉरीशस में लगाना स्वाभाविक और व्यावहारिक था। सातवें दशक से ही मॉरीशस के विद्यार्थी भारत आने लगे थे, जिनमें से कई आज भी मेरे मित्र हैं। भारत और मॉरीशस की मैत्री, हिंदी भाषा के शिक्षण और उसके प्रचार-प्रसार में सहायक हो रही है। मोका स्थित महात्मा गांधी संस्थान अपने हिंदी-शिक्षण की गुणवत्ता के लिए जाना जाता है। संस्थान ने एक और महत्त्वपूर्ण कार्य किया है - 'गिरमिटिया मज़दूरों का संग्रहालय' बनाने का। यह संग्रहालय मॉरीशस की दो-तिहाई आबादी के पूर्वजों का ही इतिहास नहीं, समस्त राष्ट्र के लिए प्रेरणा-स्रोत है।

लगभग एक सप्ताह बाद मॉरीशस के प्राकृतिक सौंदर्य के अनुभव की ताज़गी और वहाँ के इतिहास से सराबोर होकर जब चलने की बारी आयी, तब होटल के सभी वरिष्ठ अधिकारी मुख्य द्वार तक छोड़ने आये। होटल की लॉबी में याद के तौर पर हमने कुछ स्मृतियाँ संजोयीं और विमान-स्थल की ओर रवाना हो गए।

aojha2008@gmail.com

सम्माननीय श्री

श्री राजेन्द्र ओझा
रायपुर, भारत

सम्माननीय श्री आज बड़े उद्विग्न थे। आतुर तो वे पहले भी दिखते थे, लेकिन प्रतिशत में कहें, तो आज की आतुरता पूर्व से करीब पचास प्रतिशत ज़्यादा थी। वे न तो ठीक से बैठ ही पा रहे थे और नाही एक जगह खड़े ही रह पा रहे थे। चारों नहीं आठों दिशाओं में वे आगे-पीछे हो रहे थे। उनकी यह चहलकदमी कभी कदम ताल में बदल जाती, तो वे अपने पर कुपित हो उठते थे। जल्दी उठने के चक्कर में निंदिया रानी आँखों के बिस्तर पर विराजित नहीं हुई। रात बिगड़ी, नींद बिगड़ी और अब आप तो है ही समझदार, मैं क्या कहूँ और क्या बिगड़ा!

मिली सूचना के अनुसार सम्माननीय श्री की कुछ 'नुमा' टाइप की चीज़ अखबार में प्रकाशित होने वाली थी। मैंने एक बार उनसे पूछा भी था - "क्या लिखते हैं आप?"

उन्होंने जो उत्तर दिया, उसमें मुझे केवल 'नुमा' सुनाई पड़ा। उनके कहने के अंदाज़ से ऐसा लगा कि वे चाहते भी यही थे कि मुझे केवल 'नुमा' सुनाई पड़े। खैर, जाने दो।

तो यह कि वे हड़बड़ी में थे और समय इतना तो हो ही गया था कि उन्हें अब शहर के मध्य चौराहे तक निकल जाना चाहिए था और चूँकि उनके पास साइकिल थी नहीं, वे पड़ोसी के घर की तरफ़ लपके। उसकी साइकिल उठायी और लगे दौड़ाने। लेकिन यह क्या? ताला तो टूटा ही, अपने साथ साइकिल के दो-तीन स्पोक का भी राम नाम सत्य कर दिया। उन्होंने जैसे-तैसे स्पोक को मोड़ा, कुछ भला-बुरा भी बड़बड़ाया और चल पड़े चौराहे की तरफ़। हड़बड़ी तो उनको थी, साइकिल को थोड़े न थी। सो स्पोक के बाद पैडल ने भी साथ छोड़ दिया और वे...। वे इस तरह गिरे कि ज़्यादा लगा नहीं और इस तरह बचे कि खुद ही खड़े हो गए।

वे साइकिल पर फिर से चढ़ गए और पैडल वाले हिस्से पर अपनी सही उमर से कम उमर की ताकत लगाते और दूसरे हिस्से को अपनी एड़ी के ज़ोर से नीचे धकेलते। इस कसरत ने उन्हें सही उम्र से ज़्यादा उम्र की थकान दे दी थी। वे पस्त हुए परास्त नहीं और अब चौराहा पैडल न मारने की ज़रूरत जितना दूर था। उन्होंने अपने पैर पैडल से हटा दिए। चौराहा दिख जाने की खुशी में उन्होंने हैंडल भी छोड़ दिया। वे गिरे, लेकिन उन्होंने बर्ताव ऐसा किया कि उतरते में फ़िसल गए हो।

उन्होंने एक दैनिक का नाम लेकर दूकानदार से उक्त दैनिक देने को कहा। दूकानदार ने एक प्रति दे दी। वे खिसियाई कहे जाने वाली अजीब-सी हँसी हँसे और बोले - "अरे भई बीस-पच्चीस कॉपियाँ दीजिए। दूकानदार उनका चेहरा देखने लगा। वे मुस्कुरा दिए। वे आँख भी दबाने वाले थे, लेकिन 'अंकल, मोर्निंग' ने उन्हें रोक दिया। दूकानदार ने पच्चीस कॉपियाँ दे दीं। वे फिर मुस्कुराए, नमस्ते की और चल दिए।"

सम्माननीय श्री ने अपनी दाईं तरफ़ के पाँच घरों में अखबार की एक-एक प्रति दरवाज़े के नीचे से सरका दी। बाईं तरफ़ चार घरों में सरका दी, पाँचवें घर में सरकाने ही वाले थे कि वहाँ से खाँसने की आवाज़ आई। वे किनारे छिप गए। खाँसना खर्राटे में बदलते ही उन्होंने अपना अभिष्ट पूरा किया। वे सामने वाले घरों की तरफ़ बढ़ते हुए सोच रहे थे कि छिपकर खड़े रहे, उतनी देर में तो इन घरों को निबटा देते। लेकिन अब क्या करें, वह समय तो निकल गया। उन्होंने बिल्ली की तरह बिना आहट के अपना काम पूरा कर लिया और इस होशियारी पर उन्होंने अपनी पीठ पर हल्का मुक्का भी जड़ दिया। वे जानते थे, आदमी यहाँ इत्मीनान में रहता है। उन्हें दीवार पर एक कीला ठुँका हुआ दिखा। उन्होंने अखबार की एक कॉपी वहाँ लटका दी।

उनकी चाल में काम पूरा होने की खुशी झलक रही थी। आहिस्ते से घर में प्रवेश कर वे सीधे बाथरूम में घुस गए। अखबार जो उन्होंने काँख में दबाए रखा था, निकाला और वे खेल पृष्ठ पढ़ने लगे। वे जिस टीम के प्रशंसक थे, तालिका में वह अंतिम स्थान पर थी। आज भी उसी स्थान पर देखकर वे

दुखी हो गए। इतने में कॉल बेल बजी। हड़बड़ाहट में उन्होंने अखबार का ही इस्तेमाल कर लिया और 'धत्' कहते हुए उसे वहीं फेंककर वे दरवाज़े की तरफ़ लपके।

दरवाज़ा खुलते ही - "ये क्या है गणपत जी, यह अखबार आपने ही डाला है न मेरे यहाँ।"

"जी, जी" वे थोड़ा मुस्कुराए। वह क्या है न कि मेरा एक...

वह आगे कुछ बोल पाते, उससे पहले ही पड़ोसी ने बेफ़िकर होकर कहा -

"और वह साइकिल आपने ले ली न! पिछली बार पड़ोसी का लिहाज़ रख मैंने कुछ नहीं कहा, लेकिन अब फिर ताला, स्पोक सब तोड़ लाए आप। लड़का स्कूल कैसे जाएगा बताइये आप?"

"वो, वो... मैं बनवाकर ला देता हूँ, आपकी साइकिल तब तक आप वह तो मेरा...मेरा"

"अरे क्या मेरा... मेरा लगा रखा है आपने? कुछ नहीं छपा आपका। अरे मैंने तो वह कॉलम भी..."

"रे... रे... रे... रा... रा... रा... - ऐसा मत कहिए आप। आपने ऐसा कैसे सोच लिया? मैं... मैं आता हूँ साइकिल बनवाकर!"

साइकिल बनवाने जाते समय सम्माननीय श्री को लगा कि वे भी अपनी टीम की तरह अंतिम स्थान पर हैं।

भारत में चाय का योगदान

श्री अशोक व्यास
भोपाल, भारत

चाय को भले ही अंतर्राष्ट्रीय पेय की मान्यता नहीं मिली हो, लेकिन एक आम भारतीय सुबह उठकर भगवान का नाम भले ही न ले, परन्तु वह चाय को इतनी शिद्दत से याद करता है कि सारी कायनात उसकी इच्छा को पूरी करने के लिए परिवार सहित जुट जाती है। परिवार के सदस्य भी चाय पीने के लिए लालायित होने लगते हैं। इसी वजह से भारत में चाय को भारतीयों ने अघोषित रूप से राष्ट्रीय पेय का दर्जा दे रखा है। हम सुबह उठने से लेकर रात को सोने के समय तक कभी भी चाय पी सकते हैं, चाय पीना हमारा सबसे बड़ा शौक है, फ़ैशन है। उसकी गरिमा कम ना हो जाये, इसलिए जैसे पेट्रोल के दाम यदा-कदा बढ़ जाते हैं, उसी प्रकार सरकारी और गैर-सरकारी दूध बेचने वाले भी दूध के दाम अक्सर बढ़ा देते हैं। अगर नहीं बढ़ाएँ तो लगता है कि चाय की प्रतिष्ठा कम होने लगी है। अतः दूसरे ही महीने फटाक से दूध या चायपत्ती अथवा शक्कर में से किसी-न-किसी का दाम बढ़ ही जाता है। तभी हमें छाती में ठंडक नहीं गर्मी का एहसास होने लगता है। वैसे अब आवश्यक वस्तुओं का भाव बढ़ने से कोई आश्चर्य नहीं होता है, क्योंकि इससे हमारी क्रय शक्ति और बढ़ने का सरकार को पता चलता रहता है, जिससे उसे टैक्स बढ़ाने में सुविधा हो जाती है। अगर दाम नहीं बढ़े तब ज़रूर ऐसा लगता है कि आम आदमी की किरकिरी हो रही हो कि वह चाय का खर्च भी वहन करने की कुव्वत नहीं रखता है। दूध के दाम बढ़ गए, तो ऐसा लगा जैसे अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल का दाम बढ़ गया हो। चाय पत्ती पहले ही पत्ता-पत्ता, बूटा-बूटा हाल हमारा जाने की तरह हो गई है। शक्कर की मिठास किसान को गन्ने पर मिलने वाली सब्सिडी पर निर्भर है। मतलब यह है कि भारतीय अपना राष्ट्रीय पेय पीने पर गर्व की अनुभूति कर सकते हैं। कुछ तो चाय की ज़्यादा तारीफ़ करके हमने ही उसकी आदतें खराब की कि वह स्पेशल हो गई है, क्योंकि पहले होती थी चाह वाली चालू चाय और अब वह बन गई है चाऽ... य! जब वह वाकई में चालू हुआ करती थी, तब उसकी जो इज़्जत थी वह इस कारण थी कि चाय तब ही चाय मानी जाती थी, जब वह लबसोज हो, लबदोज हो और लबरेज हो यानी चाय इतनी गरम हो कि होंठ जल जाए, इतनी मीठी हो कि होंठ चिपक जाए और प्याले में इतनी भरी हो कि प्लेट में डालकर सुड़कते हुए पी जाए।

एक ज़माना था जब चाय पीते हुए एक से बढ़कर एक चर्चाएँ होती थीं, उसके बाद एक दौर आया कि चाय पीते हुए चर्चा नहीं, बल्कि खुद चाय पर चर्चा होने लगी। बताओ भला यह क्या बात हुई कि जो बातें चाय पीते हुए होती थी,

उसे छोड़कर सब चाय पर चर्चा करने लगे। इस चक्कर में आजकल चाय पीने वालों का अवमूल्यन होने लगा है। किसी से चाय पीने को पूछो, तो कोई कहेगा - ''नहीं मैं चाय नहीं पीता हूँ,'' दूसरा-तीसरा कहेगा - ''बस थोड़ी सी देना,'' चौथा कहेगा - ''मैं तो कॉफी पीता हूँ,'' पाँचवा कहेगा - ''मैं तो कुछ और पीता हूँ जी!'' यह तो सरासर अपमान है अंग्रेज़ों की दी गई नेमत का। हालाँकि उसमें भारतीय किचन के जितने मसाले हैं, उसे डालकर हम उसे अमृत बना चुके हैं। चाय पत्ती की महँगाई दूध के दाम शक्कर की कमी यह सब फालतू बातें होने लगीं। पुराने लोगों से पूछिए तो वे कहेंगे, साहब चाय तो हमारे ज़माने में पी जाती थी। ये नए लोग क्या जाने एक प्याली में दो घूँट भी बड़ी मुश्किल से पी पाते हैं। हमारे ज़माने में तो थाली में डालकर चाय पीते थे, थाली में, उसके बाद गिलास भरकर पीने लगे। फिर कप-प्लेट का ज़माना आ गया, तो उसमें भी हमने कोई कमी नहीं की थी। दो कप चाय से कम नहीं पीते थे, वरना तौहीन मानी जाती थी चाय और पीने वाले - दोनों की।

चाय का जीवन में पिछली शताब्दी में इतना महत्त्व था कि जब भी किसी जवान हुई कन्या की माँ को उसकी शादी का ख्याल आता था, तब वह होने वाले दामाद को चाय पर बुला लेती थी। तब वह कन्या भी फट से समझ जाती थी और अपने प्रेमी से गा-गाकर कहती थी कि "शायद मेरी शादी का ख्याल दिल में आया है, इसीलिए मम्मी ने मेरी तुम्हें चाय पर बुलाया है।"

सगाई कराने में चाय का इससे बड़ा सामाजिक योगदान क्या हो सकता है? सत्तर-अस्सी के दशक में तो कन्या के हायर सेकेंडरी करने के बाद होम साइंस से ग्रैजुएट करने को शादी से पूर्व का 'वेटिंग-इन-पीरियड' माना जाता था। तब वह चाहे और कुछ सीखती, किन्तु टीकोजी बनाना ज़रूर सीखती थी। आज की पीढ़ी अगर सुन ले, तो उसे कोई बिस्कुट समझ ले, जबकि यह भी अंग्रेजों की देन थी। उस समय टीकोजी का एक ही बार इस्तेमाल होता था, जब लड़का उस कन्या को देखने आता था, तब कन्या सिर को पल्लू से ढककर आहिस्ता और सधे हुए कदमों से चलकर आती थी और घरवाले कहते थे "बेटी मेहमानों को चाय पिलाओ!" तब वह छोटी बहन या भाभी द्वारा पहले से लाई गई घर के एकमात्र टीसेट, जिसका काम भी एक ही बार पड़ता था, उसकी केटली से टीकोजी ऐसे उठाती थी, जैसे किसी का घूंट उठाया जा रहा हो। तब एक हाथ से केटली के हैंडल को और दूसरे हाथ को ढक्कन पर रखकर कप में चाय भरकर मेहमानों को देती थी। इस सारी प्रक्रिया को लड़के के साथ आने वाली महिलाएँ इतनी तीक्ष्ण दृष्टि से देखती थी, जैसे होम साइंस प्रैक्टिकल का परीक्षक देख रहा हो। बिना आवाज़ किए, बिना चाय गिरे अगर लड़की ने चाय को पेश कर दी, तो समझो प्रैक्टिकल में पूरे नंबर मिल गए, आगे तो संबंध पक्का होना ही समझो। इसी प्रकार कोई भी धार्मिक कर्मकांड बिना चाय का दौर चले पूरा नहीं माना जाता है। उसमें पूजा सामग्री के साथ चाय का भी प्रावधान करना पड़ता है।

सरकारी ऑफ़िस में चाय के बिना तो एक काम नहीं हो सकता। किसी बाबू से काम कराना हो, तो उसको खुला ऑफ़र देना होता था कि "चलिए साहब चाय पीकर आते हैं" बाबू ने अगर हाँ कर दी तो समझो आधा काम हो गया। बेचारा सरकारी बाबू दिन भर में पच्चीस-तीस चाय पीकर कम-से-कम इतने लोगों के काम तो कर ही देता था, भले ही ज़्यादा चाय पीने से उसका स्वास्थ्य बाद में खराब हो जाए, लेकिन वह जनसेवा से पीछे नहीं हटता था। एक बार मैं अपने काम से सरकारी ऑफ़िस में गया, मैंने चाय पीने का ऑफ़र बाबू को दिया। बाबू ने हाँ कर दी। अब आप ध्यान दीजिए। उस समय चाय अकेले नहीं पी जाती थी चार-पाँच सहकर्मी भी चाय पीने में साथ देने चल देते थे। चाय की होटल पर आसपास के ऑफ़िस के अन्य बाबू भी इसी प्रकार चाय उत्सव मनाने के लिए गुटों में चाय पीने होटल में पहुँच जाते थे। चाय से पहले मुँह का स्वाद बदलने के लिए हल्का-फुल्का नाश्ता मंगाया जाता है। इस काम में मेज़बान का कोई रोल नहीं होता था, उसका काम केवल बिल देना होता है। नाश्ता करने के बाद चाय पीने और मतलब की बातें करने का दौर एक साथ चलता और चाय की चुस्कियों के बीच डील फ़ाइनल हो जाती। उन सब बाबुओं में एकाध बाबू ज़रूर अपवाद या बड़ा सयाना होता है। वह कभी भी चाय नहीं पीता, वह अपने लिए दूध मँगवाता है। दूध पीते-पीते वह

अपने आप को कौओं के बीच हंस समझता है और सब को हिकारत की नज़र से देखता है। लेकिन बाकी उसे उपेक्षा से देखते हैं कि देखो बाबू होते हुए भी उसे चाय हज़म नहीं हो रही है। मैंने दूध पीने वाले बाबू से धीरे से पूछा "बड़े बाबू आप चाय क्यों नहीं पीते?"

तब वे हँसकर कहने लगे - "मैं कोई मूर्ख हूँ, जो पैसे भी खर्च करूँ और स्वास्थ्य भी खराब करूँ? आप जानते नहीं चाय कितना नुकसान करती है चैनल में और व्हाट्सएप्प पर आयुर्वेद के जानकार बता तो रहे हैं।"

लो साहब! जेब मेरी ढीली हो रही थी, स्वास्थ्य सुधार में वे लगे थे। इस प्रकार चाय पीने-पिलाने के किस्सों के साथ-साथ भारत में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक गतिविधियाँ ज़ोर पकड़ी हुई हैं।

akvyas1404@gmail.com

संस्कृति चौराहे पर एक शाम

श्री धर्मपाल महेंद्र जैन
टोरंटो, कनाडा

हम हिंदी के राजमार्ग पर चल रहे थे। रास्ते में रसीला जी छतरी खोल कर खड़े थे। आँगन में न धूप थी, न बारिश, न बादलों की आवाजाही, फिर भी उनकी छतरी खुली थी। उनकी छतरी पर अंग्रेज़ी में लिखा था हिंदी। उन्होंने लयबद्ध होकर बूम मारी - "मेरी छतरी के नीचे आजा।" मेरे साथ दो-तीन अन्य संभ्रांत राहगीरों का ध्यान उन्होंने आकर्षित किया और हम उनकी तरफ़ खींचे चले गए। उन्होंने हमें ठोका-बजाया और संभावना देखकर कहा - "आ जाइए, हमारी छतरी है, इसलिए हमने डंडा पकड़ रखा है। अन्यथा यह सबके लिए खुली है। मर्ज़ी हो तो चंदा देना, मर्ज़ी न हो तो सदस्यता शुल्क दे देना।'' उनकी छतरी यकायक संस्था जैसी लगने लगी। मैंने जिज्ञासा व्यक्त की कि ''आपकी छतरी में बड़ा स्कोप है, हमारे लिए कोई विशेष सेवा हो, तो बताइएगा।" वे सांकेतिक शब्दावली में बोले - "यदि छतरी की ताड़ी बनकर सेवा करनी हो, तो नियत खर्चा देना पड़ता है। हाँ, इसका खटका बनना हो, तो हमें बड़े दानदाता की तलाश है। परंपरा ही ऐसी है, आप कुछ देंगे, तो हम कुछ बना देंगे। दो हाथ हैं ही इसलिए कि एक हाथ दो, दूसरे हाथ लो।" हम मंत्रमुग्ध हो छतरी में घुसकर अप्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने लगे। छतरी में साहित्य था, संस्कृति थी, नाम था, पद थे और भी बहुत कुछ था जो जानना शेष था। तब तक हम नए मुर्गों की गंध पाकर सुरीली जी आ गईं।

मैं उनका नामकरण करता, तो उन्हें अतिसुरीली कहता। जैसा कि कुछ प्रतिभाशालियों के साथ होता है, वे अपने नाम से कम गुणी निकलीं। उनके मुखारविंद से शब्द ऐसे बहते थे, जैसे पतित-पावनी नदी बहती हो। उनके श्रीमुख से आ रहीं फुहारों से मेरा आचमन हो रहा था। मेरी इच्छा हुई उनसे दूर छिटककर अवांछित बूंदाबांदी से बच जाऊँ। उनके दो गुण बार-बार उद्घाटित हो रहे थे, उनका सद्ज्ञान और वाक्-वैभव। यूँ तो हम भारतवंशी जन्मजात सर्वगुण संपन्न होते हैं, पर वे विश्वविद्यालय से पच्चीसवीं कक्षा पास कर आई थीं। रट्टा-ज्ञान अनायास ही छलक जाता था। उन्होंने हमारे स्वागत में अपनी दंत-पंक्तियाँ खोलीं, तो मेरे होंठ डरकर चिपक गए। "मेरे भीतर का कबाड़खाना केवल डेंटिस्ट के देखने के लिए है," इसका सार्वजनिक प्रदर्शन वैसे भी निषेध है। वे हमें एक बड़े टेंट में ले आईं। यहाँ उनकी छतरी की खूबियों के फ़ोटो जगह-जगह चिपके थे। छतरी के नीचे सजे मंच के 'हाई डेफ़िनिशन फ़ोटो' थे। हमेशा मंचासीन दिखने वाली हस्तियाँ यहाँ भी थीं। रसीला जी कभी उन्हें पुष्पहार पहना रहे थे, तो कभी सुरीली जी उन्हें पुष्प-गुच्छ दे रही थीं। ये फ़ोटो आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने देख लिये होते, तो हिंदी साहित्य का इतिहास कुछ और होता। भजन मंडली पूरी निष्ठा से उनकी ज्ञात-अज्ञात सेवाओं के भजन गा रही थी। "हे रसील कृपालु, हे सुरील सम्हालु।" यहाँ परस्पर आदर की पराकाष्ठा देखने को मिली। सब एक-दूसरे के नाम के आगे श्री और नाम के पीछे जी का डबल इंजिन लगा रहे थे। वे नाम के साथ श्री-जी के उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर मूल व्यक्ति के इतिहास और भूगोल का सत्य विवेचन कर देते थे। इस छतरी में बस रसीले-

सुरीले ही गुणी थे, शेष चीयर लीडर्स बना दिए गए थे।

हम खा-पीकर खिसकने लगे, तो सुरीली जी बीमा एजेंट की तरह चिपक गईं। हमने कहा, हमें और भी छतरियों की आभा देखनी है। उनकी लालिमा पीली पड़ने लगी और वे खिसियानी बिल्ली की तरह अपनी छतरी के गुण पुनः गिनाने लगीं। यथा - "हमारी छतरी नगर की सबसे बड़ी साहित्यिक छतरी है। हमारी छतरी हिंदी की प्रतिष्ठित और पुरानी छतरी है। यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर की छतरी है।" वे 'मैं' से बाहर नहीं निकल पा रही थीं, पर उन्हें 'हम' होने का वहम् हो गया था। वे छतरी को छत्री जैसा बोल रही थीं और खुद को क्षत्रिय जैसा दिखा रही थीं। मेरा दिमाग वहीं से सटक गया। हम बाहर निकल आए, तो देखा रसीला जी मज़बूती से छतरी पकड़कर खड़े थे। छतरी में घुसने के आतुर लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी।

हम एक छतरी देखकर ही थका-थका महसूस कर रहे थे। हिंदी मार्ग तो छोटी-बड़ी कई छतरियों से अटा पड़ा था। सभी अपनी दूकानें चमकाने में लगे थे। आगे बढ़ते हुए हमें सुरीली जी की चेतावनी याद आ रही थी - 'नकली छतरीवालों से सावधान रहना। वे आज छतरी खोलते हैं, अनुदान बटोरते हैं और कुछ दिनों में छतरी सहित गायब हो जाते हैं। फिर वे पुरानी छतरी पर नया नाम लिख देते हैं, और हमारी नकल उतारते हुए गाते हैं "मेरी छतरी के नीचे आजा।" उन्होंने हमें आगाह करते हुए कहा था - "हमारी छतरी में नहीं आओ, तो कोई बात नहीं, किसी और की छतरी में घुसे तो मुश्किल होगी।" उन्होंने हमें समझाया था कि "उनकी छतरी सबसे प्रामाणिक है। यह धूप में छाँह देगी, बारिश में छत देगी। दूसरी छतरी वाले, जब बारिश होती है, आपको छतरी में से भगा देते हैं और जब बर्फ़ गिरने लगती है, तब वे अपने दड़बे में दुबक जाते हैं। जब धूप निकलती है, तब वे बेरंग उग आते हैं, वे केवल रोशनी बटोरना चाहते हैं।"

हिंदी मार्ग बहुत प्रसिद्ध मार्ग है, पर स्वर्ग तो नहीं है। सुना है, इसके आगे संस्कृति चौराहा है, वह स्वर्ग बन रहा है। संस्कृति चौराहे पर पूरा पैकेज मिलता है, पूरा मतलब, जो चाहिए वह हम सोचते रहे, एक अकेले हिंदी के नाम पर किस कदर देश लूटा जा सकता है। आगे तो संस्कृति चौराहा है, वहाँ कितनी भीड़ होगी। वहाँ तो साहित्य, संगीत, कला, आस्था और धर्म सबके ठेके हैं। वहाँ पुण्य इधर-उधर करने और कमाने के कितने अवसर हैं। वहाँ वंश, जाति, भाषा, राज्य और राजनीति की भी बड़ी दूकानें हैं। जिसकी जब मर्ज़ी हो वह अपनी छतरी खोलकर वहाँ खड़ा हो जाता है और देखते-देखते अपना हॉल खड़ा कर लेता है। सड़क की दोनों ओर बनीं बहुतेरी छतरियाँ, दूकानें और हॉल देखते-देखते हम अंततः संस्कृति चौराहे पर आ ही गए।

यहाँ की रौनक मशहूर थी। सरकारी सूर्य के प्रकाश में संस्थागत ट्यूबलाइटें जल रही थीं। स्वर्णिम प्रकाश में चौराहे पर दुधिया चाँद की मृदुलता छा रही थी। यहाँ छतरियों की बजाय भव्य प्रवेश-द्वार बने थे। द्वार मनमोहक थे, पर अक्सर बंद रहते थे। इनमें घुसने के लिए छोटे-छोटे चोर दरवाज़े बने थे। जानकार लोगों की संगत में रहकर अंदर-बाहर आना-जाना आसान था। आसपास के मिष्ठान-भंडार भरे पड़े थे। गेंदे और गुलाब की महक से टोकरियाँ भरी थीं। जैसे ही अंदर किसी सम्मान की घोषणा होती, बाहर पुष्पहार और मिठाइयों के भाव बढ़ जाते। काना फूसी शुरू हो जाती कि फ़लाँ अयोग्य व्यक्ति यकायक कैसे योग्य बन गया! उन्हें कौन समझाता कि प्रभु कृपा भी कोई चीज़ होती है, जो अयोग्यों पर ही होती है।

सम्मान सीमित थे और सम्मानाकांक्षी बहुत सारे। इसलिए मार्ग की दोनों ओर भिक्षुकों के याचक हाथ फैलाए हुए थे। कुछ लोग इतने श्रद्धानिष्ठ थे कि वे संस्कृति के नाम पर हाथ फैला रहे थे। कुछ श्रेष्ठि, भिक्षुक कोटे से गलियारे में प्रवेश पा गए थे। पैसों से अधिक उन्हें नाम कमाने की चिंता थी। वे बड़ा हाथ मारने के लिए भीतर घुसे थे और बड़े दीन भाव से मठाधीशों से कह रहे थे - "प्रभु, मेरे अवगुण चित्त न धरो।"

हम नौटंकी देखते-देखते येन-केन प्रवेश द्वार से अंदर आ गए। यहाँ विशाल छतरियाँ लगी थीं, जैसी पाँच सितारा होटलों के लॉन में लगी होती हैं। इन छतरियों के नीचे पड़ा कचरा, साहित्य माना जा रहा था। हमने कचरे को साहित्य में बदलने की प्रक्रिया जाननी चाही, तो उन्होंने हमें आदर से बिठाया और अपना मेनू रख दिया। अपना विमोचन करवाना

हो, तो 'एक्स' लाख, अपने विमोचन के साथ विवेचना करवानी हो तो 'वाय' लाख। सुपर-डुपर पैकेज चाहिए तो 'ज़ेड' लाख। टॉप क्लास के पैकेज में अकादमियों को गिलास में उतारना शामिल था। बाहर लोककला, परंपरागत रासलीला और उदात्त संस्कृति को लेकर बड़ी-बड़ी छतरियाँ ताने लोग खड़े थे। भीतर शैम्पेन के फव्वारे फूट रहे थे। कैबरे में उत्तर-आधुनिकाएँ थिरक रही थीं। बाहर सुरीली जी एक तालाब गंदा करती लग रही थीं, पर यहाँ भीतर मछलियाँ ही मछलियाँ थीं और मगरमच्छ पहरा दे रहे थे।

dharmtoronto@gmail.com

डॉ. स्नेहलता पाठक जी के साथ साक्षात्कार

डॉ. मृणालिका ओझा
रायपुर, भारत

साक्षात्कारकर्ता : स्नेहलता जी, आप हिंदी साहित्य की स्थापित व्यंग्य लेखिका हैं। मुझे लगता है भारतीय समाज में आज भी महिलाएँ शत-प्रतिशत स्पष्टवादी नहीं बन पाती है। फिर आपने व्यंग्य-लेखन का साहस कैसे किया?

साक्षात्कारदाता : मृणालिका जी, आपका पहला प्रश्न ही पूर्व भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पहले क्या थी, इसे उकेरता है। तब महिलाओं द्वारा जवाब देना तो दूर, ज़ोर से हँसना-बोलना भी मना था। मगर आज ऐसी स्थिति नहीं है। स्वतंत्र भारत के संविधान ने भी महिला-पुरुष को बराबरी के अधिकार दिए हैं। आप स्वयं देख रही हैं कि महिलाएँ हर क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी पर हैं। आज **स्त्री** ने अपनी खोई हुई ताकत पुनः हासिल कर ली है। हर क्षेत्र में नारी की जीत का फहराता हुआ परचम उसकी गाथा गा रहा है। वह चाँद पर जा रही है, हवा में कलाबाज़ियाँ कर रही है, आसमान के तारे गिन रही है, सागर की गहराई नाप रही है, अतः कहा जा सकता है कि वह केवल साहसी ही नहीं, बल्कि नारी-शक्ति की मशाल लेकर धावक भी बन चुकी है। फिर व्यंग्य-लेखन के क्षेत्र में **स्त्री** के आने पर आश्चर्य क्यों? व्यंग्य तो एक विचारधारा है, जो हर गलत का प्रतिकार करती है।

साक्षात्कारकर्ता : आपको व्यंग्य-लेखन की प्रेरणा किस व्यक्ति या घटना से मिली?

साक्षात्कारदाता : देखिए, हिंदी साहित्य में व्यंग्य-लेखन की परंपरा का विस्तार व्यंग्य के पुरोधा हरिशंकर परसाई से मिली प्रेरणा का प्रभाव है। इस बात से मैं भी सहमत हूँ। मगर मेरा अपना अनुभव यह भी है कि व्यंग्य हर आदमी की चेतना और विचारधारा से जुड़ा लेखन है। कहा गया है कि "जाके पाँव न फटी बिवाई, सो का जाने पीर पराई" अर्थात् जो अपने जीवन में अभाव और उससे उपजी पीड़ा का भोक्ता रहा होगा, वही व्यंग्य की कलम का धारदार सिपाही हो सकता है। अतः व्यंग्य-लेखन की प्रेरणा हमारी अनुभूत की गई परिस्थितियों पर ही निर्भर होती है। जैसे सामाजिक विसंगतियाँ या राजनीति में कुर्सी की फैली माया, कथनी-करनी में अंतर, जनता को भ्रमित करने वाले सत्ताधारियों का आचरण, बेकारी आदि।

कहना मुश्किल है कि कौन, कब, किसका प्रेरक बन जाता है। रही मेरी बात तो मैंने शुरुआती जीवन में उतरते-चढ़ते कई रंग देखे। उसके बाद जीवन भर उच्चशिक्षा विभाग में रही। अतः साहित्यकारों की संगत मिलती रही। पहले कहानियाँ लिखीं, मगर जब देखा कि आज का हर क्षेत्र, जिसमें शिक्षा का क्षेत्र भी शामिल था, विसंगतियों से निरपेक्ष नहीं था, तब मैं भी इसी क्षेत्र में आ गई। महत्त्वपूर्ण शर्त यह है कि व्यंग्य-लेखन में स्पष्ट विचारधारा अपरिहार्य शर्त होती है। साथ ही, देश और समाज की परिस्थितियों से जुड़ाव भी। अतः ज़रूरी है कि पहले हम अपने भीतर देखें।

साक्षात्कारकर्ता : व्यंग्य के अलावा आपने और किन विधाओं में लिखा?

साक्षात्कारदाता : साहित्यिक और समीक्षात्मक लेख, कहानियाँ, आकाशवाणी के लिए नाटक, वार्ताएँ आदि। अभी मेरा एक कहानी-संग्रह 'दीपशिखा' प्रकाशनाधीन है।

साक्षात्कारकर्ता : व्यंग्य-लेखन के दौरान आपको महिला होने के नाते क्या किसी अड़चन या अपमान का सामना करना पड़ा?

साक्षात्कारदाता : कभी अपमान नहीं हुआ, हमेशा बराबरी और सम्मान का दर्जा ही मिला।

साक्षात्कारकर्ता : व्यंग्य-लेखन हिंदी साहित्य की एक विधा माना जाता है। इसमें विचारकों के अपने-अपने मतभेद भी हैं। इस संदर्भ में आपके क्या विचार हैं ?

साक्षात्कारदाता : परसाई जी ने भी इसे स्पिरिट कहा है विधा नहीं। मगर जब समाजगत फैले आडंबर, राजनीति में फैलीं कलाबाज़ियाँ, आपसी द्वेष-भावना आदि भयंकर होने लगे, तब साधारण शैली का रचा गया साहित्य कमज़ोर

लगने लगता है। उस समय ज़रूरत होती है, ऐसे साहित्य की, जो विसंगतियों के विरोध में कलम चलाये। व्यंग्यात्मक रूप से प्रहार करे। गलत-को-गलत कहने का साहस रखे। ऐसा साहित्य जब बहुतायत में रचा जाने लगा, तब उसे विधा का दर्जा मिल गया। कहते हैं प्रभाव अकेले का नहीं समूह का पड़ता है। सो, आलम यह है कि आज कई लेखक व्यंग्यकार बन गए हैं। कहने में संकोच नहीं कि आज व्यंग्य-लेखन का साहित्य में सम्मान बढ़ा है।

साक्षात्कारकर्ता : वैश्विक धरातल पर साहित्य की किस विधा में व्यंग्य ज़्यादा सार्थक प्रतीत होता है?

साक्षात्कारदाता : देखिए, व्यंग्य समस्याओं से जुड़ा हुआ लेखन है। ये समस्याएँ हैं - नेताओं की कथनी-करनी में अंतर, युवाओं की बेरोज़गारी की बढ़ती दर, महिलाओं की आत्मरक्षा की समस्या, किसानों की समस्या, शिक्षा की समस्या, बढ़ती महँगाई, देश में फैलता कुर्सीवाद, समाज में फैले आडंबर आदि। पढ़े-लिखे होने के बाद भी आज का आदमी अंधविश्वास के काले दायरे से बाहर नहीं निकल पा रहा है। आज ताकतवर और साधन-संपन्न व्यक्ति भी अपने आपको देश से बड़ा मानने लगा है। परिवार टूट रहे हैं। देश-प्रेम दिखावा बनकर रह गया है। महिलाएँ जितनी आगे बढ़ी हैं, उतनी ही असुरक्षित भी हैं। दरबार में लगा न्याय का घंटा गायब हो गया है। आज की महँगी शिक्षा सिर्फ़ आदमी के परिचय को ऊँचा उठा रही है, मगर रोज़गार के सृजन में पीछे है। खाना महँगा हो गया है, मगर स्वास्थ्य गिर रहा है। शिक्षकों की संख्या बढ़ी है, मगर वे कक्षा में दिखाई नहीं देते। वृद्धाश्रम में भीड़ बढ़ रही है, मगर घर खाली हो रहे हैं। अतः कहने में संकोच नहीं है कि वैश्विक स्तर पर साहित्य में व्यंग्य की विधा संपन्न होती जा रही है। व्यंग्य-लेखन के लिए विसंगतियों के खाद-पानी की कमी नहीं है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए, तो आज व्यंग्य साहित्य का प्राण-तत्त्व माना जाने लगा है। उसके बिना साहित्य प्रभावहीन-सा लगने लगा है। आज का पाठक भी व्यंग्य-प्रेमी बन चुका है, क्योंकि व्यंग्य एक ताकतवर विधा है। वह रोतों को हँसाता है। कठोरता में करुणा पैदा करता है। गलत पर प्रश्न खड़े करता है। कमज़ोरों के प्रति संवेदना जगाता है।

साक्षात्कारकर्ता : छत्तीसगढ़ में लोक नाट्य विधा है 'गम्मत'। इसके बारे में आप क्या कहेंगी?

साक्षात्कारदाता : 'गम्मत' शब्द लोकनाट्य और नुक्कड़ नाटक जैसी विधाओं के लिए प्रयुक्त होता है। केवल छत्तीसगढ़ में ही नहीं, अन्य प्रदेशों में भी अलग-अलग नामों से प्रचलित हैं, क्योंकि नाटक इन्हीं का विकसित रूप है। 'गम्मत' का उद्देश्य भी लगभग व्यंग्य की तरह समाज के अशिक्षित वर्ग में फैली बुराइयों को सामने लाना होता है।

साक्षात्कारकर्ता : नुक्कड़ नाटक आपकी दृष्टि में किस हद तक सफल है ?

साक्षात्कारदाता : नुक्कड़ नाटक साहित्य में विकास की सीढ़ियों पर है। जब कोई साधन नहीं था, तब नुक्कड़ नाटक द्वारा लोगों के बीच पहुँचकर विचारों में जागृति लाने की कोशिश की जाती थी। आज साधन-संपन्नता है, तो बड़े-बड़े थियेटरों में नाटक होने लगे हैं। उनमें लाइट और आवाज़ की व्यवस्था भी होती है, इसलिए वे ज़्यादा प्रभावोत्पादक हो गये हैं।

साक्षात्कारकर्ता : हिंदी अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में लंबे समय तक आप सेवाएँ देती रही हैं। व्यंग्य को लेकर आप अपने विद्यार्थियों और पाठकों से क्या कहना चाहेंगी?

साक्षात्कारदाता : आज के डिजिटल युग में जहाँ पल-पल की खबरें पूरी दुनिया में फैल रही हैं, वहाँ किसी को कुछ कहने या बताने की आवश्यकता नहीं रही है। जो हम देखते हैं, जो हम सोचते हैं, वही स्थिति पूरे समाज की है। मगर हाँ, शोषण के विरोध में, कथनी-करनी के अंतर के विरोध में, आवाज़-से-आवाज़ मिलाना हम सबका दायित्व है। अधिकारों के प्रति सचेत रहना और देश के प्रति समर्पित नागरिक होने का आभास होना हमारा कर्तव्य है। एक शिक्षक होने के नाते अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहने के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित करना चाहिए।

साक्षात्कारकर्ता : कहानी को छोड़कर व्यंग्य-लेखन के क्षेत्र में आने का आपका क्या कारण है?

साक्षात्कारदाता : कहानियाँ ज़्यादातर यथार्थ के धरातल पर होने के बावजूद कल्पना तत्त्व और लेखक की मानसिक

दुनिया से जुड़ी होती हैं। मगर व्यंग्य ज़्यादातर यथार्थ जीवन के कठोर धरातल से जुड़ा होता है। उसका उद्देश्य मनोरंजन करना नहीं, समाज को जागृत करना होता है। अर्थात् समाज और राजनीति में फैली चाटुकारिता की प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, स्वार्थलिप्सा और शोषण की भी वह चिंता करता है। वह चाहता है कि आम आदमी को भी वे सभी अधिकार मिले, जो सामर्थ्य सम्पन्न व्यक्ति के पास होते हैं। वह चाहता है कि समाज में सद्भावना फैले और स्वार्थी प्रवृत्ति पर अंकुश लगे। वह चाहता है कि आपसी द्वेष और विरोधी प्रवृत्तियों से मुक्त समाज का अभ्युदय हो। वैसे तो हर साहित्यकार ही व्यक्ति, समाज और देश के लिए मंगल कामना करता है, मगर मुझे व्यंग्य विधा इस प्रवृत्ति के ज़्यादा नज़दीक लगती है।

साक्षात्कारकर्ता : आप व्यंग्य-लेखन में हास्य की उपस्थिति किस सीमा तक उपयुक्त मानती हैं ?

साक्षात्कारदाता : व्यंग्य विधा एक गंभीर विधा है। हास्य का पुट जहाँ तक सहायक के रूप में काम करें, वही तक मान्य होता है, क्योंकि हास्य का अतिरेक व्यंग्य को भोथरा बना देता है। व्यंग्य-लेखन एक ज़िम्मेदारीपूर्ण लेखन होता है। वह देश और समाज में होने वाली हर तरह की गतिविधियों से जुड़ा होता है। अतः उसे सार्थक और सफल बनाने के लिए विचारों के तराज़ू में तौलना पड़ता है। भोजन की थाली में चटपटा और मीठा उतना ही परोसा जाता है, जितना थाली में परोसे भोजन का स्वाद बढ़ाए। यही नाप व्यंग्य में हास्य के लिए होती है। अन्यथा, हास्य का अतिरेक नकार दिया जाता है।

साक्षात्कारकर्ता : आपका रचना-संसार बहुत व्यापक है। अपनी कृतियों का उल्लेख करें। साथ ही, रचना-अवधि का ज़िक्र भी करें।

साक्षात्कारदाता : मेरी लेखनी को सतत चलते हुए लगभग 50 वर्ष पूरे हो चुके हैं। एक निबंध-संग्रह के अतिरिक्त नौ व्यंग्य-संग्रह 'द्रोपदी का सफ़रनामा', 'प्रजातंत्र के घाट पर', 'बाकी सब ठीक है', 'बेला फूले आधी रात', 'लोनम् शरणम् गच्छामि', 'व्यंग्यकार का वसीयतनामा', 'सच बोले कौआ काटे', 'एक दीवार सौ अफ़साने' और 'लोकतंत्र का स्वाद' प्रकाशित हो चुके हैं। 'लाल रिबन वाली लड़की' नामक उपन्यास भी है। मैंने 'व्यंग्य शिल्पी लतीफ़ घोंघी' एवं 'छत्तीसगढ़ की नारी मन की कहानियों' का संपादन भी किया है। एक संदर्भ-ग्रंथ 'हिंदी काव्य का उद्भव एवं विकास' भी है। इसके अतिरिक्त एक कहानी-संग्रह 'दीपशिखा' प्रकाशनाधीन है। रेडियो नाटक एवं वार्ताएँ समय-समय पर देती रही हूँ।

अंत में, बस इतना ही कि जीवन-संघर्ष का ही दूसरा नाम स्त्री है। उसने संघर्ष करते हुए, न जाने कितनी सदियाँ पार की हैं। फिर भी स्त्री स्त्री ही रही। चाहे कालिदास की शकुंतला हो या आज अंतरिक्ष में उपलब्धियों के झंडे गाड़ने वाली कल्पना चावला। महाभारत की गांधारी हो या वर्तमान में न्याय की देवी उठो! स्त्री के शोषण की पट्टी खोलो। भयमुक्त, अन्यायमुक्त और शोषणमुक्त समाज को पैदा करो।

mrinalika.ojha@gmail.com

कथाकार विष्णु नागर से खेमसिंह डहेरिया की बातचीत

प्रो. खेमसिंह डहेरिया
भोपाल, भारत

साक्षात्कारकर्ता : आपके कथाकार बनने की क्या कोई ऐसी उल्लेखनीय पृष्ठभूमि है, जिसे आप व्यक्त करना चाहते हैं? आपने गद्य की इस विधा का चुनाव क्यों किया ?

साक्षात्कारदाता : कोई उल्लेखनीय पृष्ठभूमि नहीं। साहित्य विशेषतः कविता के प्रति मेरा लगाव किशोरावस्था में था। साथ में, कहानियाँ-उपन्यास भी खूब पढ़ता था। इस पृष्ठभूमि में कहानी लिखने की भी इच्छा हुई। लेकिन, मैंने शुरू से ऐसी कहानियाँ नहीं लिखीं, जैसी उस ज़माने में लिखी जाती थीं। उनमें काफ़ी वर्णनात्मकता होती थी। मुझे यह सब नहीं भाता था। अतः मैंने आरंभ में भी जो कहानियाँ लिखीं, 'जो आज का दिन' संग्रह में सम्मिलित हुईं, वे काफ़ी भिन्न हैं।

हर विधा का अपना महत्त्व तथा उसकी अपनी जगह होती है। जयशंकर प्रसाद, निराला से लेकर कुमार अंबुज, संजय कुंदन तक ने कहानियाँ लिखी हैं, पर वे मूलतः कवि हैं। कुछ बातें होती हैं, जो कहानी के माध्यम से ही बेहतर ढंग से कही जा सकती हैं।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आप किसी विचार को लेकर लेखन में अग्रसर हुए हैं अथवा जीवन के विविध पहलुओं, घटनाओं, चरित्रों से प्रेरित होते हैं ?

साक्षात्कारदाता : मैं किसी विचार को लेकर अग्रसर नहीं हुआ था, लेकिन धीरे-धीरे मार्क्सवाद के संपर्क में आया, उससे प्रभावित हुआ और अब भी हूँ, लेकिन विचारों का वास्तविक जीवन से विरोध नहीं होता क्या? प्रेमचंद या मुक्तिबोध की विचारधारा नहीं थी क्या? उन्होंने जीवन के विविध पहलुओं, घटनाओं, चरित्रों से प्रेरित होकर रचनाएँ नहीं लिखी हैं क्या? उनकी रचनाएँ विचारहीन हैं क्या? कोई रचनाकार क्या विचारहीन हो सकता है? विचारवान होना किसी भी रचना में बाधक नहीं होता है। अलबत्ता साधक होता है और किसी भी तरह की यांत्रिकता, रचना-विरोधी होती है।

साक्षात्कारकर्ता : आपका लेखन किस रचनाकार से प्रभावित और प्रेरित है या वह अन्वेषण से चलता है?

साक्षात्कारदाता : कोई भी रचनाकार, जब अपने समय के बड़े रचनाकारों को पढ़ता है, तब उनसे प्रभावित और प्रेरित भी होता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह उन प्रचलित लेखकों का अनुकरण करता है। हर रचनाकार अपना एक अलग रास्ता बनाने की कोशिश करता है। मैं प्रभावित और प्रेरित भी हूँ, मगर अन्वेषण के प्रति उत्सुक और खुला भी हूँ। शायद मेरी रचनाओं में आपको यह दिखे। रचना अन्वेषण करना ही तो है।

साक्षात्कारकर्ता : अपनी प्रमुख कहानियों एवं उनके समय और स्वरूप के बारे में बताइए?

साक्षात्कारदाता : मेरे लिए स्वयं यह कहना मुश्किल है कि मेरी कौन-कौन सी कहानियाँ प्रमुख हैं और कौन-सी अप्रमुख। मैं हर रचनाकार की तरह अपनी प्रत्येक रचना को गंभीरता से लेता हूँ। उनका समय हमारा समय है और उनका स्वरूप हमारे समय का स्वरूप है। मैंने प्राचीन कथारूपों का सहारा कहीं-कहीं ज़रूर लिया है, मगर अपने समय को नहीं छोड़ा है, जैसे 'खरगोश और कछुए' की कहानी एक प्रसिद्ध कथा है। उसका मैंने अनेक ढंग से पुनर्लेखन किया है। यह पुनर्लेखन आज के संदर्भ में किया है, जो रचना आज की नहीं है, वह किसी आने वाले समय की भी नहीं हो सकती।

साक्षात्कारकर्ता : आपकी सर्वाधिक प्रिय कहानी कौन-सी है और क्यों? क्या वह आपकी प्रतिनिधि कहानी भी है?

साक्षात्कारदाता : मैं जो लिख चुका हूँ, जो छप चुका है, उसके बारे में ज़्यादा नहीं सोचता। मैं अपने अतीत में नहीं जीता, अपने वर्तमान में जीता हूँ। वैसे किन्हीं कारणों से मेरी कहानी 'पैंट' ज़्यादा मशहूर हुई और 'ईश्वर की कहानियाँ' भी सराही गई। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, इसमें कोई एक अकेली कहानी नहीं है, अपितु करीब सौ कथाएँ हैं, जिनका केंद्रीय पात्र ईश्वर है। इन्हें आप मेरी प्रतिनिधि कहानी भी मान सकते हैं।

साक्षात्कारकर्ता : आपकी कथा-यात्रा के प्रमुख पड़ाव और मोड़ क्या हैं, जिसने आपको स्थानीय स्तर से, प्रादेशिक स्तर फिर राष्ट्रीय स्तर का कहानीकार बनाया है ?

साक्षात्कारदाता : मैं कहानियाँ तो चालीस वर्ष से ज़्यादा समय से लिखता आ रहा हूँ, छुटपुट कुछ कहानियाँ छपी भी। बाद में संग्रहों के रूप में वे सामने आईं। मेरी कथा-यात्रा में स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय जैसे पड़ाव और मोड़ नहीं हैं, मेरा प्रमुख पड़ाव यही है कि मैं कविता की तरह कहानी भी अपनी शर्त पर, अपने ढंग से लिखता हूँ, बने-बनाये फ्रेमवर्क की परवाह नहीं करता।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आपकी रचना-प्रक्रिया से किसी प्रकार का सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक बदलाव हिंदी पट्टी में परिलक्षित होता है ?

साक्षात्कारदाता : मुझे ऐसा कोई भ्रम नहीं है।

साक्षात्कारकर्ता : आपके लेखन का उद्देश्य क्या है ?

साक्षात्कारदाता : जीवन को समझना और उसे बदलने में अपनी तरह से और अपनी सीमा में योगदान देना। मुझे यह

कहने में आपत्ति नहीं कि मेरी सीमा बहुत छोटी है।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आप आधुनिक हिंदी कहानी के विकास क्रम में अपनी भूमिका से संतुष्ट हैं? आपकी भावी लेखन योजनाएँ क्या हैं ?

साक्षात्कारदाता : मैं नहीं जानता कि हिंदी कहानी के विकास क्रम में मेरी कहानियों का कोई योगदान है अथवा नहीं। अपनी भूमिका से मैं इसी हद तक संतुष्ट हूँ कि इतनी ही भूमिका निभाने की मुझमें क्षमता थी और उसका मैंने पूरा उपयोग किया। आगे भी मौका मिलेगा, तो करूँगा।

जहाँ तक जीवन की भावी योजना का प्रश्न है, तो कोई योजना नहीं है, मुझे योजना बनाये बिना लिखना पसंद है। कहानी-कविता लिखने की योजना बनाना तो मेरे ख्याल से संभव भी नहीं है।

khemsingh.deheriya@gmail.com

बाल-साहित्यकार डॉ. मंजरी शुक्ला के साथ साक्षात्कार

श्रीमती श्रीति रामफल
मॉरीशस

साक्षात्कारकर्ता : आप का जन्म कब और कहाँ हुआ?

साक्षात्कारदाता : मेरा जन्म लखनऊ में 30 मार्च, 1977 को हुआ था।

साक्षात्कारकर्ता : अपने बचपन और अपनी शैक्षणिक पृष्ठभूमि पर तनिक प्रकाश डालें।

साक्षात्कारदाता : मैंने अंग्रेज़ी साहित्य में पी.एच.डी. की है। मुझे जब भी अपना बचपन याद आता है, तब मुझे बहुत सारा प्यार नज़र आता है। पढ़ने-लिखने में, मैं हमेशा अच्छी रही, पर तब मुझे केमिस्ट्री देखकर पसीना आ जाता था। जितना मैं दाँत के डॉक्टर के यहाँ जाने में डरती थी, उतना ही केमिस्ट्री का खौफ़ था। सिर्फ़ केमिस्ट्री के पीरियड में ही मेरी हँसी पूरी तरह से बंद रहती थी। जैसे ही क्लास खत्म होती थी, मैं वापस वैसे ही चुलबुली लड़की बन जाती थी। मुझे हर बार टाइटल भी मेरे हँसने और खिलखिलाने के कारण ही मिलते थे।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आपके माता-पिता आपको लेखिका बनाना चाहते थे? साहित्य के क्षेत्र में आपका पदार्पण कैसे हुआ?

साक्षात्कारदाता : मम्मी-डैडी ने कभी अपनी कोई राय मुझ पर नहीं थोपी। जब माता-पिता बच्चे को उसकी रुचि के अनुसार कैरियर बनाने के लिए कहते हैं, तब बच्चे का मनोबल बहुत मज़बूत हो जाता है और वह अपने पंख पसारे ऊँचे आसमान तक उड़ता है। मैंने 'नंदन' में कहानी-प्रतियोगिता में कहानी भेजी थी और फिर उसमें प्रकाशित होने के बाद कहानियाँ लिखने का सिलसिला चल पड़ा। बचपन से ही किसी का दुख मुझसे कभी देखा नहीं जाता था। जब कोई रोता था, तब मैं उसके साथ रोना शुरू कर देती थी। मैंने मूक प्राणियों के लिए भी उनके खाने से लेकर, उनकी चिकित्सा तक की व्यवस्था की है। मम्मी कहती थी कि यह बड़ी होकर लेखिका बनेगी और इन असहाय और बेज़ुबान जानवरों के दुख-दर्द को कहानियों के माध्यम से लोगों तक पहुँचाएगी।

साक्षात्कारकर्ता : लेखन के अलावा आपके और क्या-क्या शौक हैं?

साक्षात्कारदाता : निब पेंटिंग, मार्बल पेंटिंग, बाटिक, नाइफ़ पेंटिंग, ऑयल पेंटिंग और ग्लास पेंटिंग भी मैंने खूब बनाई है। किताबें पढ़ने का शौक तो पागलपन की हद तक है। जब तक किसी पुस्तक के कुछ पन्ने दिन भर में नहीं पढ़ लूँ, तब तक ऐसा लगता है कि कहीं कुछ छूट रहा है। मैंने गायन में बी.ए. किया है। शास्त्रीय संगीत व्यक्ति को परमात्मा से जोड़ देता है। सुबह के राग सुनने से जो शांति और आनंद मिलता है, उसकी वजह से सारा दिन सुकून से गुज़रता है।

साक्षात्कारकर्ता : आप मुख्यतः एक कहानीकार हैं, क्या आप अन्य विधाओं में भी लिखती हैं?

साक्षात्कारदाता : मैंने कविता, लघुकथा, निबंध, आलेख

और शोध-पत्र भी लिखे हैं।

साक्षात्कारकर्ता : अपनी प्रकाशित पुस्तकों के बारे में बताइए? आपको अपनी कृतियों में सर्वाधिक श्रेष्ठ कौन-सी कृति लगती है? और आजकल आप क्या लिख रही हैं?

साक्षात्कारदाता : मेरी अब तक तेरह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सर्वाधिक श्रेष्ठ कृति तो इसलिए नहीं बता सकती हूँ, क्योंकि जो भी कहानी लिखती हूँ, सभी मेरे दिल के बहुत करीब होती हैं। मेरी एक कहानी है 'पार्वती आंटी।' यह कहानी मैंने किन्नर पर लिखी है। उस कहानी को कभी भी मैं पूरा पढ़कर किसी को नहीं सुना पाई, क्योंकि उसे पढ़ते समय मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। कई लोगों ने कहानी पढ़ी और उसके बारे में वीडियो बनाकर अपने विचार रखने का प्रयास किया, तो वे भी रिकॉर्ड नहीं कर सके। उन्होंने कहा कि उनका गला भर आया और वे बहुत रोए। 'पार्वती आंटी' कहानी मेरी पुस्तक 'स्वयंसिद्धा' में संकलित है। ऐसी ही एक कहानी है 'टॉफी', जिसमें एक छोटी-सी बच्ची है, जो तुतलाती है और बहुत गरीब है। वह अपने घर के सामने की दुकान पर रखे हुए काँच के मर्तबानों में रंग-बिरंगी टॉफ़ियों को देखती रहती है, पर उसकी मजबूरी है कि टॉफ़ी खरीदने के लिए उसके पास पैसे नहीं है। इस कहानी को लिखते समय भी मैं बहुत रोई हूँ। यह कहानी भी मेरे दिल के बहुत करीब है। इसी तरह से बहुत सारी कहानियाँ ऐसी हैं, जो मुझे बहुत पसंद है और लोगों को बहुत पसंद आई हैं। सर्वाधिक श्रेष्ठ तो मुझे लगता है ईश्वर अभी लिखवाएँगे। अब तक भी सब ऊपरवाले ने लिखवाया है। आजकल मैं बच्चों के लिए ही कहानियाँ लिख रही हूँ और एक नया बाल-उपन्यास मैंने शुरू किया है। ईश्वर चाहेगा, तो जल्दी ही पूरा होगा और आप सब के हाथों में आएगा।

साक्षात्कारकर्ता : आपको प्राप्त पुरस्कार और सम्मान के बारे में बताइए?

साक्षात्कारदाता : वर्ष 2011 से 2020 तक राज्यपाल श्री माता प्रसाद से 'लेखन पुरस्कार', सर्च फ़ाउंडेशन द्वारा 'बाल-साहित्यकार सम्मान', 'स्वतंत्रता सेनानी ओंकारलाल शास्त्री स्मृति पुरस्कार', 'राजीव गांधी एक्सेलेंस आवॉर्ड', 'पं. हरप्रसाद पाठक-स्मृति बाल-साहित्य सम्मान', 'डॉ. मनुमुक्त 'मानव' स्मृति' सम्मान', 'बाल-साहित्यगन्धा सम्मान', हरियाणा साहित्य अकादमी से 'फूलों के रंग पुस्तक' पर 'बाल-साहित्य पुरस्कार', उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'विद्यावती कोकिल पुरस्कार', अखिल भारतीय डॉ. कुमुद टिक्कू कहानी प्रतियोगिता में 'विशिष्ट कहानी पुरस्कार', 'पं. हरप्रसाद पाठक-स्मृति बाल-साहित्य सम्मान', 'सोहन लाल द्विवेदी पुरस्कार', 'श्री भगवती प्रसाद देवपुरा बालसाहित्य भूषण सम्मान', निर्मला स्मृति हिंदी साहित्य गौरव सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'सुभद्रा कुमारी चौहान महिला बाल-साहित्य' सम्मान, विद्या भारती संस्थान द्वारा 'संस्कृति भवन-साहित्य सेवा सम्मान' आदि से विभूषित हुई।

साक्षात्कारकर्ता : आप खुद इतनी बड़ी कथाकार हैं। बच्चों की कहानियाँ बहुत ही सहजता से लिख लेती हैं। हमारी उत्सुकता है कि आप खुद क्या पढ़ती हैं? आपके प्रिय कथाकार कौन हैं? और क्यों?

साक्षात्कारदाता : मैंने कृष्ण चन्दर, अमृता प्रीतम, महादेवी वर्मा, प्रेमचंद और भीष्म साहनी को बहुत पढ़ा है, क्योंकि मुझे समाज की सच्चाई दिखलाती मार्मिक कहानियाँ पसंद हैं।

साक्षात्कारकर्ता : आपकी पहली प्रकाशित रचना कौन-सी थी?

साक्षात्कारदाता : 'हो गई गिनती' नंदन में प्रकाशित हुई थी।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आप रेडियो में भी काम करती हैं?

साक्षात्कारदाता : मैं आकाशवाणी में उद्घोषक हूँ।

साक्षात्कारकर्ता : साहित्य और साहित्य की भाषा के विषय में आपका क्या विचार है?

साक्षात्कारदाता : साहित्य की कोई भी विधा जब तक सीधे और सरल शब्दों में नहीं लिखी जाएगी, तब तक पाठक उसे पसंद नहीं करेगा। लेखक अपनी कृति लिख लेता है, तो वह उसकी नहीं रह जाती, बल्कि समाज की हो जाती है।

साक्षात्कारकर्ता : वर्तमान में लिखा जा रहा बाल-साहित्य बालमन से कितना दूर है, कितना पास?

साक्षात्कारदाता : वर्तमान में बाल-साहित्य बच्चों तक प्रिंट मीडिया और डिजिटल मीडिया के द्वारा बड़ी आसानी से पहुँच रहा है। बच्चे कहानियों को पढ़ने में रुचि ले रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि बच्चा कहानियों से कभी दूर नहीं हो सकता है।

साक्षात्कारकर्ता : बच्चों को बाल-साहित्य से कैसे जोड़ा जाए?

साक्षात्कारदाता : भारत की पौराणिक कथाओं, मनोरंजक कहानियों और कविताओं से बच्चे बहुत खुश होते हैं और वे आसानी से बाल-साहित्य से जुड़ जाते हैं।

साक्षात्कारकर्ता : शिक्षा की बढ़ती व्यावसायिकता में बाल-साहित्य की स्थिति कैसी है?

साक्षात्कारदाता : नई शिक्षा-नीति के आने से हमारे बच्चे अब समाज के कई अनछुए पहलुओं को देखेंगे और पढ़ेंगे और बाल-साहित्य एक बार फिर बच्चों की पहली पसंद बनकर उभरेगा।

साक्षात्कारकर्ता : टी.वी. और इन्टरनेट बच्चों के लिए कितने हितकारी हैं?

साक्षात्कारदाता : "अति सर्वत्र वर्जयेत" अगर यह बात हम बच्चों को समझाएँगे, तो वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संतुलन बनाकर चलते हुए सदैव सफल होंगे।

साक्षात्कारकर्ता : पाश्चात्य संस्कृति बाल-साहित्य के लिए कितनी उपयोगी है?

साक्षात्कारदाता : पाश्चात्य संस्कृति में बाल-साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जाता है और उन पर फ़िल्में भी बनती हैं। वे जब हमारे यहाँ प्रसारित होती हैं, तब सभी बच्चे बड़े चाव से उन्हें देखते हैं। वहाँ का साहित्य अभी भी बच्चों को कल्पना-लोक की सैर कराता हुआ, उन्हें खुशनुमा बचपन देता है।

साक्षात्कारकर्ता : बाल हिंदी साहित्य का भविष्य आपको कैसा दिखता है?

साक्षात्कारदाता : साहित्य तो भारतीय संस्कृति की आत्मा है। जितना महत्वपूर्ण एक बच्चा होता है, उतना ही महत्वपूर्ण बाल-साहित्य भी होता है। बचपन को हम बाल-साहित्य से अलग नहीं देख सकते हैं और इसके लिए हमें बच्चों को पुस्तकें पढ़ने के लिए लगातार प्रेरित करते रहना होगा। बच्चे अगर बचपन में पुस्तकें पढ़ना शुरू कर देंगे, तो कल्पनाशीलता और रोचकता उनके जीवन का अभिन्न अंग बन जाएँगी और हमारा साहित्य सर्दियों की सुबह की कुनकुनी धूप के सुखद एहसास की तरह हर बच्चे को सुकून देता रहेगा।

साक्षात्कारकर्ता : साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय संस्थाओं के योगदान के बारे में आप क्या कहेंगी?

साक्षात्कारदाता : साहित्य के क्षेत्र में बहुत सारी ऐसी संस्थाएँ हैं, जो साहित्यकारों के सृजन को समाज के सामने लाती हैं। उन्हें उनकी कृतियों के लिए सम्मानित करती हैं और पुस्तकें भी प्रकाशित करवाती हैं। मुझे लगता है, साहित्य को समाज तक पहुँचाने का काम भी ये संस्थाएँ बखूबी करती हैं और साहित्य जगत को समृद्ध करती हैं।

साक्षात्कारकर्ता : 'रिमझिम' पत्रिका के बारे में आपका क्या विचार है?

साक्षात्कारदाता : 'रिमझिम' पत्रिका मनोरंजक होने के साथ-साथ ज्ञानवर्धक पत्रिका है। कविताएँ, कहानियाँ, लेख, समीक्षा और पहेलियाँ इसके मुख्य आकर्षण हैं। बच्चों के मनोविज्ञान को प्रभावित करती हुई, यह एक सम्पूर्ण पत्रिका है।

साक्षात्कारकर्ता : नये लोग जो साहित्य के क्षेत्र में आना चाहते हैं, उनके लिए क्या कहेंगी?

साक्षात्कारदाता : नए रचनाकारों को मैं कहना चाहूँगी कि साहित्य हमें अपनी खुशी के लिए लिखना है, तो मन में उस समय प्रकाशित होने की भावना को नहीं आने देना चाहिए। लेखनी मन के भावों के साथ सरल शब्दों में जब भावों को उकेरती है, तब कहानी का जन्म होता है। जब हम अपनी खुशी के लिए लिखते हैं, तब वह रचना सभी के दिलों को छूती है। इसलिए कहानी की सादगी उसकी सबसे बड़ी विशेषता होनी चाहिए। किसी कहानी की स्वीकृति या अस्वीकृति से नहीं घबराते हुए, स्वयं की प्रसन्नता के लिए लिखते रहना चाहिए।

साक्षात्कारकर्ता : अंतिम प्रश्न, मॉरीशस के पाठकों के लिए आपका संदेश?

साक्षात्कारदाता : मॉरीशस बहुत सुंदर है। यह एक

बेहद खूबसूरत देश है, जो झील-झरनों से भरा हुआ है। यहाँ के लोग बहुत ही सीधे, सरल और धार्मिक हैं और पल भर में ही सबको अपना बना लेते हैं। जो लोग वहाँ से लौटकर आते हैं, वे मॉरीशस के बारे में बताते हैं कि उन्हें लगा ही नहीं कि वे किसी दूसरे देश गए थे, बल्कि उन्हें लगा कि वे भारत में ही थे। मॉरीशस के लोगों की यही सादगी सभी को अपना बना लेती है और दोनों देशों के बीच दोस्ती का रिश्ता कायम रखती है।

साक्षात्कारकर्ता : मंजरी जी आपसे बात करके मैं बहुत खुश हुई। आपने साक्षात्कार के लिए समय निकाला, मैं आपकी बहुत आभारी हूँ । इसके लिए बहुत धन्यवाद!

साक्षात्कारदाता : मैं भी बहुत आभारी हूँ। दोबारा और ज़्यादा बात करेंगे। आपको भी धन्यवाद!

एक प्रमुख हिंदी लेखक के साथ साक्षात्कार

श्रीमती मधु कुमारी चौरसिया
यू.के.

विदेशों में हिंदी लेखन और हिंदी के प्रचार और प्रसार की चर्चा हो, तो सबसे पहले मेरे ज़ेहन में दिव्या माथुर का नाम आता है, एक ऐसा नाम, जिसे सुनते ही बरबस सुभद्रा कुमारी चौहान, अमृता प्रीतम और महादेवी वर्मा जैसी प्रतिष्ठित लेखिकाओं की यादें तरोताज़ा हो जाती है। आधुनिक युग की वह एक बेहतरीन रचनाकार हैं, जिनकी कविताओं, कहानियों, नाटकों और उपन्यासों में हमेशा एक अनोखापन देखने को मिलता है, जिन्हें जितना पढ़ा जाए, जिज्ञासा और बढ़ती जाती है। उनकी लोकप्रियता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि उनकी रचनाओं का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया है और उन्हें कई साहित्य सम्मानों से नवाज़ा जा चुका है। उनकी कहानी 'साँप सीढ़ी' पर भारत के प्रसिद्ध टीवी चैनल दूरदर्शन ने टेली-फ़िल्म का भी प्रसारण किया है। दिव्या वातायन-यूके की संस्थापक हैं, जो हिंदी प्रेमियों के लिए एक अनोखा मंच है। जहाँ हर शनिवार एक से एक साहित्यकार को सुनने-समझने का अवसर मिलता है। वे युवा पीढ़ी को आगे आने के लिए हमेशा प्रेरित करती हैं। डॉ. निखिल कौशिक द्वारा निर्मित 'घर से घर तक का सफ़र : दिव्या माथुर' को विभिन्न फ़िल्म-फ़ेस्टिवल्स में शामिल किया जा चुका है। कैंसर जैसे विषय पर भी उन्होंने सृजनात्मक-कार्य किया है।

इस साक्षात्कार के ज़रिए हम उनकी ज़िंदगी से जुड़े बहुत से रोचक और प्रेरणादायी तथ्यों से अवगत होंगे।

साक्षात्कारकर्ता : आपको साहित्य-लेखन की प्रेरणा कहाँ से मिली?

साक्षात्कारदाता : सौभाग्यवश, मेरा जन्म एक साहित्यिक और संगीत-प्रेमी संयुक्त परिवार में हुआ, जहाँ नियमित रूप से संगीत और नृत्य की महफ़िलें जमती थीं, कभी-कभी नाटकों का भी मंचन होता था। मेरे दादा का बड़े-बड़े शायरों के बीच उठना-बैठना था। हालाँकि तब मैं बहुत छोटी थी। बच्चों के लिए तरह-तरह के खेलों का प्रबंध किया जाता और हर शाम हमें कहानियाँ सुनाई जाती थीं। उस समय की लड़कियाँ आमतौर पर संगीत और नृत्य सीखने नहीं जाती थीं, किन्तु हमें घर में ही हारमोनियम, ढोलक, तबला और बाँसुरी जैसे वाद्ययंत्र सिखाये जाते थे। मेरे दादा, बिशन दयाल 'शाद' मुगल आर्टिस्ट और मशहूर शायर थे, जिनका उठना-बैठना दिल्ली के नामी शायरों में होता था।

स्कूल में तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, महादेवी वर्मा और निराला को भी मैंने पढ़ा। अंग्रेज़ी साहित्य की छात्रा होने के नाते मैं ब्रौंटे-सिस्टर्स, ईडिथ नेसबिट, जेन ऑस्टिन, बारबरा कार्टलैंड आदि से प्रभावित रही। हालाँकि हिंदी साहित्य में मेरी रुचि जगाई वृन्दावन वर्मा के उपन्यास 'मृगनयनी' ने। ब्रिटेन में बसने के बाद मैंने 'औडिसी' और 'आशा' कहानी-संग्रह अनुदित किए, जिसके बाद मैं ब्रिटेन और अमेरिका की लेखिकाओं के सम्पर्क में आई। 1984 में मैं भारतीय उच्चायोग से जुड़ी और 1992 में नेहरू सेंटर में वरिष्ठ पदाधिकारी के तौर पर मैंने कार्य किया। यहाँ अपने देश की कला और संस्कृति को विदेश की

सरज़मीं पर आगे बढ़ाने का अवसर मिला।

साक्षात्कारकर्ता : आपने विश्व प्रसिद्ध नेत्र केंद्र में एक चिकित्सा सचिव के रूप में अपनी जीविका की शुरुआत की, आप नेहरू सेंटर-लंदन में आकर 25 वर्षों तक भारत और ब्रिटेन के मध्य कला और संस्कृति के माध्यम से संवाद स्थापित करने में जुड़ी रहीं। इन अंतर्विरोधी गतिविधियों का राज़ क्या है? कैसे तालमेल बैठा लेती हैं?

साक्षात्कारदाता : मुझे कला पसंद थी, इसलिए आशुलिपि के स्ट्रोक्स जब सुंदर आकृतियों में ढलते, तब एक गुप्त और निराली भाषा का निर्माण होता, जो केवल लिखने वाला समझ सकता है। मुझे यह कला बहुत पसंद आई, आई.टी.आई. में मुझे स्कॉलरशिप मिला। भिन्न-भिन्न लोगों से मिलने-जुलने से भी ऐसी ही सुन्दर आकृतियों का निर्माण होता है, जिनसे आप सीखते हैं, सिखाते हैं, मेरे लिए यह एक अनिर्वचनीय सुख है।

मुझे ऊर्जा मिलती है, नई प्रतिभाओं से, कुछ को मैं ढूँढ लेती हूँ, कुछ मुझे ढूँढ लेते हैं। नेहरू-केंद्र में भी मैंने बहुत-सी नयी प्रतिभाओं को मंच दिया, वे मुझे आज भी स्नेह और सम्मान देते हैं। मेरे लिए यही सबसे बड़ा पुरस्कार है।

साक्षात्कारकर्ता : अब तक आपकी कुल कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं?

साक्षात्कारदाता: अब तक मेरे आठ कहानी-संग्रह और आठ कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। एक उपन्यास 'शाम भर बातें' जो दिल्ली विश्विद्यालय के बी.ए.-ऑनर्स पाठ्यक्रम में शामिल है। मैंने बहुत-सी पुस्तकों का अनुवाद और सम्पादन किया है।

साक्षात्कारकर्ता : आप काव्य-लेखन में ज़्यादा सक्रिय हैं या कहानी अथवा उपन्यास-लेखन में।

साक्षात्कारदाता : सबसे पहले मैंने कविताएँ लिखनी शुरू कीं और कई संग्रहों के बाद, मुझे एहसास हुआ कि मैं गद्य में बेहतर हूँ। मुझे कहानियाँ लिखना बेहद पसंद है, जो आमतौर पर बहुत लंबी होती हैं। मेरी हर कहानी में एक उपन्यास की क्षमता होती है।

साक्षात्कारकर्ता : आपको अपनी कौन-सी रचना सबसे ज़्यादा प्रिय है और क्यों?

साक्षात्कारदाता : लेखक को अपनी सभी रचनाएँ प्रिय होती हैं, किंतु विदेश में आने के बाद मेरी पहली कहानी '*बचाव*" का ताना-बाना एक लंबे अर्से पहले बुना गया था। 1985 में जब मैं लंदन आई, तब कुछ वर्ष वैम्बली में ठहरी थी, जो मूलतः एक गुजराती इलाका है। मेरे लिए यह एक जद्दोजहद का समय था, जब मैं दो बच्चों के साथ विदेश में अपने पाँव जमाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थी। मेरे लम्बे सरकारी अनुभव को मद्देनज़र रखते हुए, मुझे भारत भवन में कॉन्टिन्जेंसी क्लर्क के रूप में भरती कर लिया गया। इस दौरान जिन युवक-युवतियों के संपर्क में मैं आई, यह कहानी उन्हीं के अनुभवों पर आधारित है। इस कहानी की नायिका डरपोक भी है और दिलेर भी, मेहनती भी और विवेकशील भी। हार न मानने वाली एक सकारात्मक युवती, एक युवती जो किसी कारणवश अपना देश तो छोड़ आई, किन्तु अपनी संस्कृति, कला और भाषा को नहीं भूल पाई। इस कहानी का नाटकीय अंत मुझे एक अफ़्रीकन कथा के माध्यम से सूझा। मैंने सुना था कि वहाँ की स्त्रियाँ, अपने पथभ्रष्ट पतियों के लिंग काट देती हैं।

साक्षात्कारकर्ता : साहित्य-लेखन से जुड़ा कोई अनुभव साझा करना चाहेंगी?

साक्षात्कारदाता : यूँ तो बहुत से दिलचस्प किस्से हैं, अभी हाल ही में भोपाल में मुझे 'प्रथम वनमाली कथा पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इस समारोह में मंच पर मेरी बगल में ही गीतांजली श्री बैठी थीं, तब तक मैं उन्हें जानती तक नहीं थी। एक और अनुभव साझा करना चाहूँगी। मेरी दो पुस्तकों का लोकार्पण अक्षरा थियेटर में हुआ। मेरी कहानी '2050' का अनिल जोशी द्वारा किए गए नाट्य रूपांतरण, 'इदम पूर्णम' की वयम नाट्य संस्था द्वारा अद्भुत प्रस्तुति की गई, जिसने मुझे अभिभूत कर दिया था।

साक्षात्कारकर्ता : आपका लेखन काल्पनिक ज़्यादा है या वास्तविक?

साक्षात्कारदाता : कहानी को यदि जीवित और आकर्षक बनाए रखना है, तो यथार्थ से मुक्ति हमारी रचनात्मक आवश्यकता है। हम यह मानकर चलें कि यथार्थ कहानी नहीं होता, कहानी में यथार्थ होता है। यथार्थ से छेड़छाड़ के बिना

गद्य तो संभव है, पर गल्प नहीं।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आप अपनी पुस्तक पर फ़िल्म बनते देखना पसंद करेंगी। यदि हाँ तो किस अभिनेता या अभिनेत्री को आप मुख्य किरदार में देखना पसंद करेंगे?

साक्षात्कारदाता : क्यों नहीं? यदि मेरे उपन्यास या कहानी पर कोई फ़िल्म बनती है, तो इसमें मैं मशहूर अदाकारों के स्थान पर अच्छे और प्रतिभाशाली अभिनेता या अभिनेत्री को देखना पसंद करूँगी।

साक्षात्कारकर्ता : अपनी कुछ पसंदीदा पुस्तकों के विषय में बताइए।

साक्षात्कारदाता : हाल ही में डॉ. अरुणा अजितसरिया ने मुझसे एक प्रश्न किया था कि यदि मैं किसी निर्जन टापू में फँस जाऊँ, जहाँ केवल एक ही पुस्तक आपके पास हो, तो वह कौन-सी होगी? बहुत माथापच्ची के बाद मैंने रामचरितमानस को चुना, जिसे मैंने 10 वर्ष की उम्र से नियमित रूप से सुना-पढ़ा है, गा-बजाकर अखंड पाठ भी किया है। वैसे तो मुझे सभी जासूसी उपन्यास पसंद हैं - अगाथा क्रिस्टी की 'मर्डर ऑन दि ओरिएंट एक्सप्रैस', 'वेरा' इत्यादि, किंतु ऑस्कर वाइल्ड, ब्रौंटे-सिस्टर्स, ईडिथ नेसबिट, जेन ऑस्टिन, अलैक्ज़ैंडर पोप, कीट्स, वर्ड्सवर्थ और मिल्टन तो पसंद हैं ही। 'फ़ैब' क्लब से जुड़ने के बाद, अलिफ़ शफ़क, पाओलो कोहलो, विलियम डैलरिम्पल, मार्खेज़ आदि की पुस्तकें पढ़ीं। लगभग सभी प्रवासी लेखकों के अतिरिक्त मुझे चित्रा मुद्गल, डॉ. असगर वजाहत, नासिरा शर्मा, ममता कालिया, प्रियदर्शन, लीलाधार मंडलोई, डॉ. सूर्यबाला, अनामिका, इत्यादि पसंद हैं।

साक्षात्कारकर्ता : आज के इलेक्ट्रॉनिक युग में किताबें कितनी महत्त्वपूर्ण हैं... साहित्य के क्षेत्र में पाठकों का रुझान कम देखने को मिल रहा है, इसपर आपकी क्या राय है।

साक्षात्कारदाता : किताबों का महत्त्व कभी कम नहीं हो सकता, खासतौर पर विदेशों में। इलेक्ट्रॉनिक युग में किताबें भले ही ऑनलाइन उपलब्ध हों, लेकिन पढ़ने वालों की संख्या में कमी नहीं हुई है।

साक्षात्कारकर्ता : साहित्य-लेखन के लिए क्या साहित्यिक परिवेश होना ज़रूरी है। युवा साहित्यकारों को साहित्य के क्षेत्र में कैसे प्रेरित किया जा सकता है।

साक्षात्कारदाता : साहित्य के क्षेत्र में हर किसी का स्वागत है। आप किसी भी विषय में पारंगत हों, साहित्य के प्रति यदि आप लगाव रखते हैं, तो आप इस क्षेत्र में भी सफलता के शिखर पर पहुँच सकते हैं। युवा साहित्यकारों को इसके लिए मंच प्रदान करना होगा। उन्हें अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करना होगा।

साक्षात्कारकर्ता : इन दिनों ऑनलाइन कार्यक्रमों का आयोजन आए दिन देखने को मिल रहा है, क्या ये साहित्य के क्षेत्र में अहम् भूमिका निभा रहे हैं?

साक्षात्कारदाता : मुझे याद है जब साल 1985 में मैं लंदन पहुँची तब हर कार्यक्रम में यही सुनने को मिलता था कि हिंदी अब मरण-शैय्या पर है। अब साल 2022 चल रहा है, आजकल जितने ऑनलाइन कवि और कथा-सम्मेलन ब्रिटेन और अमेरिका में हो रहे हैं, शायद ही कभी हुए हों। भारतवंशियों के सरोकार, विषय, परिवेश, पात्र, सोच, संकल्प, विकल्प सब अलग होते हैं, क्योंकि उनकी जीवन-शैली अलग है और ऑनलाइन के माध्यम से ही उनका परिचय अन्तर्राष्ट्रीय पाठकों से हुआ।

ऑनलाइन कार्यक्रमों ने युवा पीढ़ी को काफ़ी प्रेरित किया है। उन्हें कई दिग्गज साहित्यकारों से आए दिन रूबरू होने का मौका प्रदान किया है। आजकल इंटरनेट से पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं, फ़ेसबुक के माध्यम से संपर्क सुलभ हैं, किन्तु अपनी विशिष्टता बनाए रखना आवश्यक है। हमें अपने को पश्चिम का अंधानुकरण करने से रोकना होगा। साहित्य को राजनीति से दूर रखना होगा और प्रतिभाशाली युवाओं को आगे लाना होगा और उचित मंच प्रदान करना होगा।

साक्षात्कारकर्ता : आप साहित्य के क्षेत्र में 'वातायन' नामक कार्यक्रम का आयोजन कई वर्षों से इंग्लैंड में करती आई हैं, जो साहित्य प्रेमियों के लिए एक अच्छा प्लेटफ़ोर्म माना जाता है। इसे आप किस मुकाम पर देखना चाहती हैं?

साक्षात्कारदाता : अगले वर्ष वातायन की स्थापना के 20 साल पूरे होने वाले हैं। लॉकडाउन के दौरान हमने दुनिया भर

के दर्शकों के लिए 120 से अधिक सार्थक कार्यक्रम आयोजित किए हैं। 2004 में एक वार्षिक वातायन कविता पुरस्कार भी स्थापित किया गया, जिसमें अब तक डॉ उषा प्रियंवदा, मनोज मुंतशिर, जावेद अख्तर, निदा फाज़ली, प्रसून जोशी, राजेश रेड्डी, कुँवर बेचेन, प्रो. पुष्पिता अवस्थी और लक्ष्मीशंकर बाजपेई को पुरस्कृत किया जा चुका है। प्रवासी कवियों के तीन संकलन प्रकाशित हुए हैं। राधिका चोपड़ा द्वारा गाये गए प्रवासी कवियों के गीतों /गज़लों का एक एल्बम 'वतन की खुश्बू' जारी की गई। 2015 में आर्ट्स कॉउंसिल ऑफ़ इंग्लैंड ने मुझे कहानी/कविता संकलनों के सम्पादन के लिए आमंत्रित किया था। परिणामस्वरूप, 'देसी गर्ल्स प्रवासी भारतीय लेखिकाओं की कहानियाँ', 'वतन की खुशबू प्रवासी कवियों की हिंदी/उर्दू/पंजाबी रचनाओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद, 'इक सफ़र साथ-साथ', 'विदेश में बसी भारतीय लेखिकाओं की कहानियाँ', मराठी में अनुवादित एक संग्रह और वंशी माहेश्वरी के सह-सम्पादन में 'तनाव' प्रकाशित हुए हैं।

सदा कुछ-न-कुछ नया करने का प्रयत्न रहता है, हमने स्ट्रैटफ़ोर्ड-अपॉन-एवन में शेक्सपियर के घर पर, सेंट-अल्बान्स और कीट्स हाउस-हैम्पस्टेड एवं रोमन-वेरुलेमियम आदि में कविता-पिक्निक्स आयोजित की हैं, जो आज तक याद की जाती हैं। स्थानीय प्रतिष्ठित लेखकों की मेज़बानी के अतिरिक्त विविध अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक संघों - जयपुर लिटरेचर फ़ेस्टीवल, अलीगढ़ मुस्लिम अलुम्नाई, इल्मी मजलिस, इन्फ़ोकास, एशिया हाउस, भवन और नेहरू केंद्र-लंदन की सहभागिता में गालिब, दक्खिनी, मौलाना आज़ाद और सूफ़ी वॉइसेज़, इनर लाइफ़ ओफ़ ट्रांसलेशन आदि अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया है।

साक्षात्कारकर्ता : आजकल आप क्या लिख रही हैं?

साक्षात्कारदाता : वातायन के साप्ताहिक कार्यक्रमों में इतनी व्यस्त रहती हूँ कि अधिक लिखना नहीं हो पा रहा है, किंतु फिर भी एक उपन्यास, 'तिलिस्म' और एक बाल उपन्यास तथा 'बिन्नी बुआ का बिल्ला' प्रकाशनाधीन हैं।

साक्षात्कारकर्ता: हार्दिक शुभकामनाएँ दिव्या जी, नयी पुस्तकों का इंतज़ार रहेगा। आपके अब तक के साहित्यिक सफ़र के बारे में हमें बहुत कुछ जानने-समझने का मौका मिला। आपको अनंत शुभकामनाएँ!

संजीव जायसवाल 'संजय' के साथ साक्षात्कार

श्रीमती रीता कौशल
ऑस्ट्रेलिया

साक्षात्कारकर्ता : संजीव जी आपकी पहचान एक बाल-साहित्यकार के रूप में स्थापित कर दी गई है, किंतु आपने अन्य विधाओं में भी विपुल मात्रा में उच्चकोटि का साहित्य रचा है। ऐसे में आपको अपने पर लगी बाल-साहित्यकार की मुहर कितनी न्यायसंगत लगती है?

साक्षात्कारदाता : गुरुदेव टैगोर, मुंशी प्रेमचंद और भारतेंदु जैसे विद्वान मेरे आदर्श रहे हैं। इन सबने प्रौढ़ साहित्य के साथ-साथ प्रचुर मात्रा में बाल-साहित्य भी लिखा है। साहित्य मेरे लिए साधना है, अतः मैं भेद नहीं कर पाता कि साहित्य की इस विधा की पूजा करूँगा और इसकी नहीं। मैंने विपुल मात्रा में प्रौढ़-साहित्य सृजित किया है, किन्तु वह मेरी आत्म-संतुष्टि के लिए है। जबकि बाल-साहित्य का सृजन, मैं अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी समझकर करता हूँ। समाज ने हमें बहुत कुछ दिया है, अतः हमारी भी ज़िम्मेदारी है कि हम समाज के लिए कुछ करें।

एक साहित्यकार के रूप में, मैं बाल-साहित्य के माध्यम से बच्चों का मनोरंजन करने के साथ उन्हें अच्छे संस्कार देने की कोशिश करता हूँ। यह मेरी ही नहीं, बल्कि पूरे साहित्य-जगत् की त्रासदी है कि बाल-साहित्य को स्पर्श करने वाले लेखक पर 'बाल-साहित्यकार' का ठप्पा लगाकर उसे अलग-थलग करने की कोशिश की जाती है। एक साहित्यकार के लिए तो यह पीड़ादायक है ही, साथ ही साहित्य के लिए भी नुकसानदायक है, क्योंकि इसके चलते अब स्थापित साहित्यकारों ने बाल-साहित्य से अघोषित दूरी बना ली

है। श्रेष्ठ साहित्य पढ़ने की ललक पाठकों में बालपन से विकसित करनी होती है, अतः इसका बीजारोपण करने वाले साहित्यकार पर कोई 'ठप्पा' लगाकर उसे दोयम दर्जे का मानने की मानसिकता समाप्त होनी चाहिए।

साक्षात्कारकर्ता : बिल्कुल सही कहा आपने। इतना ही नहीं सम्पूर्ण हिंदी साहित्य विभिन्न विमर्शों जैसे स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, किन्नर-विमर्श और भी न जाने कितने ही विमर्शों की सीमाओं में बँधा है। क्या आपको इन विमर्शों में कोई सार्थकता या उपयोगिता नज़र आती है?

साक्षात्कारदाता : स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श इत्यादि आंदोलनों के रूप में शुरू हुए थे। यह समय की आवश्यकता थी और इसके तत्कालीन लाभ भी हुए थे। किन्तु साहित्य में इन विमर्शों के साथ अक्सर भोगा हुआ यथार्थ भी जुड़ जाता है, तब समस्या उत्पन्न हो जाती है। जब विमर्शों को केंद्र में रखकर सृजन किया जाता है, तब कई बार रचनाकार पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हो, अन्याय का प्रतिकार करते-करते अन्य चरित्रों और कभी-कभी कथानक के साथ भी अन्याय करने लगता है। मैं किसी कृति या रचनाकार का नाम लेकर किसी विवाद को जन्म नहीं देना चाहता। हालाँकि मुझे लगता है कि इन विमर्शों के तत्कालीन लाभ अवश्य हुए होंगे, लेकिन अब किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से विलग होकर सृजन करना ही श्रेयस्कर होगा।

विमर्शों के चलते साहित्य में खेमेबाजी की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा मिलता है, जो कि आत्मघाती है। इसके अलावा साहित्य में लिंग या जाति के आधार पर भेद करना या रचना की उत्कृष्टता का आकलन करना भी उचित नहीं होता। मेरी कई कहानियाँ 'गुरुदक्षिणा', 'वनवास' 'अकेली नहीं भोगूँगी', 'सोने का पिंजरा', 'असंतुलित रथ का हमसफ़र' इत्यादि स्त्री-विमर्श पर हैं। 'क्रांति शुरू होती है' स्त्री-विमर्श के साथ-साथ दलित-विमर्श पर आधारित हैं। मैं इन दोनों समुदायों का नहीं हूँ, किन्तु इससे न तो मेरी रचना कमतर हो जाती है और नाही इन विषयों पर सृजन का मेरा अधिकार क्षीण हो जाता है।

साक्षात्कारकर्ता : आपकी इन सभी कहानियों की नायिकाएँ अपनी समस्याओं से विचलित होकर रोती-कलपती नहीं हैं, बल्कि उनका डटकर मुकाबला करती हैं। ऐसी स्वयंसिद्धा किरदारों को इतनी सशक्तता के साथ प्रस्तुत कर पाने की सक्षमता के पीछे आपका क्या मनोविज्ञान रहता है?

साक्षात्कारदाता : ''अबला जीवन हाय तेरी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी'' ये पंक्तियाँ मुझे बचपन से विचलित करती रही हैं। पुरुष सबल होने के लिए धन, शक्ति, और शिक्षा की कामना रखता है और इसे हासिल करने के लिए नारी शक्तियों की प्रतीक लक्ष्मी, दुर्गा एवं सरस्वती की उपासना करता है। किन्तु इनके हासिल होते ही हर युग में वह नारियों का ही दमन और शोषण प्रारंभ कर देता है। मुझे यह दोगलापन स्वीकार्य नहीं है। इसके अलावा 'साहित्य समाज का दर्पण है' उक्ति अपनी जगह सही होगी, लेकिन मैं अपने आप को इससे भी पूरी तरह सहमत नहीं कर पाता। यदि समाज में जो घटित हो रहा है, वही साहित्य में परिलक्षित हो, तो साहित्य की अपनी उपयोगिता और उपादेयता क्या है?

साहित्य की भूमिका समाज को 'प्रतिबिंब दिखाना' नहीं, बल्कि समाज को 'आईना दिखाना' होना चाहिए और एक साहित्यकार का कर्तव्य समाज को दिशा दिखलाना होना चाहिए। इसीलिए मेरी नायिकाएँ न तो पलायन करती हैं, नाहीं घुट-घुटकर आँसू बहाती हैं, बल्कि अन्याय का डटकर मुकाबला करती हैं। 'क्रांति शुरू होती है' कहानी में ठेठ गाँव की महिला दुलारी अपना बलात्कार करने वाले बाहुबली विधायक के खिलाफ़ चुनाव में क्रांति का शंखनाद करती है कॉर्पोरेट जगत की कहानी 'सोने का पिंजरा' में उच्च शिक्षित नायिका दीपा स्वयं की कम्पनी खड़ी कर, अपना शोषण करने वाले रोहित को आकर्षक पैकेज के लोभ में बाँधकर पिंजरे में कैद कर तड़पने के लिए छोड़ देती है।

मैंने सदैव नारी के शक्ति रूप को ही चित्रित किया है। यदि मेरी कहानियों को पढ़ किसी एक भी महिला को अन्याय के विरुद्ध लड़ने का हौसला मिल सका, तो मैं अपने लेखन को सार्थक समझूँगा।

साक्षात्कारकर्ता : आप पिछले चार दशकों से साहित्य-सृजन कर रहे हैं। इन चार दशकों में आपकी

साहित्यिक-यात्रा में विभिन्न पड़ाव आए होंगे, यदि सम्भव हो, तो कोई रोचक प्रसंग हमसे साझा कीजिए।

साक्षात्कारदाता : रोचक प्रसंग तो कई हैं, लेकिन एक प्रसंग मैं आपसे ज़रूर साझा करना चाहूँगा। मेरी श्रीमती जी की एक सहकर्मी, जिनका नाम दीपा है, ने एक बार उनसे कहा, "लगता है तुम्हारे पति के जीवन में दीपा नाम की कोई लड़की रही है, तभी उनकी ज्यादातर कहानियों की नायिका दीपा होती है।" श्रीमती जी ने जब यह बात मुझे बताई तो मैं चौंक पड़ा और उस दिन पहली बार एहसास हुआ कि मेरी जितनी भी अच्छी नायिका प्रधान कहानियाँ हैं, उन सबकी नायिका का नाम दीपा ही है।

'उड़ान', 'प्रतिशोध', 'मंजिल के करीब', 'सिसकता-आसमान', 'सिंदूर', 'गुरुदक्षिणा' आदि सभी की नायिकाएँ दीपा ही थीं? ऐसा क्यों हुआ? मैं नहीं जानता। मेरी श्रीमती जी की इन्हीं सहकर्मी ने एक बार यह बात पत्र के माध्यम से भी पूछी थी। मैंने उन्हें लिखित उत्तर भिजवाया कि जैसे सलीम-जावेद साहब की हिट फिल्मों में अमिताभ जी का नाम हमेशा विजय रहता था, वैसे ही मेरी कहानियों की नायिका दीपा रहती है। शायद मेरी दीपा के साथ कोई ट्यूनिंग है और वह मेरे अंतर्मन की बातें जानती है। इसीलिए मैं जैसा सोचता हूँ और चाहता हूँ दीपा वैसा करती रहती है।

खैर इस घटना के पश्चात मैंने अपनी नायिकाओं का नाम दीपा रखना बंद कर दिया। किंतु आश्चर्य! उसके पश्चात मैं कोई अच्छी नायिका प्रधान कहानी नहीं लिख सका। वर्षों बाद मेरी दो कहानियाँ 'सोने का पिंजरा' और 'असंतुलित रथ का हमसफ़र' काफ़ी चर्चित हुईं। एक दिन, मैंने गौर किया कि अनजाने में ही सही, पर इन दोनों कहानियों की नायिकाएँ एक बार फिर दीपा ही थीं। ऐसा क्यों होता है? दीपा का मेरे साथ क्या नाता है? मैं नहीं जानता।

प्रसंगवश मेरे बचपन, स्कूल, कॉलिज, ऑफ़िस या दोस्तों में दीपा नाम की कोई लड़की कभी नहीं रही, फिर भी ऐसा अटूट नाता? समझ से परे है। हालाँकि इनमें से कुछ कहानियों को संग्रह में प्रकाशित करवाते समय मैंने दीपा का नाम परिवर्तित कर दिया, ताकि एक साथ पढ़ने पर पाठकों को दोहराव न लगे।

साक्षात्कारकर्ता : आपने प्रचुर मात्रा में व्यंग्य भी लिखे हैं। आपके कई व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और पाठकों द्वारा खूब सराहे भी गए हैं। कृपया व्यंग्य-लेखन की पेचीदगियों व रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डालें।

साक्षात्कारदाता : मैं एक धारा में बँधकर नहीं लिख पाता। मैं हर आयु-वर्ग के पाठकों के लिए कहानियाँ लिखता हूँ, इसलिए अवचेतन मन में अपनी लेखनी के साथ किसी सरिता की भाँति स्वच्छंद बहता रहता हूँ। अंतर्मन जो देखता है और महसूस करता है, उसे कागज़ पर उतार देता हूँ। किंतु एक लेखक भी इसी समाज का अंग होता है और उसका चेतन-मन समाज की विसंगतियों, विकृतियों और विद्रूपताओं को देखकर पीड़ित होता रहता है। जब यह पीड़ा भारी पड़ने लगती है और मन विद्रोह के लिए बेचैन होने लगता है तब कलम को तलवार बनाकर व्यंग्य लिखने लगता हूँ। ध्येय होता है समाज को झकझोर कर जागृत करना तथा सामने वाले में तिलमिलाहट उत्पन्न कर उसे आत्मविवेचन के लिए प्रेरित करना। अब उसमें कितनी सफलता मिलती है, यह व्यंग्य के स्तर, उसके तेवर और चलाये गए बाणों की तीव्रता पर निर्भर करता है।

रही बात व्यंग्य-लेखन की प्रक्रिया की, तो इसके लिए गहन मंथन की आवश्यकता होती है, उसके पश्चात लक्ष्य का संधान कर जितने कम शब्दों में बात कही जाए, व्यंग्य उतना ही श्रेष्ठ होगा। विचारों और वाक्यों की अधिकता, अनावश्यक फैलाव उत्पन्न करके व्यंग्य के पैनेपन और उसकी धार को कुंद कर देती है।

साक्षात्कारकर्ता : आपकी अनेक बाल-कहानियाँ व उपन्यास भारत के विभिन्न प्रांतों के पाठ्यक्रम का हिस्सा बने हैं। आज के संदर्भ में बाल-साहित्य की उपयोगिता पर आपके क्या विचार हैं?

साक्षात्कारदाता : बाल-साहित्य की उपयोगिता हर युग में रही है, किन्तु बिखरते परिवारों के बीच आज दादा-दादी, नाना-नानी की परम्पराएँ समाप्त होती जा रही हैं। ऐसे में बाल-साहित्य की उपयोगिता और आवश्यकता दोनों ही पहले से अधिक बढ़ गई है। क्योंकि बाल-साहित्य एक ऐसा टूल है, जिसके माध्यम से हमारे बुजुर्ग अपने जीवन के अनुभव,

अपनी संस्कृति और परम्परा को अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों के अंतर्मन में उतार देते थे। पंचतंत्र, जातक-कथाओं और लोक-कथाओं के अलावा जाने कितनी कहानियाँ होती थीं, जिनमें मनोरंजन के साथ जीवन का पूरा दर्शन समाया होता था। हर कहानी के साथ कोई-न-कोई सीख जुड़ी होती थी, जो बाल-साहित्य के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती रहती थी। किन्तु अब कहानी सुनाने वाला ही कोई नहीं बचा है। दादा-दादी साथ नहीं रहते, माता-पिता अति व्यस्त हैं। ऐसे में बच्चा मोबाइल और इंटरनेट की अंधी गलियों में नहीं भटकेगा तो और क्या करेगा? मैं समझता हूँ आज के दौर में बच्चों से पहले अभिभावकों को बाल-साहित्य पढ़ना चाहिए, तभी वे अपने बच्चों से जुड़ सकेंगे, उनकी दुनिया और ज़रूरतों को समझ सकेंगे। इसके अलावा विश्वविद्यालयों में भी चुनिंदा बाल-साहित्य के पाठ होने चाहिए, ताकि भावी अभिभावक अभी से बाल-मनोविज्ञान को समझ सकें। वैसे महाराष्ट्र के कुछ विद्यालयों में इस दिशा में पहल हो चुकी है।

साक्षात्कारकर्ता : वरिष्ठ साहित्यकार होने के नाते उभरते रचनाकारों के प्रति आप अपना क्या दायित्व महसूस करते हैं और उन्हें क्या संदेश देना चाहेंगे?

साक्षात्कारदाता : अगर फ़सल अच्छी उगानी है, तो खेतों में अच्छी-से-अच्छी खाद डालनी होती है। इसी तरह यदि अच्छा लिखना है, तो अच्छे लेखकों को ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़ना होगा। अपनी भाषा के साथ-साथ दूसरी भाषाओं के अनुवाद को पढ़ें। आपके पठन-पाठन में जितनी विविधिता होगी, आपके लेखन में उतनी ही परिपक्वता आएगी। जितनी अधिक शैलियों के रचनाकारों को आप पढ़ेंगे, आपकी अपनी शैली उतनी ही निखरकर सामने आएगी। अपनी साहित्यिक-यात्रा में एक रचनाकार को कई तरह के पात्रों का सृजन करना पड़ता है। अच्छे-बुरे, क्रूर, कर्मठ, पराक्रमी, कायर, पतित, सज्जन, नराधम ये सारे चरित्र एक रचनाकार के सहयात्री होते हैं। वास्तविक जीवन में हो सकता है, आपकी इनमें से किसी से मुलाकात न हुई हो, लेकिन पुस्तकों के पन्नों में ये सब अपने पूर्ण पराक्रम के साथ मिलेंगे। इसलिए साहित्य में सफलता का एक ही मंत्र है कि ज्यादा-से-ज्यादा पढ़िए।

हाँ, एक सलाह भी देना चाहूँगा। जितने श्रम से आप कुछ लिखते हैं, उतने ही परिश्रम से उसे सम्पादित भी करें। जब भी किसी रचना से अनावश्यक तत्वों को काट-छाँटकर निकाल दिया जाएगा, रचना पहले से अधिक प्रभावी होकर सामने आएगी। रही बात मेरे दायित्व की, तो मेरा सबसे बड़ा दायित्व है कि मैं साहित्यिक खेमेबाजी और जोड़-तोड़ से विलग रह नए रचनाकारों को श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करने के लिए प्रेरित करूँ। इसके लिए पहले सभी वरिष्ठ साहित्यकारों को अपने आप को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना होगा। मैं व्यक्तिगत रूप से भी नए रचनाकारों का मार्गदर्शन करता रहा हूँ और करता रहूँगा।

डॉ. लीला गोवर्धन-रामबोकस से बातचीत

भावना सक्सैना
सूरीनाम

(सूरीनाम में महिला नेतृत्व की बात करें, तो श्रीमती लीला गोवर्धन-रामबोकस अग्रणी महिलाओं में गिनी जाती रही हैं। वह अधिकांश सूरीनामवासियों की सूची में सबसे ऊपर हैं। कई वर्षों तक इंस्टीट्यूट फ़ॉर टीचर ट्रेनिंग (IOL) में डच पाठ्यक्रम की प्रमुख रही श्रीमती गोबर्धन नेशनल एजेंसी फ़ॉर एक्रेडिटेशन (नोवा) की सदस्य हैं। वर्तमान में आई.ओ.एल के न्यासी बोर्ड की अध्यक्षा हैं और पूर्व शिक्षा मंत्री, श्री अधीन की सलाहकार भी थीं। लीला जी नियमित रूप से समाचार-पत्रों के लिए समीक्षाएँ लिखती हैं और आप्रवासी इतिहास के बारे में भी लिखती हैं। सूरीनाम की साहित्यिक दुनिया में वह बेजोड़ हैं। वर्तमान में वह भाषा संघ से शिक्षा मंत्रालय की सलाहकार समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। प्रस्तुत है लीला गोबर्धन जी से भावना सक्सैना की बातचीत के कुछ अंश।)

साक्षात्कारकर्ता : नमस्ते लीला जी, आपके जन्म एवं परिवार के बारे में जानना चाहेंगे।

साक्षात्कारदाता : मेरा जन्म 1948 में हुआ और मैं अपने माता-पिता की सातवीं संतान हूँ। मेरे पिता, सिवकरन रामबोकस, का जन्म 1916 वाल्डेक (निकेरी) में हुआ था और पूर्व शिक्षा निरीक्षक कोलरिज के अनुसार वे 'पैदल शिक्षकों' (बेअरफुट टीचर) में से एक थे, जिन्हें उस समय कल्याण शिक्षक भी कहा जाता था। स्वयं बहुत शिक्षित अथवा साधन संपन्न न होते हुए भी वे दूसरों की सहायता करते थे। मेरे पिता उस समय पढ़ने-लिखने में असमर्थ थे और जब हम उनसे इसके बारे में बात करते, तब वे मुस्कुरा उठते। वे पारामारिबो आए और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सिविल गार्ड में भर्ती हुए। फिर उन्होंने पुलिस विभाग में सेवा की। अपनी सेवानिवृत्ति के समय वे पुलिस इन्सपेक्टर थे। अपने करियर के दौरान ही उन्होंने पढ़ना और लिखना सीखा, लेकिन हम यह कभी नहीं जान पाए कि उनकी मदद किसने की। किंतु उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि वे अपने सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाएँगे। और उनके परिश्रम के परिणामस्वरूप अधिकांश बच्चों ने अकादमिक प्रशिक्षण प्राप्त किया है। मैं उनमें से एक हूँ।

साक्षात्कारकर्ता : आपके बाल्यकाल में हिंदुस्तानी बालकों की शिक्षा की क्या स्थिति थी? क्या उस समय कुली कहे जाने वाले बालकों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था?

साक्षात्कारदाता : आप्रवासियों द्वारा अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजे जाने के कई कारण थे। प्रमुख कारण यह था कि अधिकांश माता-पिता निरक्षर थे और शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझते थे। वे सोचते थे कि बच्चे भी काम करेंगे, तो कुछ पैसे और मिलेंगे। कुछ ज़िला स्कूलों में ऐसा हुआ कि भारतीय माता-पिता ने अपने बच्चों द्वारा स्कूल में किए गए 'श्रम' के लिए सप्ताह के अंत में मज़दूरी की माँग की, निश्चित रूप से उनके शिक्षकों को आश्चर्य हुआ। एक और कारण यह था कि कभी-कभी माता-पिता का शिक्षकों के साथ संघर्ष हो जाता था, क्योंकि उन्हें लगता था कि उनके बच्चों ने बिल्कुल भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया है और बच्चे केवल कुछ काम जैसे कि लकड़ी काटने और खाना पकाने के लिए उपयोग किए जाते हैं। इसके अलावा, यह भी माना जाता था कि 'कुली शिक्षक' स्कूलों की उपेक्षा करते हैं और माता-पिता ने अपने बच्चों को घर पर रखने का फ़ैसला किया, जिससे उनके शिक्षकों को बहुत बुरा लगे।

इसके अलावा 10 साल से 14 साल की आयु में बालकों का विवाह कर दिया जाता था, जिससे शिक्षा प्रभावित होती थी। 1940 में इस प्रकार के विवाह को कानून द्वारा मना किया गया था। एक और प्रतिबंध यह था कि लड़कियों को स्कूल जाने की अनुमति नहीं थी, क्योंकि उनके माता-पिता सोचते थे कि कोई भी अधिक पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह करना नहीं चाहेगा।

साक्षात्कारकर्ता : ओह, तो इस कारण से बालिकाएँ शिक्षा से वंचित रहीं। उस समय अर्थात् आपकी किशोरावस्था में बालिकाओं का जीवन कैसा था?

साक्षात्कारदाता : आज के समान सरल तो नहीं था। इतना खुला भी नहीं था। लड़कियों के लिए जीवन कठिन था। सूरीनाम में बीसवें दशक के आरंभिक काल में लड़कियों को शिक्षित नहीं किया गया। मेरी माँ का विवाह 1928 में और मेरी सास का विवाह 1938 में दस वर्ष की आयु में हुआ। तेरह वर्ष की आयु में उनका गौना हुआ। देखा जाए, तो यह उतनी पुरानी बात भी नहीं है। 1940 तक तो विवाह का रजिस्ट्रेशन भी नहीं हुआ करता था। वर्तमान में सूरीनाम में शिक्षा प्राप्त करना जितना सरल है, उस समय ऐसा नहीं था। किंतु मेरे पिता आर्य समाजी थे और उस समय सभी आर्य समाजी व्यक्ति बालिकाओं की शिक्षा के प्रति बहुत जागरूक थे।

साक्षात्कारकर्ता : आपने अपने अध्ययन के लिए भाषा-विज्ञान क्यों चुना?

साक्षात्कारदाता : भाषाओं में शुरू से ही मेरी रुचि है। मुझे अपनी भाषा पसंद थी और व्याकरण भी, मैं उसके बारे में जानना चाहती थी। इसीलिए मैंने भाषा का अध्ययन करने का निश्चय किया और सूरीनाम से भाषा-विज्ञान की डिग्री प्राप्त की। कई अलग-अलग भाषाओं और संस्कृतियों वाले देशों में, किसी एक भाषा का चुनाव संस्कृति और व्यक्तित्व को संरक्षित करने का विकल्प है और दूसरी दृष्टि से देखा

जाए, तो पर्याप्त रूप से ठहराव या प्रगति का विकल्प भी है। जिस तरह मैंने भाषा व समाज के बारे में लिखा, वह कहीं मेरे पिता की देन है। किसी प्रौढ़ व्यक्ति के लिए नई भाषा सीखना आसान नहीं होता, जैसे कि मेरे पिता ने सीखी, उनमें शायद असाधारण प्रतिभा थी। वे वैश्विक राजनीति में भी बहुत रुचि रखते थे।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आपकी शिक्षा व अध्ययन सूरीनाम में ही पूरा हुआ?

साक्षात्कारदाता : मैंने पहले यहाँ टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज में अध्ययन किया और फिर विवाह के उपरांत 1971 में हॉलैंड चली गई। आगे का अध्ययन वहीं किया। 1977 में हम वापस लौटे। सात वर्ष के बाद हम 1984 में पुनः हॉलैंड चले गए और 1992 में मैंने अनुसंधान आरंभ किया। वह व्यस्तताओं से भरा समय था। मैं काम कर रही थी, पढ़ाई भी कर रही थी और घर-परिवार की ज़िम्मेदारियाँ भी संभाल रही थी।

वर्ष 2001 में मैंने लेइदन विश्वविद्यालय से पी.एच.डी पूरी की। तब तक मैं हर माह अनुसंधान के लिए हॉलैंड जाया करती थी।

साक्षात्कारकर्ता : आपकी डॉक्टरेट का विषय क्या था?

साक्षात्कारदाता : मेरा विषय था शिक्षा का इतिहास और सूरीनाम की भाषाएँ।

साक्षात्कारकर्ता : क्या आप सूरीनाम में शिक्षा के इतिहास पर अपना निष्कर्ष साझा करना चाहेंगी?

साक्षात्कारदाता : वास्तव में, अपने अध्ययन से मुझे पता लगा कि 1863 में शिक्षा का दायित्व सरकार पर आ गया। उससे पहले तक मिशन और मोरेवियन चर्च भारत से कंट्राक पर आए लोगों के बच्चों को शिक्षित करने का कार्य कर रहे थे। यह चर्च आनीस्त्रात पर स्थित है। कुली स्कूल सामान्य स्कूल नहीं था, वह सरकार द्वारा सिर्फ़ लड़कों के लिए खोला गया था और उनमें नागरी व उर्दू पढ़ाई जाती थी। 1906 में कुली स्कूलों को बंद कर दिया गया था।

साक्षात्कारकर्ता : हिंदुस्तानियों को शिक्षित करने के संबंध में डच शासकों का क्या रवैया था?

साक्षात्कारदाता : डच शासक नहीं चाहते थे कि हिंदुस्तानी शिक्षित हों। वे उन्हें यहाँ काम करने के लिए लाए थे और वे बहुत अच्छे कामगर थे। शिक्षित होने से उनके काम में दखल आने की संभावना थी। कुली स्कूल के संबंध में तो अलग नीति थी, वहाँ सिर्फ़ बच्चों को साक्षर किया जा रहा था, शिक्षित नहीं। उनका मानना था कि यदि हिंदुस्तानी बालकों को शिक्षित करेंगे, तो वे आगे चलकर मज़दूरी नहीं करेंगे। किंतु हिंदुस्तानियों की बुद्धि अलग तरह से चलती है। वे उस कार्य को अवश्य करते हैं, जिसे करने से उन्हें रोका जाता है। इसलिए वे शिक्षा के प्रति बहुत सजग रहे। 1939 में डेसा स्कूल खोला गया, फिर कुछ ही समय में दूसरा विश्व युद्ध आरंभ हो गया और सब बंद हो गया।

साक्षात्कारकर्ता : सूरीनाम में हिंदुस्तानी मूल के लोगों की भाषिक स्थिति कैसी है ?

साक्षात्कारदाता : सूरीनाम एक बहु-सांस्कृतिक देश है। यहाँ वर्तमान में 20 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। भाषाई विविधता और सांस्कृतिक विविधता ने सूरीनामी हिंदुस्तानियों को असाधारण उपलब्धियों के लिए प्रेरित किया है।

कई अलग-अलग भाषाओं और संस्कृतियों वाले देशों में, एक भाषा का चुनाव संस्कृति और व्यक्तित्व को संरक्षित करने का विकल्प है, लेकिन जटिल रूप से यह पर्याप्त ठहराव या प्रगति का विकल्प भी है।

साक्षात्कारकर्ता : यहाँ सरनामी हिंदी का विकास कैसे हुआ?

साक्षात्कारदाता : संस्था भारत उदय ने हिंदुस्तानियों की शिक्षा व उत्थान के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 1929 में आर्य दिवाकर की स्थापना हुई और इसके बाद सनातन धर्म की। जो लोग भी शिक्षा के लिए आंदोलन कर रहे थे, वे सभी आर्य दिवाकर के बोर्ड में शामिल थे। गाँव-गाँव में मंदिर थे, जहाँ हिंदी कक्षाएँ लगती थीं। हिन्दस्तानी अपनी भाषा के लिए बहुत समर्पित हैं। वे अपने बच्चों को डच स्कूलों में भेजते हैं, किंतु घर पर संचार की भाषा हिंदी है। हिंदी उनकी कुकुरु (रसोईघर) की या आत्मीयता की भाषा है।

साक्षात्कारकर्ता : सूरीनाम में अन्य भाषाओं की स्थिति व उनके आपसी संबंध के बारे में आपका क्या मत है?

साक्षात्कारदाता : जैसा मैंने कहा कि सूरीनाम एक बहुभाषी समाज है और बहुभाषी समुदाय में डिग्लोसिया संबंध होते हैं। यह एक ऐसी स्थिति है, जिसमें किसी समुदाय द्वारा एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। डिग्लोसिया विभिन्न भाषाओं के बीच का सामाजिक संबंध है, जिसमें हमेशा एक भाषा की स्थिति दूसरी भाषा से ऊपर होती है। डच एक ऊँचे-स्टेटस वाली भाषा है। अन्य सभी भाषाएँ समान स्थिति में नहीं हैं। स्रनन को एक विशेष दर्जा प्राप्त है, क्योंकि इसका उपयोग एक भाषा के रूप में और आधिकारिक संचार में किया जाता है। हालाँकि, अन्य भाषाएँ अब धीरे-धीरे आगे बढ़ रही हैं। इस विभाजन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका मातृभाषा बोलने वालों की भाषाओं की सराहना द्वारा भी की जाती है, जो आमतौर पर कम होती है। देशी भाषाएँ अब एक पुनर्मूल्यांकन का अनुभव कर रही हैं, जो पचास के दशक में स्रनन और सत्तर के दशक में सरनामी के लिए हुआ था। सूरीनाम की भाषा की जटिल स्थिति सामाजिक संदर्भ में भाषाओं के विभिन्न कार्यों में भी स्पष्ट हो जाती है, विशेषकर व्यावहारिक, सामूहिक व सांस्कृतिक समारोहों में।

साक्षात्कारकर्ता : आपने सरनामी भाषा का काफ़ी अध्ययन किया है। सूरीनाम में सरनामी भाषा के विकास के बारे में आपका क्या कहना है?

साक्षात्कारदाता : सरनामी ब्रिटिश भारत के आप्रवासियों के वंशजों के एक बड़े हिस्से की मातृभाषा है। सरनामी उन भाषाओं से विकसित हुई, जो गिरमिटिया मज़दूर बोलते थे और इसके अलावा, अपने नए परिवेश की भाषाओं से प्रभावित थे। ये आप्रवासी उन क्षेत्रों की भाषाएँ बोलते थे, जहाँ से वे आए थे। पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, अवधी और भोजपुरी आप्रवासियों के बीच सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली भाषा थी। इसके अलावा कई गिरमिटिया मज़दूर शायद उत्तर भारत की भाषा हिंदुस्तानी भी जानते थे। सरनामी एक 'कोइन' है। 'कोइन' अर्थात् भाषा का एक सरलीकृत रूप, जो अपने मूल क्षेत्र के बाहर बोली जाती है, जिसमें से अक्सर बोलियों के विभिन्न मूल तत्त्व गायब हो जाते हैं। सरनामी उत्तर भारत में बोली जाने वाली कई भाषाओं का मिश्रण है। समाजशास्त्रीय साहित्य में सरनामी को प्रवासी हिंदी के रूपों में से एक कहा जाता है, जो उन क्षेत्रों में बोली जाने वाली हिंदी के रूप हैं, जहाँ वे मूल रूप से संबंधित नहीं हैं, जैसे मॉरीशस, फ़िजी द्वीप समूह, गयाना और त्रिनिदाद। प्रवासी हिंदी के इन रूपों में से कोई भी मूल भारतीय भाषा के समान नहीं है। यह घटना नए वातावरण के कारण हुई थी, विशेष रूप से सूरीनाम में गिरमिटिया मज़दूरों को जिन भाषाओं से अवगत कराया गया था, अर्थात् सरनन, डच और अंग्रेज़ी। इन्हीं भाषाओं के प्रभाव से सरनामी हिंदी बनी।

साक्षात्कार कर्ता : सरनामी और हिंदी के आपसी सम्बन्धों के बारे में आप क्या कहना चाहेंगी?

साक्षात्कार दाता : हम सूरीनाम में हिंदी के ज्ञान को बढ़ावा देते हैं, क्योंकि यह सांस्कृतिक भाषा और धर्म की भाषा है। सूरीनाम की आबादी के एक बड़े हिस्से के धार्मिक जीवन के लिए देवनागरी से परिचित होने के साथ-साथ हिंदी और उर्दू का ज्ञान अनिवार्य है। इसने हिंदुस्तानी सांस्कृतिक मूल्यों को उल्लेखनीय रूप से संरक्षित किया है। लोगों की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत में हिंदी का शिक्षण और प्रचार आवश्यक है। हिंदी जानने से धर्म और परम्पराओं से जुड़ने की संभावना रहती है। 'सरनामी' एक जीवंत भाषा है। हिन्दस्तानियों की बढ़ती संख्या 'सरनामी' बोलती और समझती है और यह हमें हिंदी सिखाने के लिए एक अच्छा आधार प्रदान करती है। सरनामी हिंदी परिचित भाषा-सी लगती है, क्योंकि यह हिंदुस्तानियों के आपसी व्यवहार की भाषा है। हम कह सकते हैं कि सरनामी हिंदी के ज्ञान का द्वार है।

सनातन धर्म, वैदिक संगठन और सूरीनाम हिंदी परिषद् हिंदी पाठ्यक्रमों का प्रचार कर रही हैं। हमारी सरकार इन गतिविधियों का समर्थन कर रही है, क्योंकि सूरीनाम में हिंदी तभी पनप सकती है, जब आप्रवासियों के वंशज सरनामी का उपयोग करने में सहज महसूस करें।

भावना सक्सैना- *अपने महत्त्वपूर्ण अध्ययन के निष्कर्ष को हमसे साझा करने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद लीला जी!*

bhawnasaxena@hotmail.com

पश्चिमी जर्मनी और उपभोक्तावादी संस्कृति : 'पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नज़र' यात्रावृत्तान्त के विशेष संदर्भ में

डॉ. स्मृतिरेखा नायक
ओडिशा, भारत

मनोहर श्याम जोशी के दो यात्रावृत्तान्त हैं -'पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नज़र' एवं 'क्या हाल है चीन के'। मनोहर श्याम जोशी पत्रकार होने के साथ-साथ साहित्यकार भी थे। पश्चिमी जर्मनी और चीन की यात्रा में जो भी प्रत्यक्ष अनुभव उन्हें हुए, उन अनुभवों का उन्होंने अपने दोनों यात्रावृत्तान्त में बखूबी वर्णन किया। उन्होंने अपने यात्रावृत्तान्त में सिर्फ़ तत्कालीन पश्चिमी जर्मन और चीन के बाहरी यथार्थ का अंकन नहीं किया है, बल्कि इन देशों के अंदर झाँककर देखने की कोशिश की है। 'पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नज़र' जर्मन में देखे-गए अनुभवों का जीवंत दस्तावेज़ है। यात्रावृत्तांतकार जिस किसी भी जगह की यात्रा करता है, वह उस जगह की सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक पक्षों को जानने-खोजने की कोशिश करने में जुट जाता है। इस बात का प्रमाण 'पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नज़र' यात्रावृत्तान्त में प्राप्त होता है। यह यात्रावृत्तान्त पश्चिमी जर्मनी का बनना, उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, परमाणु अस्त्रों का गढ़, पूर्वी बर्लिन और पश्चिमी बर्लिन के संघर्ष एवं जर्मन भाषा के भाषिक परिप्रेक्ष्य आदि कई संदर्भों को जानने-समझने का अवसर प्रदान करता है।

देशीय यात्रावृत्तान्त और वैदेशिक यात्रावृत्तान्त अध्ययन से एक बात जो समझने में सहायक होती है, वह यहाँ की सांस्कृतिक धरातल है। संस्कृति और भाषा हर जगह की अनन्य वैशिष्ट्य है। देशीय यात्रावृत्तान्त में हमें जहाँ संस्कृति देखने को मिलती है, वहाँ वैदेशिक यात्रावृत्तान्त में सांस्कृतिक बदलाव बहुमात्रा में दिखाई देता है। इसलिए वैदेशिक यात्रावृत्तान्त उतना ही पठनीय है, जितना देशीय यात्रावृत्तान्त। उदाहरण के लिए मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं - "जर्मनी में हाथ चूमने का रिवाज़ है और हाथ चूमने के परंपरागत ढंग में कोई चूक नहीं की जानी चाहिए। परंपरागत ढंग में, ओंठ और हाथ के बीच बारीक-सा फ़ासला छोड़ना होता है।" संस्कृति के साथ कई राजनैतिक पक्षों को भी जानने-समझने का अवसर मिलता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी का बँटबारा होना और जर्मन जनता का यूँ पलायन करना जैसे दुखद पहलुओं का इनमें उल्लेख हैं। यात्रा-वृत्तांतकार लिखते हैं - "जर्मनी के, जो केवल 1871 से लेकर 1945 तक एक राष्ट्र, एक देश रहा है, जर्मनपन की बात करना तो और भी असंगत प्रतीत होता है। फिर हम यह देखते हैं कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद, युद्ध के दौरान और युद्धोत्तर आर्थिक चमत्कार के दौरान करोड़ों लोग अपना प्रदेश और अपना ज़िला छोड़कर अन्यत्र बस गए।" विभाजन के कारण पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी में प्रवजन की स्थिति पैदा हुई। पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी की और दोनों भागों के बीच आवागमन को रोकने के लिए सन् 1961 में बर्लिन में दीवार बना दी गई। पश्चिमी जर्मनी का विकास तेज़ी से होने लगा था और पूर्वी जर्मनी के लोग पश्चिमी जर्मनी में आने लगे थे। बर्लिन दीवार को अवैध रूप से पार करने वाले लोगों को गोली मार दी जाती थी। इस दीवार का वर्णन करते समय यात्रावृत्तान्तकार ने इसे बर्लिन की बदसूरत दीवार के रूप में उल्लेख किया है और लिखा है - "यह एक विचित्र तथ्य है कि बर्लिन की बदसूरत दीवार सैलानी आकर्षण का दर्जा रखती है। जो भी सैलानी पश्चिमी बर्लिन जाता है, उसे दो-चार जगह से सुनाया जाता है कि इसे पार करने की कोशिश में कब, किसने जान गँवाई।" दीवार की एक ओर शहीदों का स्मारक बनाया गया है। पूर्वी बर्लिन में प्रशिया की राजधानी है, जहाँ से प्रशिया के तत्त्वावधान में जर्मन राष्ट्र गढ़ने की योजना बनी और दो महायुद्धों का जन्म भी हुआ। एक राष्ट्र का विभाजन होने के बाद कैसे लोग अपनों को लूटने में जूट जाते हैं, इसका ज्वलंत प्रमाण पूर्वी जर्मनों और पश्चिमी जर्मनों से मिलता है।" एक विडंबनापूर्ण बात यह है कि जिन पूर्वी जर्मनी वालों ने नगर के दो हिस्सों को

अलग-थलग करने के लिए यह दीवार बनाई थी, उन्होंने ही नए समझौते के अंतर्गत 15 मार्क का वीज़ा बनवाकर पश्चिम बर्लिन के लोगों को कुछ घंटों के लिए बरास्ता चेक प्वाइंट, चार्ली, पूर्व बर्लिन आने की अनुमति दी है। इसका लाभ वे लोग उठाते हैं, जो पश्चिमी जर्मनी में आ गए हैं, लेकिन जिनके रिश्तेदार पूर्व बर्लिन में हैं।"

जर्मनी के हाइड़लवर्ग, फ्रैंकफ़र्ट, बौन, कोलन, हाम्बुर्ग, बावेरिया, म्यूनिख, टेगरनसी आदि जगहों की विशेषताओं का वर्णन करते समय कई नई बातों को उजागर करते हैं, जो इस यात्रावृत्तान्त को पढ़ने की रोचकता बढ़ाती हैं। वे लिखते हैं - "जर्मनी के अन्य भागों में भी रेलयात्रा करते हुए मुझे यह प्रतीत हुआ कि शहर-गाँव-कस्बा-खेत-कारखाना-जंगल सब यहाँ एक-दूसरे से सटे हुए हैं और इनमें कोई अंतर नहीं है। भारत में केरल में यात्रा करते हुए, आपको कुछ ऐसी ही अनुभूति होती है। केरल की तरह पश्चिम जर्मनी भी घना बसा हुआ है।" हाइड़लवर्ग प्रमुखत: विद्या और संस्कृति के केंद्र के रूप में जाना जाता है। हाइड़लवर्ग के सुड़ एशिया इंस्टीट्यूट में अभी भी भारतीय भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन किया जाता है। हाइड़लवर्ग में काफ़ी पुराने विश्वविद्यालयों के अलावा प्रसिद्ध 'ब्लैक फ़ॉरेस्ट' श्याम जंगल की शुरुआत होती है, जो स्विट्जरलैंड की सीमा तक विस्तृत है।

हाइड़लवर्ग में 'कासलों' का रहना चौदहवीं शताब्दी से हुआ और सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक यह जाति यहाँ से चली गई। अब जर्मनी में कासलों का टूटा-फूटा किला प्राचीन स्थल बनकर रह गया है। जोशी जी के अनुसार "किले में खड़े होकर नेकार नदी के दोनों किनारों पर बसे उस हाइड़लबर्ग नगर का विहंगम दृश्य दिखता है, जो आधुनिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न होते हुए भी मध्ययुगीन बना हुआ है। यूरोप में सर्वत्र और पश्चिमी जर्मनी में तो विशेष रूप से सैलानी यह पाता है कि प्राचीन नगरों की आत्मा को सुरक्षित रखा गया है। हमारे यहाँ आधुनिकता ने तो प्राचीन स्थलों की तमाम विशेषताओं को लील ली है या उन्हें उपेक्षित-सी गंदी बस्ती का दर्जा दिया है।" यह विडम्बना है कि हमारे पूर्वजों की सिद्धहस्त कला-कारीगरी के प्रमाणस्वरूप खड़ी इमारतों को आधुनिकता ने संस्कृति से जुड़े खंडहरों और कूड़ों-कबाड़ों के रूप में प्रस्तुत किया है। अक्सर हम पुरानी चीज़ों को बदलकर नयी को अपनाने की फ़िराक में लगे रहते हैं। किन्तु हमें पता नहीं है कि जिस पुरानी वस्तु को हम कूड़ेदान में फेंकते हैं, उसमें निहित अमूल्य सिद्धहस्त कला-कारीगरी है, जो वर्तमान समय में कहीं उपलब्ध ही नहीं होगी। यह उपभोक्ता संस्कृति की देन है। पश्चिमी जर्मनी भी तकनीकी वाणिज्य-व्यवसाय के चंगुल से कैसे बच निकलता भला? जर्मन नगरपालिका महीने में एक बार कबाड़ मुफ़्त में उठा लेती है, जिसमें डिब्बे, बोतल, रद्दी कागज़ ही नहीं टी.वी सेट, फ्रिज, स्टेरियो, धुलाई मशीन, फ़नीर्चर आदि होते हैं। जोशी जी लिखते हैं - "चीज़ों की बरबादी, संसार के सीमित प्राकृतिक साधनों का अंधाधुंध उपयोग संपन्न देशों की उपभोक्ता संस्कृति की विशेषताएँ हैं। ...उत्तर औद्योगिक युग में सम्पन्न देशों का साधारण नागरिक इतने साधनों का उपयोग और इतनी ऊर्जा का उपयोग कर रहा है कि उसके सामने अगले ज़माने के रईसज़ादे गरीब ठहरते हैं।" बावेरिया के गाँवों का वर्णन करते हुए उपभोक्तावादी संस्कृति के बारे में यात्रावृत्तान्तकार लिखते हैं - "उपभोक्तावादी संस्कृति के युग में गाँव भी शहरी हो गए हैं। उनके बाज़ारों में वे तमाम चीज़ें उपलब्ध हैं, जो कभी शहरों में ही मिला करती थीं। उनके मकानों में अधिकतर शहरी लोग ही बसे हुए हैं, जो वहाँ से हर रोज़ काम करने शहर जाते हैं। इसे आधुनिक संस्कृति की विडम्बना ही कहिए कि आज देहात में सम्पन्न शहरी लोग रहते हैं और कभी वे देहाती शहरों की गंदी बस्तियों में ज़िंदगी बसर करते हैं।" इस प्रकार उपभोक्तावादी संस्कृति हमारे अंदर घर कर बैठी है, जो हमें बदलने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है।

पश्चिमी जर्मनी के बौन शहर के पुराने हिस्से में गिरजाघर, विश्वविद्यालय और टाउन-हॉल हैं। वहीं दूसरे हिस्से में सरकारी दफ़्तर, संसद आदि बने हैं। यात्रावृत्तान्तकार बौन शहर की तुलना भारत के नई दिल्ली शहर से करते हैं। पश्चिमी जर्मनी के लोग बौन को 'सरकारी गाँव' कहते हैं। बौन से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर कोलोन शहर है, जो मध्ययुग में कैथलिक-धर्म का गढ़ था। वर्तमान समय में जर्मन में कैथलिक लोग नहीं के बराबर हैं। इस बारे में यात्रावृत्तान्तकार लिखते

हैं - "कोलन कैथलिक धर्म का गढ़ था। बारहवीं शताब्दी में यहाँ इटली से कुछ पवित्र अवशेष लाए गए, जिन्हें रखने के लिए यहाँ छोटा गिरजाघर बनाया गया। तेरहवीं शताब्दी में उसी गिरजाघर को विराट रूप देने का काम शुरू हुआ, जो 1880 में पूरा हुआ। दूसरी बड़ी लड़ाई में कोलन की 90 फ़ीसदी इमारतें मिट्टी में मिल गईं, लेकिन यह गिरजाघर काफ़ी नुकसान होने के बावजूद अपनी जगह बना रहा। एक तरह से यही कैथेड्रल कोलन का केंद्रबिन्दु है। जर्मनी से ही कर्मकांडी कैथलिकों के विरुद्ध प्रोटेस्टेंट पंथ चला था।"

हाम्बुर्ग बन्दरगाह के लिए प्रसिद्ध है। इसके अलावा हाम्बुर्ग जहाज़-निर्माण, खनिज-शोधन और करमुक्त–उत्पादन में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। इस शहर के व्यावसायिक आकर्षण के बारे में यात्रावृत्तांतकार लिखते हैं - "एक अनुमान के अनुसार 13 लाख की आबादी वाले हाम्बुर्ग में हर समय लगभग सवा लाख विदेशी किसी-न-किसी व्यावसायिक आयोजन के कारण मौजूद रहते हैं। इसलिए हाम्बुर्ग को पश्चिमी जर्मनी का सबसे अधिक अंतर्राष्ट्रीय नगर कहा जाता है।" हाम्बुर्ग को संचार माध्यमों की राजधानी भी कहा जाता है। देश का ग्रामोफ़ोन वीडियो उद्योग, फ़िल्में-निर्माण और समाचार-पत्र प्रकाशन इसी शहर से होते हैं। जर्मन पत्रकारिता का गढ़ हाम्बुर्ग है। ओपेरा विश्वविद्यालय के साथ कला और संस्कृति हमें हाम्बुर्ग में ही मिलती हैं। यात्रावृत्तान्तकार लिखते हैं - "जर्मनी में हाम्बुर्ग को 'पुराने रईसों के नगर' का दर्जा प्राप्त है, जबकि ड़सलड़र्फ को नवधनाढ्यों की नगरी कहा जाता है। पुराने रईसों के इस शहर में ओपेरा की परंपरा तीन सौ साल पुरानी है।"

पश्चिमी जर्मनी में ऐतिहासिक इमारतों में हाइड़लवर्ग के कासलों का किला, कोलोन का कैथलिक गिरजाघर, तुर्कों की बस्तियाँ, बर्लिन का राजकीय संग्रहालय, प्रशिया के शार्लेटनबर्ग राजप्रासाद, म्यूनिख के शाहीबाड़ा, निम्फ़ेनबर्ग, डोइरोज़, निऊपीनाकोथेक, बावेरिया के गिरजाघर आदि आरंभिक वास्तुकला के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। बावेरिया में अक्तूबर उत्सव (ओक्टोबर फ़ैस्ट), कार्निवाल और फ़ासिंग उत्सव जर्मनी की अद्‌त संस्कृति से परिचित कराते हैं। यात्रावृत्तान्तकार लिखते हैं - "कार्निवाल में लोगबाग मुखौटे धारण किए अजीबो-गरीब पोशाकें पहने हुए, रात भर नाचते-गाते रहते हैं। फ़ासिंग उत्सव में हज़ारों रोमांस शुरू होते हैं और हज़ारों रोमांस खत्म होते हैं। लोग सारी रात नाचने-गाने के बाद किसी रेस्तरां में नाश्ता करने के बाद सीधे काम पर चले जाते हैं। फ़ासिंग समाप्त होता है – एश वेडनेस्ट पर। इस दिन सारे लोग मारिया प्लाट्स चौक के मछली फ़व्वारे पर खाली बटुए ढोते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि प्रभु तेरा दिया इस उत्सव में हमने खत्म कर दिया, अब अगले उत्सव के लिए कमाएँ और खूब कमाएँ। यह जर्मन संस्कृति का एक अलग चित्र प्रस्तुत करता है। म्यूनिख में 'निऊपीनाकोथेक' एवं डोईशेज संग्रहालय विश्व प्रसिद्ध हैं। जहाँ निऊपीनाकोथेक में 18वीं, 19वीं और 20वीं सदी की कलाकृतियाँ संग्रहीत की गई हैं, वहीं डोईशेज में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास की झांकी प्रस्तुत की गई है। इसके अलावा म्यूनिख का विश्वविख्यात चिड़ियाघर यात्रावृत्तान्त में वर्णित है। सम्राट लुडविग द्वारा बनाई गई निम्फ़ेनबर्ग महल की कलाकृतियाँ पूर्वज़ों की कला-कारीगरी का प्रमाण प्रस्तुत करता है। लोक-संगीत की अद्‌त शैली म्यूनिख के साथ बावेरिया में परिलक्षित होती है। बावेरिया में स्त्री-पुरूषों का सामूहिक नृत्य-गान होता है, जो भारत में बसे आदिवासियों के नृत्य-गान के साथ मिलता-जुलता है। बावेरिया के लोक-संगीत के बारे में वे लिखते हैं - "बावेरिया के लोक-संगीत की खासियत वही है, जोकि स्विट्ज़रलैंड और ऑस्ट्रिया जैसे क्षेत्रों की। धुनें मधुर और मुरकियों वाली होती हैं। स्वर खींचने और हिचकोलों के साथ गाते चले जाने की अदा को 'यूडलिंग' का नाम दिया जाता है। वाद्यों में 'जिथर' का बहुत महत्त्व है और घण्टियों का भी। गायों की गल-घण्टियों का वाद्य-तरंग के रूप में प्रयोग बावेरिया की खास चीज़ें हैं। यहाँ भी छोटी-बड़ी अनेक घण्टियों को बजाकर कई प्रसिद्ध धुनें निकाली जाती हैं।"

टेगरनसी पहाड़ी इलाका है। मध्ययुग के समय यह मठाधीशों का निवास-स्थल हुआ करता था। ज़्यादातर आध्यात्मिक लोग इस पहाड़ी अंचल में आते थे। अब के समय कई साहित्यकार, कलाकार, उद्योगपति और व्यवसायी यहाँ गर्मियों में रहने के लिए आते हैं, इसलिए काफ़ी सराय बनाए

गए हैं।

भाषा संबंधी विचार प्रस्तुत करते समय यात्रावृत्तान्तकार लिखते हैं कि आधुनिक जर्मन भाषा लूथर की देन है। जर्मन में उपकारी व्यक्ति 'बिटे' कहलाता है, तो उपकृत व्यक्ति 'डांके' कहलाता है। शुभ दिन के लिए जर्मनी में 'गुटेन टाग' कहा जाता है, विदा के लिए वुंडरशोन शब्द व्यवहार में प्रचलित हैं। "जर्मन शब्दों में हर क्रियापद में, विशेषण में 'एन-ड्रकेन', 'हाल्टेन', 'गुटेन' होते हैं।" कुल मिलाकर मनोहर श्याम जोशी कुछ जर्मन शब्दों का प्रयोग करके पाठकों को जर्मन भाषा जानने का प्रोत्साहन देते हैं। पश्चिमी जर्मन की हर विशेषता को उजागर कर यात्रावृत्तान्तकार ने अपनी यात्रा को सार्थक किया है। एक सुधि निरीक्षक की नज़र रखकर उन्होंने यह यात्रा पूर्ण की है। प्रस्तुत यात्रा-पुस्तक में सिर्फ़ पश्चिमी जर्मनी के बारे में सूचना न होकर हर जानकारी के बारे में प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। सबसे अहम बात यह है कि यात्रावृत्तान्त एक साहित्यकार और एक पत्रकार की दृष्टि से रचा गया है, तब यात्रा-स्थल के बारे में किसी भी जानकारी से कैसे अछूता रहा जा सकता है। यह पुस्तक पाठकों को पश्चिमी जर्मनी की सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि सभी परिप्रेक्ष्यों को जानने का एक अवसर प्रदान करता है।

smruti032@gmail.com

'चाणक्य के जासूस' गुप्तचरी का शास्त्र

श्री शिवानन्द उपाध्याय
नई दिल्ली, भारत

हिंदी साहित्य ही नहीं, बल्कि पूरे भारतीय साहित्य परंपरा में जासूसी लेखन अक्सर हाशिए पर रहा है। हिंदी के मठाधीश उसे रहस्य और रोमांच का सस्ता साहित्य मानते रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में तिलिस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यासों में काल्पनिक, अप्राकृतिक और मनोरंजन प्रधान घटनाओं को दृश्यमान करने के कारण, ऐसे उपन्यासों को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया, लेकिन उपन्यासों को यथार्थ, सामाजिक और राजनीतिक परिवेश से जोड़ने की सिफ़ारिश कर जासूसी उपन्यासों की दिशा का संकेत भी कर दिया था। किस्सागोई ऐसे उपन्यासों का प्रमुख आधार हुआ करता था, जिसका प्रयोग उपन्यास कुतूहल, चमत्कार और मनोरंजन पैदा करने के लिए किया करते थे। लेकिन वे सामाजिक परिवेश से या तो दूर रह जाते थे या सामाजिक और नैतिक उपदेश देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेते थे। प्रेमचंद ने किस्सागोई को नया आयाम दिया और किस्सागोई के साथ-साथ कथा साहित्य को भी वास्तविक सामाजिक परिवेश से जोड़ा। त्रिलोकनाथ जी ने प्रेमचंदीय किस्सागोई का भरपूर इस्तेमाल करते हुए पहली बार जासूसी की दुनिया को सामाजिक और राजनीतिक परिवेश से जोड़कर एक नया रूप दिया है।

'चाणक्य के जासूस' उन अर्थों में जासूसी उपन्यास नहीं है, जिनका सूत्रपात गोपाल राम गहमरी ने किया था या जिन उपन्यासों का सृजन बाद के लोकप्रिय उपन्यासकारों ने किया है। जघन्य हत्याओं, चोरी-डकैती एवं रहस्यमयी षड्यंत्रों से युक्त जासूसी माने जाने वाले उपन्यासों का उद्देश्य मनोरंजन, कौतूहल और रहस्य का सृजन करना होता था, जिसमें जासूस भयंकर-से-भयंकर कांडों को सुलझाने के लिए एक रहस्य से दूसरे रहस्य के बीच गुज़रता-फँसता-निकलता हुआ सत्य तक पहुँचने की कोशिश करता है। 'चाणक्य के जासूस' में रहस्य भी है, कौतूहल भी है और रोचकता भी है। परंतु उन जासूसी उपन्यासों की तरह कोई पहले हो चुकी घटना नहीं है, जिसकी सत्यता की छानबीन करने के लिए कोई जासूस या जासूसों का समूह सुराग पाने की कोशिश में लग जाता है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त को एवं मगध साम्राज्य के सर्वोच्च सिंहासन से आततायी धनानंद को पदच्युत करके चन्द्रगुप्त को सत्तासीन करने की कथा को आर्यावर्त में सभी जानते हैं। लेकिन 'चाणक्य के जासूस' में आर्यावर्त के ऐतिहासिक निर्माण की दिशा बदलने में अहम भूमिका निभाने वाले चाणक्य और उनके गुप्तचरों की गुप्तचर्या के आयाम को अत्यंत संजीदगी से व्यक्त किया गया

है। गुप्तचरी की तमाम विधाओं, सिद्धांतों एवं तकनीकों के साथ ही उसके नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों का भी विवेचन किया गया है। यह बताया गया है कि इतिहास के एक विशेष कालखंड में गुप्तचरी राष्ट्र-निर्माण के उच्च आदर्शों से जुड़कर अपनी सार्थकता को कैसे सिद्ध करती है और समाज एवं राष्ट्र के साथ ही इतिहास की धारा को कैसे बदल देती है। राजनीति, सैन्य रणनीति, सीमाओं की सुरक्षा, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन जैसे कार्यों में गुप्तचरों की भूमिका 'चाणक्य के जासूस' का विषय है। लेखक ने भारतीय गुप्तचरी कला और तंत्र को इस उपन्यास में विशेष रूप से उजागर किया है, जिसे हमारी शिक्षा-व्यवस्था व इतिहास की पुस्तकों में कोई उचित स्थान नहीं दिया गया है। इस प्रक्रिया में तत्कालीन नन्द सम्राट की स्वेच्छाचारिता, भोग-विलास, शोषण, राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति लापरवाही के साथ ही समस्त सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक ताना-बाना भी चित्रित हुआ है, जिसके लिए उपन्यासकार को कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने ऐतिहासिक घटनाक्रमों को इस तरह से ढाला है कि इतिहास और उपन्यास दोनों मिलकर एक हो गए हैं, लेकिन इतिहास की इतिवृत्तात्मक नीरसता का नामोनिशान नहीं है और औपन्यासिक रोचकता और उत्सुकता पृष्ठ-दर-पृष्ठ बढ़ती गयी है। यह प्रक्रिया उपन्यास विधा की समावेशी प्रकृति को ही निखारती है।

त्रिलोकनाथ जी भारत सरकार के गुप्तचर सेवा के एक अनन्य गुप्तचर रहे हैं। इस सेवा के दौरान सामाजिक और पारिवारिक जीवन की सुविधाओं और प्रतिष्ठाओं से दूर अपने जीवन अस्तित्व को संकट में डालकर अनेक दुर्गम और संवेदनशील स्थानों पर रहकर एक गुप्तचर के जीवन को स्वयं जिया है। गुप्तचरी उनके स्वयं का अनुभव रहा है। इन आत्म अनुभवों को और उनसे जुड़ीं चुनौतियों को वे मौर्यकालीन परिवेश में रखकर देखते हैं। गुप्तचरों की जीवनचर्या को लेकर आम जीवन में कई तरह के भ्रम व्याप्त हैं। इसलिए गुप्तचरों के आचरण और चरित्र को लेकर आम जीवन में व्याप्त आशंकाओं और गलतफ़हमियों को इस उपन्यास के पात्रों के माध्यम से दूर करते हैं। चाणक्य मगध के नागरिकों से कहते हैं -"आपमें से कई ऐसे हैं, जो गुप्तचरों के आचरण पर उँगली उठाते हैं, उन्हें प्रवंचक, असत्यवादी और गर्हितकर्मा समझते हैं। ऐसा समझने वाले अज्ञानी हैं। वे गुप्तचर्या के आदर्श और नीतियों से परिचित नहीं हैं। वे भूल जाते हैं कि गुप्तचर अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, चाहे जिस किसी भी उपाय से संभव हो। साधन की शुचिता की परवाह किए बिना वे अपने साध्य तक पहुँचने में जी-जान लगा देते हैं।" एक ओर राष्ट्र एवं समाज की सुरक्षा और कल्याण का संकल्प हो और दूसरी ओर प्राण संकट में हो, तो ऐसी द्वन्द्वात्मक स्थिति में गुप्तचरों द्वारा साधन की शुचिता का परवाह करना कैसे संभव है?"

वर्तमान समय में दुनिया के कई देशों के पास भयानक हथियार होते हुए भी इन संहारक हथियारों के प्रयोग के बजाय सैन्य कूटनीति, आर्थिक कूटनीति, सोशल और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रचार-तंत्र और सामाजिक कूटनीति का प्रयोग किया जाता है। यह चाणक्य का "सामाजिक विप्रलंभन" ही है, जिसके माध्यम से उसने अल्प रक्त-रंजित अभियान के द्वारा क्रूर घनानन्द को मगध की सत्ता से बेदखल करने में सफलता प्राप्त की। आज भारत ने अपनी सीमाओं पर सैन्य तंत्र को खड़ा करके या सैन्य प्रदर्शन करके उसके पीछे जो सामरिक, आर्थिक कूटनीति और प्रचार तंत्र का अभियान चलाया है, वह बरसों पहले चाणक्य द्वारा सैन्य प्रपंच के आवरण में किए गए गुप्तचर अभियान की आधुनिक कड़ी है। अतः यह पूरा सैनिक प्रपंच हमारे गुप्तचर अभियान के लिए आवरण मात्र है। भले ही, आज का युद्ध गुप्तचर्या अभियान से आगे बढ़ा हुआ प्रतीत होता है, लेकिन कूटनीति की समस्त गतिविधियों के पीछे गुप्तचर्या ही होती है।

उपन्यासकार अपने अनुभवों के आधार पर गुप्तचर्या की आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं - "ऐसे समाज में जहाँ सभी सज्जन हों, गुप्तचरों की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन जब समाज में दुर्जनों का आधिक्य हो जाता है और सुसभ्य समाज का अस्तित्व ही संकट में पड़ने लगता है, तब अच्छाई और बुराई में संघर्ष अनिवार्य हो जाता है। गुप्तचर इस संघर्ष की विभीषिका को कम करने में सहायक होता है।" चाणक्य अवगत थे कि एक अत्याचारी और निरंकुश शासक

के अत्याचारों से प्रजा को मुक्ति दिलाने के लिए गुप्तचरी ही सर्वोत्तम मार्ग है, जिससे यथासंभव युद्ध और संघर्ष की स्थिति से बचा जा सकता है। चाणक्य ने अपने शिष्यों को मगध की जनता की भलाई के लिए गुप्तचरी में प्रशिक्षित किया था। उनका उद्देश्य था जन-कल्याण। युद्ध की स्थिति में अपने ही राष्ट्र के जन-धन की क्षति होगी और एक अयोग्य शासक की निरंकुशता से जन-कल्याण का प्रण करने वाले चाणक्य जन-धन के नुकसान के बारे में सोच भी नहीं सकते थे। इसलिए युद्ध से होने वाले रक्तपात की विभीषिका से बचने के लिए गुप्तचर्या का मार्ग अपनाया और खून का एक कतरा बहाए बिना धनानन्द को सिंहासन छोड़कर भागने पर विवश कर दिया। आज अनेक देशों की राजनीतिक घटनाओ से लेकर उसकी विदेश नीति और उसकी अखंडता एवं संप्रभुता को सुरक्षित करने में गुप्तचर एजेंसियों की अहम भूमिका होती है। इज़रायल ने तो अपनी गुप्तचर एजेंसी मोसाद के बल पर दुनिया में ऐसी धाक जमायी है कि वह एक तरह से इज़रायल की संप्रभुता और अस्मिता की सुरक्षा का अनिवार्य माध्यम बन गयी है। आज जब दुनिया दो महायुद्धों के बाद भी फिर से महाविनाश की ओर अग्रसर है, उत्तर कोरिया से लेकर मध्य-पूर्व एशिया और अमेरिका तक के शासकों में रह-रहकर रक्त रंजित युद्ध की सनक देखने को मिलती है, वैसी स्थिति में एक कुशल गुप्तचर तंत्र ही धैर्य व बुद्धि से युद्ध के उन्माद को समाप्त कर सकता है, जिससे जन-धन की हानि न हो। युद्ध की सर्वोत्तम स्थिति वह है जब बिना लड़े ही शत्रु को परास्त कर दिया जाए। यह कार्य सैनिकों से नहीं, गुप्तचरों से होता है। यही नहीं, जब अस्त्र-शस्त्र से युद्ध समाप्त हो जाता है, तब आगे के संघर्ष का दायित्व गुप्तचरों के कन्धों पर आ जाता है। तब वह शस्त्र-बल के बजाय बुद्धि-बल से समस्याओं के निराकरण का प्रयास करता है ।

उपन्यासकार ने गुप्तचरों के समक्ष व्यावहारिक जीवन की जटिलताओं और दुविधाओं को बहुत सरलता व स्पष्टता से समझाया है। चाणक्य गुप्तचरों के समक्ष उपस्थित होने वाली इस दुविधा का भी निराकरण करते हैं कि समाज में "बड़ी बुराइयों को टक्कर देने के लिए छोटी बुराइयों की सहायता लेने में कोई हानि नहीं है। साध्य की शुचिता साधन के अशौच को ढँक देती है। साधन की शुचिता मात्र दुराग्रह है और राज के कार्य दुराग्रह से नहीं चला करते।" जब चाणक्य अपने शिष्य चन्द्रगुप्त को मगध के सिंहासन तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे थे, तब अमात्य कात्यायन उसे विषकन्या के ज़रिये मार डालने की कोशिश करते हैं। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को बचाने के लिए राजा पुरु की बलि चढ़ा दी, जो चन्द्रगुप्त के लिए मित्र के रूप में अपनी सेना लेकर लड़ने आया था, लेकिन साथ ही चन्द्रगुप्त का साथ देने को लेकर ऊहापोह में था। यह आधुनिक गांधीवादी साध्य की शुचिता के साथ साधन की शुचिता की अवधारणा के प्रतिकूल है, लेकिन गीता की मान्यता के अनुकूल है, जो यह स्थापित करती है कि धर्म और अधर्म, न्याय और अन्याय, सत्य और झूठ के बीच संघर्ष में भारतीय परंपरा में साधन की शुचिता का आग्रह नहीं है। चाणक्य के जासूस इस सनातन मान्यता को ऐतिहासिक धरातल पर स्थापित करते हैं। वे अनावश्यक हिंसा से दूरी बनाए रखते हैं, लेकिन वह जासूस ही क्या? जो नैतिक-अनैतिक द्वंद्व से न जूझा हो और उसकी आत्मा पर सदाचार से विचलन का बोझ न आया हो। यह गुप्तचरों की कथित क्रूरता के माध्यम से उनके मानवीय और संवेदनशील चरित्र को भी उजागर करता है।

'अर्थशास्त्र' के रचयिता चाणक्य ने राजनीति में गुप्तचरों के महत्त्व की व्याख्या की है और गुप्तचरों को राजा के लिए एक विशेष शक्ति माना है। पूरे उपन्यास में त्रिलोकनाथ जी ने चाणक्य के रहस्यपूर्ण व्यक्तित्व को बरकरार रखा है। वे गुप्तचर की गोपनीयता को बनाए रखने का जितना आग्रह करते हैं, उससे अधिक वे स्वयं की गोपनीयता बनाए रखते हैं। चाणक्य की बातें प्रायः रहस्यपूर्ण होती हैं और उनका वास्तविक आशय सिर्फ़ चाणक्य ही जानते हैं। चाणक्य स्वयं गुप्तचर नहीं हैं और न गुप्तचरों की टीम के मुखिया। लेकिन धनानन्द के उन्मूलन के गुप्त अभियान के सूत्र को अपने हाथों से छूटने नहीं देते हैं। चाणक्य का अमोघ अस्त्र उनका गुप्तचर तंत्र था। धनानंद के अमात्य कात्यायन की सभी चालों को अपने गुप्त तंत्र के माध्यम से चाणक्य न सिर्फ़ परास्त करते हैं, वरन् उन्हें चंद्रगुप्त के हित में बदल देते हैं। चंद्रगुप्त पर होने वाले हर प्रहार का वे अनुमान कर लेते हैं और बिना

सक्रिय ढंग से शामिल हुए, वे सिर्फ़ अपनी बुद्धि के प्रयोग से हर प्रहार को ऐसा मोड़ देते थे, जिससे मगध साम्राज्य का दावेदार ही मारा जाता था, लेकिन चन्द्रगुप्त सुरक्षित रहता था।

इसी प्रक्रिया में उपन्यासकार ने व्यक्ति की विशिष्टता की पहचान करने और उसे उपयुक्त अवसर एवं पद प्रदान करने की चाणक्य की कुशलता को भी अत्यंत सजगता से उभारा है। चन्द्रगुप्त की पहचान मगध के कुशल शासक के रूप में करने और उसे इतने बड़े साम्राज्य के संचालन के लिए योग्य और कुशल प्रशासक के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए चाणक्य की नज़र धनानन्द के विश्वासपात्र अमात्य कात्यायन पर ही टिकती है। चाणक्य मात्र एक क्रूर, अन्यायी और व्यभिचारी शासक को हटाकर एक न्यायप्रिय और राष्ट्र-प्रेमी शासक को स्थापित नहीं करना चाहते थे, बल्कि वे यह भी चाहते थे कि राजा या राष्ट्र के प्रति प्रजा की मानसिकता में बदलाव हो। चाणक्य को साम्राज्य की सीमाओं की सुरक्षा की भी चिंता होती है, तो उनकी और उनके गुप्तचरों की नज़र राजा पुरु के पुत्र मलयकेतु पर टिकती है, जिसे अपने कौशल से पाटलिपुत्र का सहयोगी बना लेते हैं।

ऐसा भी नहीं है कि काल विशेष में इतिहास की दिशा को बदलने के बाद गुप्तचर्या अभियान बंद हो गया है। उपन्यासकार ने स्वानुभवों को चाणक्य के मुख से कहलवाया है - "ये अनाम नायक हमारे वे गुप्तचर हैं, जो आज भी अपना चेहरा किसी कोने में छिपाए दुबके होंगे। यह उनका ही पुरुषार्थ है कि बुद्धि के युद्ध में अपनी पहचान छुपाए वे अपने प्राण हथेली पर लेकर निरंतर संघर्षरत रहे।" राष्ट्र की सुरक्षा और संप्रभुता के प्रति उनकी उपलब्धियों के बावजूद जासूस को सार्वजनिक रूप से वह सम्मान नहीं मिल पाता है, जिसका वह हकदार होता है। उनके जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है कि वे अपनी सफलता का सुख सबको बता नहीं सकते और असफलता उसे यातना से लेकर मृत्यु तक दे सकती है। ये अनाम नायक आज भी निरंतर संघर्षरत और कर्मरत हैं, जिनके पीछे एकमात्र उद्देश्य रहा है - राष्ट्र की सुरक्षा - चाहे वह बाहरी शत्रुओं से हो या आंतरिक गद्दारों से। ये अनाम-अदृश्य नायक इतिहास में भले दर्ज नहीं होते हैं, लेकिन इतिहास की धमनियों में रक्त के रूप में यहीं विद्यमान होते हैं। यदि अधिक रक्त-पात के बिना चंद्रगुप्त मौर्य का मगध साम्राज्य पर अधिपत्य संभव हुआ, तो उसमें सबसे अहम् योगदान अनाम-अदृश्य गुप्तचरों का रहा है।

'चाणक्य के जासूस' की भाषा बेहद सरल व पठनीय है। ऐसा इसलिए संभव हुआ है, क्योंकि त्रिलोकनाथ जी में किस्सागोई की अद्‌भुत क्षमता है। इस क्षमता का उपयोग करते हुए लेखक ने पेशे से जुड़े अपने स्वयं के अच्छे-बुरे अनुभवों को मौर्यकालीन परिवेश में रखकर भाषिक विधान किया है। तत्कालीन परिवेश का विशेष छौंक देने के लिए लेखक ने प्रसंगानुकूल श्लोकों, मंत्रों या कुछ तत्सम-प्रधान शब्दों का इस तरह से उपयोग किया है, ताकि भाषिक-प्रवाह में कहीं भी बाधा उत्पन्न न हो। इस कारण ही उपन्यास में ऐतिहासिकता और काल्पनिकता आपस में घुल-मिल गई हैं। इसे पढ़ते हुए परिवेशगत् और भाषागत् वैषम्य दृष्टिगत नहीं होता है। यदि कहीं ऐसे शब्द आए हैं, जैसे - अन्वेक्षण, छिन्नगर्त, घटकंचुकी, प्रमोचक, संज्ञाहरण - जो आज के परिवेश के लिए अपरिचित हैं, वहाँ लेखक ने सन्दर्भ सहित अर्थ भी स्पष्ट किया है, जिससे पाठक को तत्कालीन परिवेश को लेकर वास्तविक समझ बनती है और साथ ही ज्ञानार्जन भी होता है। कहीं-कहीं बोलचाल की चालू शब्दावली, जैसे - 'गोपनीयता हटी, दुर्घटना घटी' का अत्यंत सार्थक उपयोग हुआ है। उपन्यास के अध्यायों के शीर्षक प्रतीकात्मक है – 'प्रतिशोध', 'प्रयाण', 'प्रवाद', 'पाटलीपुत्र' जो कथा-प्रवाह की ओर संकेत भी करते हैं।

'चाणक्य के जासूस' परंपरागत अर्थों में जासूसी उपन्यास नहीं है। यह ऐतिहासिक उपन्यास भी नहीं है। इस उपन्यास में गुप्तचरी की तमाम विधाओं, सिद्धांतों एवं तकनीकों के साथ उसके नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों का विवेचन किया गया है। इतिहास के एक विशेष कालखंड में गुप्तचरी राष्ट्र-निर्माण के उच्च आदर्शों से जुड़कर अपनी सार्थकता को सिद्ध करती है और समाज एवं राष्ट्र के साथ ही इतिहास की धारा को भी बदल देती है। चाणक्य गुप्तचरों के समक्ष उपस्थित होने वाली इस दुविधा का भी निराकरण करते हैं कि राष्ट्र की संप्रभुता की सुरक्षा के लिए अनैतिक माध्यमों की सहायता लेने में कोई हानि नहीं है।

shivanandupadhyay@gmail.com

'भारत-रत्न पंडित भीमसेन जोशी : शताब्दी वर्ष के बहाने'

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा
महाराष्ट्र, भारत

सन् 2021 में, भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग ने भारत-रत्न पंडित भीमसेन जोशी की जन्मशती के उपलक्ष्य में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक का प्रकाशन किया। अंग्रेज़ी में प्रकाशित इस पुस्तक का शीर्षक है ***"Pandit Bhimsen Joshi : Celebrating his Centenary (A Journey of relentless riyaaz, devotion and pathbreaking music)"*** इस पुस्तक की लेखिका हैं - डॉ. कस्तूरी पायगुड़े राणे। आप ललित कला केंद्र, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय एवं फ़्लेम युनिवर्सिटी, पुणे में संगीत की प्राध्यापिका के रूप में कार्यरत हैं। आप एक जानी-मानी शास्त्रीय गायिका हैं। पद्मश्री किरण सेठ द्वारा स्थापित प्रतिष्ठित संस्था 'स्पिक माके' से भी आप जुड़ी हुई हैं।

एक संगीत साधिका के रूप में लेखिका कस्तूरी पायगुड़े राणे, पंडित भीमसेन जोशी से अपने छात्र-जीवन से ही प्रभावित थीं। एक कलाकार, स्वर साधक, आयोजक, रिकार्डिंग आर्टिस्ट एवं गुरु के रूप में पंडित जोशी लेखिका को प्रभावित करते रहे। सवाई गंधर्व महोत्सव, पुणे में आप पंडित जी को संगीत प्रस्तुति देते हुए सुन चुकी थीं, लेकिन उनसे मिलने का पहला मौका वर्ष 2000 में पुणे के प्रतिष्ठित फ़र्गुसन कॉलिज में 'स्पिक माके' के राष्ट्रीय सम्मेलन में मिला। पंडित जी इस सम्मेलन में उपस्थित थे। 'स्पिक माके' के आयोजनों से पंडित जी वर्ष 1980 से ही जुड़े थे। पद्मश्री किरण सेठ के माध्यम से ही लेखिका को यह अवसर मिला कि भारत-रत्न पंडित भीमसेन जोशी के जन्म शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में सूचना और प्रसार मंत्रालय द्वारा आयोजित समारोह में प्रस्तावित पुस्तक की लेखिका के रूप में जुड़कर अपना महती योगदान दे सकें। कोरोना के भयावह समय में अक्टूबर 2020 के आस-पास लेखिका ने इस पुस्तक का लेखन-कार्य शुरू करते हुए जनवरी 2021 तक इसे पूर्ण करने की चुनौती को भी बखूबी अंजाम दिया। दरअसल, पंडित जी का शताब्दी समारोह 04 फ़रवरी 2021 से शुरू हो रहा था। अतः मंत्रालय हर हाल में यह पुस्तक जनवरी 2021 तक प्रकाशित करना चाहता था। अध्ययन, शोध और साक्षात्कार की लंबी शृंखला के बाद अंततः यह पुस्तक निर्धारित समयावधि में पाठकों के बीच आ चुकी है। पुस्तक की लेखिका डॉ. कस्तूरी पायगुड़े राणे अपने अथक श्रम, समर्पण, धैर्य और अकादमिक निष्ठा के लिए बधाई की पात्र हैं।

158 पृष्ठों की यह पुस्तक मुख्य रूप से 17 लघु अध्यायों में विभक्त है। इन अध्यायों के माध्यम से पंडित भीमसेन जोशी की पारिवारिक पृष्ठभूमि, उनका बचपन, संघर्ष, गुरु की तलाश, सतत यात्राएँ, तालीम, अवसर, आयोजन, पुरस्कार एवं सम्मान, विदेश यात्राएँ, समकालीन संगीत के साथी, संगीत घरानों की परंपरा, कर्नाटक संगीत, शिष्य परंपरा, रेडियो एवं ग्रामोफ़ोन रिकॉर्डिंग समेत अनेक पहलुओं को बहुत ही सहज एवं सरल तरीके से लेखिका ने प्रस्तुत किया है। पंडित जी से जुड़े कई रोचक संस्मरणों को भी बड़ी बारीकी के साथ अध्यायों में बुना गया है। समकालीन संगीत और भारतीय शास्त्रीय संगीत को लेकर पंडित भीमसेन जोशी के विचारों को भी बड़ी प्रमुखता के साथ उद्‌धत किया गया है। पुस्तक का कलेवर एवं छायाचित्र बहुत सुंदर हैं। पुस्तक के अंत में किराना घराने की वंश वृक्षावली एवं संदर्भ ग्रंथों की सूची व्यवस्थित ढंग से प्रदान की गई है। पंडित जी पर शोध-कार्य करने वाले अध्येताओं के लिए यह सूची निश्चित ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

पहले अध्याय में पंडित भीमसेन जोशी के बचपन की चर्चा करते हुए, लेखिका बताती हैं कि सन् 1922 में गुरुराज जोशी अपनी उच्चशिक्षा के लिए कर्नाटक के धारवाड़ ज़िले के गडग नामक स्थान से बिहार के 'गया' आ जाते हैं। वे शिक्षक, शिक्षाविद् और संस्कृत के विद्वान थे। उनकी धर्मपत्नी धारवाड़ में ही थी। 04 फ़रवरी 1922 को उनकी पत्नी गोदावरीबाई एक पुत्र को जन्म देती हैं। यह दिन 'रथ सप्तमी'

और 'सूर्य जयंती' का था, जो हिंदूओं में बड़ा शुभ माना जाता है। माँ-बाप ने इस बालक का नाम 'भीमसेन' रखा, जो आगे चलकर हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत का नामचीन गायक बना। 16 भाई-बहनों में वे सबसे बड़े थे। उनका परिवार कन्नड़ देशस्थ माधव ब्राह्मण परिवार था। उनके दादा भीमाचार्य एक प्रसिद्ध कीर्तनकार और समर्पित संगीततज्ञ थे। आपकी माँ गोदावरीबाई धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। बालक भीमसेन को सुलाने के लिए वे अपने मधुर कंठ से भगवान के भजन गाती थी। संभवतः इन्हीं सूरीले भजनों और लोरियों से बालक भीमसेन की संगीत शिक्षा शुरू हुई हो।

दूसरा अध्याय संगीत घरानों की परंपरा से संबंधित है। पंडित जी सात वर्ष की आयु से ही तानपुरा और हारमोनियम बजाने का प्रयास करने लगे थे। संगीत के प्रति बच्चे की रुचि एवं झुकाव को समझने में पिता को देर न लगी और उन्होंने इसी क्षेत्र में उसे शिक्षित करने का महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया। ख़्याल और अभंग की अपनी प्रस्तुतियों के लिए पंडित जी आज भी पूरे विश्व के संगीत-प्रेमियों में प्रमुखता से याद किये जाते हैं। पंडित जी किराना घराने से शिक्षित हुए थे। भारतीय शास्त्रीय संगीत में घरानों की पुरानी परंपरा है। हर घराने का अपना अनुशासन होता है। स्वर, लय, ताल, बंदिश और रागों की प्रस्तुति का अपना विशिष्ट अंदाज। ख़्याल गायकी के लिए जो घराने जाने जाते हैं, उनमें ग्वालियर घराना, आगरा घराना, किराना घराना, जयपुर घराना, भेंडी बाज़ार और पटियाला घराना प्रमुख हैं।

तीसरा अध्याय कर्नाटक संगीत की परंपरा और विरासत और संगीत के क्षेत्र में कर्नाटक के योगदान को प्रकाशित करता है। बालकृष्णबुवा इचलकरंजीकर सन् 1880 में महाराष्ट्र के मिरज में आए। आप ग्वालियर ख़्याल घराने से तालीम हासिल कर चुके थे। मिरज आने के बाद कई गायक दक्षिण की और आए, जोकि उन दिनों मुम्बई प्रेसिडेन्सी के नाम से जाना जाता था। मिराज, सांगली, कोल्हापुर, इचलकरंजी, औंध, कुरुंदवाद और भोर जैसी रियासतों का शासन था। ये रियासतें मैसूर रियासत से भी सटे हुए थे। कई ख़्याल गायकों को इन रियासतों से पद-प्रतिष्ठा एवं मान-सम्मान प्राप्त हुआ। इन गायकों में अब्दुल करीम खान (किराना घराने के संस्थापक), नथ्थन खान (आगरा घराना), अलादिया खान (जयपुर, अतरौली ख़्याल घराना), भास्कर बुआ बखारले आदि उस्तादों ने उत्तर भारत से कई अन्य युवाओं को इस ओर खींचा और स्थानीय संगीत-प्रेमियों को भी संगीत कला में पारंगत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'बाम्बे कर्नाटक' इलाके में मैसूर रियासत के माध्यम से शास्त्रीय संगीत लोकप्रिय हुआ। पंचाक्षरी बुआ और नीलकंठ बुआ पहले कन्नड भाषी थे, जिन्होंने हिंदुस्तानी संगीत में नाम कमाया। ये दोनों ही धारवाड़ ज़िले से थे। पंचाक्षरी बुआ से बसवराज राजगुरु ने शिक्षा ली थी। बसवराज ने सवाई गंधर्व से भी संगीत के गुर सीखे। सवाई गंधर्व की शिष्य परंपरा में हुबली से गंगूबाई हंगल और गडग से भीमसेन जोशी जैसे प्रमुख नाम हैं। मंजी खान और मुरजी खान से सीखने से पहले मल्लिकार्जुन मंसूर ने नीलकंठ बुआ से संगीत की पहली शिक्षा ली। सितार वादक रहिमत खान और वीणा वादक मोहम्मद खान ने भी धारवाड़ को अपनी कर्मभूमि बनायी।

चौथा अध्याय किराना घराना और भीमसेन जोशी नाम से है। इस अध्याय के अंतर्गत किराना घराने की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। किराना गायकी, स्वर, पुकार, सरगम, तान, बंदिश, आलाप, अतिविलंबित लय इत्यादि की चर्चा करते हुए, इनकी विशेषताओं को इस अध्याय में स्पष्ट किया गया है। इस घराने के लोकप्रिय राग जैसे ललित, पुरिया, तोडी, मुल्तानी, शुद्ध कल्याण, कोमल ऋषभ आसावरी, दरबारी कन्नड़, पटदीप इत्यादि।

अध्याय पाँच में अब्दुल करीम खान के जीवन-संघर्ष और संगीत-यात्रा की चर्चा की गई है। अब्दुल करीम खान का जन्म सन् 1872 में हुआ। आपके पिता उस्ताद काले खाँ के पारिवारिक संगीत की जड़ें गोपाल नायक से जुड़ी हुई हैं। वे 15वीं सदी में देवगिरी के राजा रामदेवराय के दरबार में गायक थे। उन्होंने अपने पिता और चाचा नन्हे खाँ से संगीत की शिक्षा ली। उत्तर प्रदेश के शामली ज़िले के छोटे से शहर कैराना को छोड़ वे वडोदरा आए, जहाँ एक कवि और संगीतकार के रूप में उन्होंने नाम कमाया। यहीं रहते हुए उनका ताराबाई माने से दूसरी शादी की। बाद में, वे महाराष्ट्र के मिरज में बसे और आस-पास के रियासतों से कई लोगों

को उन्होंने संगीत की शिक्षा दी।

छठवाँ अध्याय गुरु की तलाश/चयन से संबंधित है। इस अध्याय में सवाई गंधर्व की विस्तार से चर्चा की गई है। फ़िरोज़ दस्तुर एवं गंगूबाई हंगल इन्हीं के शिष्य परंपरा से रहे। उनका जन्म सन् 1886 में हुआ। शुरू में वे रामचंद्र कुंडगोलकर सौंशी के नाम से जाने गए। उनका जन्मस्थान कुडगोल, ज़िला धारवाड़ कर्नाटक रहा। उनके पिता गणेश सौंशी अब्दुल करीम खाँ के यहाँ एक क्लर्क थे। उन्होंने बलवंतराव कोल्हटकर से 75 ध्रुपद कंपोज़ीशन, कुछ तराने और ताल सीखे। कोल्हटकर की मृत्यु 1998 में हुई। आगे चलकर अब्दुल करीम खाँ ने सन् 1901 से सवाई गंधर्व को तालीम दी। जिससे सवाई गंधर्व ने संगीत के क्षेत्र में बड़ा नाम कमाया। गंधर्व की मृत्यु पुणे में सन् 1952 में 66 वर्ष की उम्र में हुई।

सातवाँ अध्याय - 'Delving into the Legend's Early years' नाम से है। इस अध्याय में बचपन से ही संगीत के प्रति पंडित जी की रुचि और संगीत की धुन में कहीं भी चले जाने की आदतों का रोचक वर्णन है। उनकी इन्हीं आदतों के कारण पिता ने पंडित जी की शर्ट पर लिख दिया था 'शिक्षक जोशी का लड़का' ताकि लोग उसे उन तक पहुँचा सकें। पंडित जी अक्सर स्कूल से घर आते हुए एक ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड की दूकान पर रुककर वहाँ बजने वाले संगीत को सुनते। यहीं पर बालक जोशी ने नारायणराव व्यास और पंडितराव नागरकर को सुना। कुछ कन्नड भाषा के प्रसिद्ध भजन भी उन्होंने यहीं सुनकर सीखे। पिता ने चन्नप्पा कुर्ताकोटी से जोशी की 7 वर्ष की आयु में विधिवत संगीत शिक्षा शुरू करायी। बाद में, पंडित श्यामाचार्य से भीमसेन जोशी ने संगीत-शिक्षा ली। जब अपनी पसंदीदा दूकान पर भीमसेन जोशी ने अब्दुल करीम खान को सुना, तब वे अधिर हो गए और 11 साल की उम्र में वे घर से गुरु की तलाश में भाग गए।

आठवाँ अध्याय – *'Off to Gwalior – Pursuit Begins'* हैं। पंडित भीमसेन के ग्वालियर पहुँचने की रोमांचक कहानी है। घर से भागकर वे गडग से 150 किमी. दूर बीजापुर आए। यहाँ कुछ दिन भटकने के बाद उन्होंने ग्वालियर जाने का निर्णय किया। अतः बीजापुर से वे पहले पुणे आए। पुणे से मुम्बई और मुम्बई से दिल्ली। लेकिन बिना टिकट की यात्रा के लिए उन्हें भुसावल में ही उतार दिया गया और स्टेशन मास्टर की हिरासत में दो दिन भूखा-प्यासा रखा गया। बाद में, दुबारा बिना टिकट यात्रा न करने की हिदायत के साथ छोड़ा गया। लेकिन वे दुबारा ट्रेन से खंडवा आ गये, जहाँ उन्हें फिर दो दिन हिरासत में रखा गया। इसी तरह यात्रा करते हुए तीन महीने बाद वे ग्वालियर पहुँचे। यहाँ उन्होंने हाफ़िज़ अली खान से मुलाकात की और माधव संगीत विद्यालय में प्रवेश हेतु उनका लिखा पत्र भी प्राप्त किया। हाफ़िज़ अली खाँ को सुनने और उनसे बहुत कुछ सीखने का मौका उन्हें यहीं मिला। पूछवाले ने भीमसेन को खैरागपुर बंगाल के केशव मुकुंद लुखे से संगीत सीखने की सलाह दी। चार महीने उनसे संगीत सीखने के बाद भीमसेन, भीष्मदेव चटर्जी से संगीत सीखने आए, जो अब्दुल खाँ के शिष्य थे। कुछ दिन कलकत्ता रहने के बाद वे वापस दिल्ली और फिर जालंधर आ गये। जालंधर रहते हुए उन्होंने आर्य संगीत विद्यालय में प्रवेश लिया, जहाँ 'ध्रुपद धमार' सीखा। यहीं 'सम्मेलन' में उन्हें विनायकराव पटवर्धन से मिलने का मौका मिला। उनसे ख़्याल गायकी की बारीकियाँ सीखने की जब भीमसेन ने बात की, तब उन्होंने आश्चर्य व्यक्त करते हुए पूछा – "फिर तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? तुम्हारे अपने पैतृक ज़िले में सवाई गंधर्व हैं, जो कुंडगोल गाँव में रहते हैं।" यह गाँव गडग के बगल का गाँव था। इस तरह पंडित भीमसेन वापस अपने घर आये। फिर सन् 1936 में सवाई गंधर्व के मार्गदर्शन में उनकी संगीत शिक्षा प्रारंभ हुई।

अध्याय नौ पंडित भीमसेन जोशी की तालीम से संबंधित है। सन् 1936 में सवाई गंधर्व के मार्गदर्शन में जो तालीम शुरू हुई, उसने भीमसेन की आवाज़ को निखार दिया। सन् 1942 में पैरालाइसिस के कारण सवाई गंधर्व आगे नहीं सिखा सके। वहाँ से वापस घर आकर पंडित जी ने छोटे-मोटे आयोजनों में प्रस्तुति देनी शुरू कर दी थी। धीरे-धीरे देशभर से उन्हें आमंत्रण मिलने लगे। मुम्बई, पुणे और नागपुर जैसे शहरों में उनका अक्सर जाना होने लगा। धीरे-धीरे उन्हें इससे अच्छी धनराशि मिलने लगी। ऑल इंडिया रेडियो के लखनऊ स्टेशन पर 'स्टाफ़ आर्टिस्ट' के रूप में भी उनकी नियुक्ति

हुई। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने और बर्मा की तरफ़ से भारत पर जापान के हमले की आशंका के बीच पिता के कहने पर सन् 1942 के अंत तक घर वापस लौट आये।

दसवाँ अध्याय –*'1946 Year of Fortune'* पंडित जी के जीवन में बड़े अवसरों की कहानी है। जनवरी 1946 में सवाई गंधर्व की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर पुणे के समारोह में उन्हें प्रस्तुति का अवसर मिला। सवाई गंधर्व पैरालाइसिस से धीरे-धीरे ठीक हो रहे थे। अब वे खुद से चल सकते थे और वे इस समारोह में उपस्थित थे। अपने गुरु के सामने यह उनकी पहली प्रस्तुति थी। यह प्रस्तुति सफल रही। इस प्रस्तुति के बाद ही उन्हें मुम्बई, सोलापुर और अहमदनगर समेत कई शहरों के बड़े-बड़े आयोजकों द्वारा कार्यक्रम प्रस्तुति का आमंत्रण मिला। अपने जीवनकाल में पंडित जी ने दस हज़ार से अधिक प्रस्तुतियाँ दीं।

अध्याय ग्यारह – *'A New Era of Guardianship'* में आज़ादी के बाद संगीत और कला क्षेत्र के संरक्षण, विकास और लोकप्रियता का वर्णन है। इस समय तक भीमसेन जोशी काफ़ी लोकप्रिय हो गये थे। वे एक और परंपरागत शास्त्रीय गायकी को पूरी तरह अपनाते हुए आगे बढ़ रहे थे, तो दूसरी ओर जनसामान्य की आकांक्षाओं एवं उनके बीच लोकप्रिय कलारूपों को भी समझते थे। मराठी संगीत प्रेमियों ने तान और ख़्याल के लिए भीमसेन जोशी पर भरपूर प्रेम लुटाया। 'तानकरी' मराठी भाषा-भाषियों में हमेशा आदर-सम्मान पाते रहे हैं। 'संतवाणी' की गायकी ने भी उनकी लोकप्रियता में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

अध्याय बारह – *'Global Tours'* के माध्यम से पंडित जी की वैश्विक यात्राओं का वर्णन विस्तार से किया गया है। सन् 1964 के बाद उन्हें विदेशों में सांगीतिक प्रस्तुतियाँ देने का अवसर मिला। विदेशों में अपने कई कार्यक्रमों के आयोजन की भी ज़िम्मेदारी पंडित भीमसेन जी ने स्वयं निभाई। पश्चिमी और मिडल ईस्ट के देशों में उनकी काफ़ी लोकप्रियता थी। विदेशों में अपनी पहली प्रस्तुति पंडित भीमसेन जी ने 1964 में काबुल में दी थी। इसके बाद सन् 1978 में वे अमेरिका, कनाडा और इंग्लैंड की यात्रा पर गये। आगे इटली, रोम, दुबई, अबूधाबी, बहरीन इत्यादि देशों की उन्होंने यात्राएँ की।

अध्याय तेरह – *'The changing Scenario'* में लेखिका ने संगीत को लेकर नई पीढ़ी की बदलती रुचि को पुणे के परिप्रेक्ष्य में अनुभवों के आधार पर व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में वर्ष 2000 में भीमसेन जी से अपनी मुलाकात की बातों का ज़िक्र लेखिका ने किया है। पंडित जी बदलावों के प्रति सूक्ष्म नज़र रखते हुए विश्वास व्यक्त करते कि भारतीय शास्त्रीय संगीत समय के साथ अपनी गति और लय को बनाये रखने में हमेशा सफल रहेगा। वे 'अलापी' को रागों की आत्मा मानते थे। वे मानते थे कि सच्चा कलाकार अपनी प्रस्तुति से पहले स्वयं आनंदित होता है, फिर दर्शकों के रिस्पॉन्स के बारे में सोचता है। वे नये कलाकारों को लगातार रियाज़ करते रहने की सलाह देते थे। यह अपनी कला को माँजने के लिए ज़रूरी है।

अध्याय चौदह – *'Reflection'* में संगीत की उन महान् विभूतियों का ज़िक्र है, जिनसे अपने जीवन-काल में पंडित जी मिले और उन मुलाकातों में इतना 'प्रभाव' रहा कि अंतर्मुखी भीमसेन जी इन स्मृतियों का ज़िक्र यदा-कदा करते रहे। जनाब आमिर खाँ का ज़िक्र वे विशेष तौर पर करते हैं, जिनसे वे राग 'अभेगी' सीखने की बात करते हैं। पंडित जी इसे खान साहब का श्रेष्ठतम उपहार मानते थे। इसी तरह केसरबाई केरकर, कुमार गंधर्व, गंगुबाई हंगल, फ़िरोज़ दस्तुर, वंसराव देशपांडे जैसे नामों का उल्लेख है। 'स्पिक माके' से उनके जुड़ाव की चर्चा भी इस अध्याय में है।

अध्याय पंद्रह – *'Honours And Awards'* में पंडित जी को मिले पुरस्कारों एवं सम्मानों की चर्चा विस्तार से की गई है। इनमें मुख्य रूप से पद्मश्री (1972), संगीत नाटक अकादमी आवॉर्ड (1975), पद्मभूषण (1985), संगीत नाटक अकादमी फ़ेलोशिप (1998), तानसेन सम्मान (1998), पद्मविभूषण (1999), देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत-रत्न (2002), महाराष्ट्र भूषण (2005) समेत अनेकों अन्य पुरस्कारों की चर्चा है। पुणे विश्वविद्यालय में भीमसेन जोशी चेअर एवं सवाई गंधर्व फ़ेस्टिवल की भी विस्तार से चर्चा की गई है।

अध्याय सोलह – *'Role as Guru & his musical excellence'* में एक गुरु के रूप में पंडित जी का चित्रण है। पंडित जी अपनी सांगीतिक प्रस्तुतियों के लिए लगातार यात्रा

पर रहते थे, इस कारण अधिक शिष्यों को नहीं सिखा सके। लेकिन वे अपने शिष्यों को लगातार प्रोत्साहित करते थे। जिन कार्यक्रमों में पंडित जी जाते, उनमें अपने उपस्थित शिष्यों को भी प्रस्तुति देने के लिए प्रेरित करते। माधव गुड़ी, नारायण देशपांडे, श्रीकांत देशपांडे, रामकृष्ण पटवर्धन उनके प्रमुख शिष्य रहे। पंडित जी ने हमेशा नवाचारों का समर्थन किया।

अध्याय सत्रह – *'Pandit Joshi : life well lived'* इस पुस्तक का अंतिम अध्याय है। इस अध्याय में पंडित जी के पारिवारिक जीवन की विस्तार से चर्चा है। पंडित जी के विवाह और पुत्रों से संबंधित जानकारी भी इसी अध्याय में है। पंडित जी का पहला विवाह सन् 1944 में सुनंदा हुन्गुंड से हुआ था, जिनसे आप को दो लड़के और दो लड़कियाँ थीं। औरंगाबाद की वत्सला धोन्डोपंत मुधोलकर से सन् 1951 में पंडित जी ने दूसरा विवाह किया। दोनों संगीत नाटकों में सहकलाकार के रूप में कार्य कर चुके थे। 'भाग्यश्री' नाटक ऐसा ही एक नाटक था।

समग्रतः कहा जा सकता है कि भारत-रत्न पंडित भीमसेन जोशी के जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर लेखिका ने अपनी श्रद्धांजलि इस अमूल्य अकादमिक धरोहर के रूप में प्रस्तुत की है। पंडित भीमसेन जोशी के जीवन की जद्दोजहद को आने वाली पीढ़ियाँ प्रेरणा के रूप में स्वीकार कर सकती हैं। पंडित भीमसेन जोशी का जीवन आधे मन से किया गया कोई समझौता नहीं, अपितु अपने सपनों के लिए प्राणपन से लड़ने और डँटे रहने की एक साहसिक यात्रा है। पंडित भीमसेन जोशी का जीवन विश्वास से भरा हुआ एक जादूई आलिंगन है। उन्होंने अपनी सारी कमियों, सारे अंधेरों को अपने अंदर घोलकर रोशनी के तिलिस्म में बदल दिया था। मानवीय संवेदनाओं का सूत पंडित जी ने संगीत की स्वर लहरियों में खोज लिया था। उनका संगीत मनुष्यता का प्रत्यक्ष स्वर है, जिसने एक भाव से सभी को गले लगाया। यही भारतीयता की आत्मा भी है। पंडित भीमसेन जोशी का जीवन अपने सपनों के लिए आवारा हो जाने की दास्तान है, लेकिन इस आवारगी में एक अनुशासन, एक सलीका था। इस आवारगी में लौटती उम्मीदों के साथ अनुभवों का आनंद, करुणा का उभार और हर मुसीबत को बौना साबित करने की खुशी थी। लेखिका डॉ. कस्तूरी पायगुड़े राणे को इस अनुपम कृति के लिए बधाई।

manishmuntazir@gmail.com

कुंभ : भारतीय चिंतनधारा का राष्ट्रीय पर्व

डॉ. विनय कुमार शर्मा
लखनऊ, भारत

कुंभ ऋग्वैदिक काल से प्रवाहमान भारतीय संस्कृति में छिपी चेतना एवं ऐक्य की भावना का प्रतिबिम्ब है। वह "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की भावना का पोषक है। यह भारतीय चिंतनधारा का राष्ट्रीय पर्व है। हमारे पर्व राष्ट्रीय जीवन की प्रतिध्वनि हैं। यह सदियों से हमारी एक जीवंत चेतना का राष्ट्रव्यापी ताना-बाना बुनता रहा है। संगम में गोता लगाते समय सभी "हर हर गंगे" कहते हैं। कोई किसी से नहीं पूछता - "आप किस प्रांत के हैं, कौन-सी भाषा बोलते हैं, क्या खाते-पीते हैं या आपके विचार क्या हैं?" केवल एक लक्ष्य है - जो परम् लक्ष्य है - आत्मा की शान्ति और मोक्ष! इस विराट समत्व भाव को हम क्यों नहीं पकड़ पाते?

कुंभ पर्व मनाने के निहितार्थ का ज्ञान करके हम आज के आस्थाहीन समाज में जीवन के मूल्यों को पुनः स्थापित कर सकते हैं। यह हमारा दृष्टिदोष है, जिसके कारण हमें कुंभ परम्परा में राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता, समत्व एवं सदाचार, त्याग एवं तपस्या, आत्मशुद्धि एवं आत्मविकास के सूत्रों के दर्शन नहीं होते।

कुंभ में लोक आस्था की झलक मिलती है, लोक जीवन के दर्शन होते हैं। यदि हम कहें कि कुंभ लोक आस्था और लोक जीवन का हिमालय है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कुंभ नियम, संयम एवं पूर्ण संकल्प की प्रेरणा देता है, जिससे हम जीवन में सत्य का साक्षात्कार कर सकते हैं। अथर्वा ऋषि कहते हैं -

"चतुरः कुम्भाश्चतुर्धा ददामि
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना
एतास्त्वा धारा उपमन्तु सर्वा।।"

'अर्थात् - पूर्व, उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण चारों दिशाओं में जीवन के कर्म रूप यज्ञ की पूर्णता के लिए दुग्धादि से भरे चार कलश स्थापित करता हूँ। मधुर रस से युक्त होकर दुग्ध धाराएँ तथा अमृत जल से पूर्ण सरिताएँ प्राप्त करो।'

प्रयाग के संगम जल में चारों दिशाओं का सुधारस आस्था के सत्य रूप सागर बन जाता है। लोक-कर्म को प्रेरित करने वाली गंगा उस सुधारस का घोल उड़ेल देती है। वैसे ही संगम की भूमि लोक-आस्था और लोक-विश्वास की विराम स्थली है। यह है कुंभ का तात्विक विवेचन।

भारत की संस्कृति आनन्दधर्मी है, क्योंकि आनंद को ही ब्रह्म माना गया है। कुंभ हमारी सार्वभौम संस्कृति का प्रतीक है। यह लोक समभाव और लोकमंगल का पर्व है।

प्रयाग का त्रिवेणी संगम हिमालयी आस्था का विस्तार है। यहाँ विष्णु गंगा है, कृष्ण गंगा है, पिंडर गंगा है, शिव गंगा है, ऋषि गंगा है, महा गंगा है, काली गंगा है, गौरी गंगा है, धौली गंगा है, राम गंगा है - ये सभी सहायक नदियाँ हैं, जो आसेतु हिमालय से प्रयाग तक के मार्ग में गंगा से मिलती हैं। यहाँ यमुना अपनी सहायक नदियों से पूर्ण होकर मिलती है। संगम स्नान से उन सभी पावन नदियों में स्नान का फल और स्फूर्ति मिलती है।

सामवेद कहता है -

"आविशन् कलशं सुतो
विश्वा अर्षन्नीय श्रियः।"

'अर्थात् - कुंभ श्रेयस् की मंजूषा है। इसे अनन्त काल से संगम का सिकतापूर्ण तट संजोता आ रहा है। यहाँ बालू का एक-एक कण लोक-आस्था का सुमेरु है।'

कुंभ हमारे राष्ट्र की मानसिक सामूहिकता का प्रतीक है। शताब्दियों के परिस्थिति-चक्रों में पड़कर भी यह विश्व में अपरिमेय रही है। यह सामूहिकता कितनी गहरी है, कितनी महान् है और कितनी आंतरिक है, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

हम गंगा के साथ-साथ नदी, वृक्ष, गाय, राष्ट्र, वेद, हिमालय, समुद्र सभी को वंदनीय मानते आये हैं और आज भी ऐसा ही मानते हैं। राष्ट्र के प्रति हमारी आत्मीयता, वन्दनीयता और मानसिक सामूहिकता को आज भी हम सहेजकर रखते हैं।

कुंभ भारत का महान् सांस्कृतिक महोत्सव है। इसके

मूल को पहचानकर ही सरकारी तंत्र को मेले की व्यवस्था करनी चाहिए। किन्तु होता यह है कि सारी व्यवस्था इस दृष्टि से की जाती है कि कोई बड़ी दुर्घटना न हो जाए। इस आशंका के प्रति सचेत रहना अच्छी बात है, किन्तु इसके कारण इस मेले के जन महोत्सव स्वरूप को नष्ट होने से बचाना अनिवार्य है। कुंभ विभिन्न संप्रदायों का समन्वय है। आदमी से आदमी का जुड़ना संस्कृति है। यह उमड़ता जन-समुदाय बिना किसी आमंत्रण के स्वतः आया है। वह कौन-सी चुम्बकीय आकर्षण है, जो देश-विदेश से इस अपार जन समूह को संगम तक खींच लाती है? कुंभ पर्व की विशेषता है विभिन्न धर्मावलंबियों का एक स्थान पर जुटना। कुंभ आपस में लोगों को जोड़ने की संस्कृति का मूर्त रूप है।

सामूहिक जीवन, सह-चिंतन और सहकार कुंभ का सामाजिक पक्ष है और आध्यात्मिक भी। यह समन्वय, सहिष्णुता और असाम्प्रदायिक संस्कृति का केंद्र-बिन्दु है।

कुंभ पर जीवन की समग्रता के दर्शन होते हैं। इस अवसर पर धर्मनीति, राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति पर बृहद् चर्चा होती है, जिससे एक बृहद् समन्वयवादी संस्कृति का विकास होता है।

कुंभ सांस्कृतिक पर्व है, जन-महोत्सव है, आत्म-उत्कर्ष का सोपान है। साम्प्रदायिकता, जड़त्व एवं धर्मान्धता में डूबे हुए लोग इसे विकृत करने पर तुले हुए हैं। इसके लक्ष्य हैं - सर्वधर्म समभाव, जन-पक्षधरता एवं समरसता। आपसी सौहार्द और सीधा साक्षात्कार ही इसके मूल में है। यही जीवन तत्त्व है, अमृत तत्त्व है, जो सामाजिक विघटन एवं मानव मूल्यों के ह्रास को रोक सकता है।

कुंभ की संस्कृति हमें विभिन्न भाषा-भाषी लोगों से जोड़ती है। विभिन्न रीति-रिवाज़ों और विभिन्न रहन-सहन वालों से जोड़ती है। यह दक्षिण, पश्चिम, उत्तर एवं पूर्व को जोड़ती है।

सन् 1915 में महात्मा गांधी हरिद्वार के कुंभ मेले में गए थे। अपनी आत्मकथा में कुंभ चिंतन करते हुए महात्मा गांधी ने लिखा -

"कुंभ का दिन आया। मेरे लिए वह घड़ी धन्य थी। मैं यात्रा के उद्देश्य से हरिद्वार नहीं गया था। तीर्थ क्षेत्र में पवित्रता के शोध में भटकने का मोह कुंभ कभी नहीं रहा। किन्तु 17 लाख लोग पाखंडी नहीं हो सकते। कहा गया था कि मेले में 17 लाख लोग आये होंगे। इनमें असंख्य लोग पुण्य कमाने और शुद्धि प्राप्त करने के लिए आये थे, इसमें मुझे कोई शंका नहीं थी। यह कहना असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है कि इस प्रकार की श्रद्धा आत्मा को किस हद तक ऊँचा उठाती होगी।"

गंगा भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं आध्यात्मिकता का गतिमान इतिहास है। यह उत्तर प्रदेश का सौभाग्य है कि भारत के चार कुंभ नगरों में एक प्रयागराज इसी प्रदेश में है। आज आवश्यकता है इस कुंभ परम्परा के रचनात्मक सूत्रों को पकड़ने की, ताकि इनका प्रयोग और विस्तार राष्ट्रीय हित में किया जा सके।

भारतीय पंचांग विशिष्ट काल विज्ञान संबंधी शोध परम्परा से जुड़ा है। यह भारत का अपना विज्ञान है, जो साल के प्रतिमाह, प्रति पखवारे, प्रति हफ़्ते हमें विशिष्ट त्योहारों को मनाने का आदेश देता है, जिसका पालन सभी करते हैं। भारतीय जब इन त्योहारों-पर्वों को मनाते हैं, तब वे अपने को इस देश से जोड़ते हैं।

जब लाखों का जन-समूह पवित्र नदियों में स्नान करता है, तब वे अपने को इस देश के पुत्र सिद्ध करते हैं। इससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि असंख्य जन नदियों से अपने को जोड़कर यह सिद्ध करता है कि वह एक है और समग्र जन एक हैं। इस प्रकार कुंभ में भारत की एकात्मकता का दर्शन होता है।

कुंभ एक ऐसा आयोजन है, जिसमें भारत की एकता, परम्परा, अस्मिता और इतिहास का अमृत मिलता है। हमारे समाज का एक वर्ग जहाँ इस देश को पश्चिम की तरह बनाने में तुला है, वहाँ लाखों का जन-समुदाय उसमें राष्ट्रीयता एवं भारतीयता का रंग भरते हैं। हमारा प्रयास है कि कुंभ के इस विराट पर्व को वैज्ञानिकता और राष्ट्रीय सार्थकता से जोड़ने का कर्तव्य निभाएँ। हमें इस नयी राष्ट्रीय धारा से जुड़ने का भागीरथ प्रयास करना चाहिए। कुंभ पर्व को इस देश की भाषाओं, इतिहास, दर्शन और सामाजिक समस्याओं पर प्रखर विचार करने का माध्यम बनाना चाहिए। हमें देश के

जन-मानस से एकाकार होने की आवश्यकता है। कुंभ से तटस्थ रहकर किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यदि जनमानस से संवाद करना है, तो हमें कुंभ से जुड़ना होगा तथा इसके एकात्म भाव को पहचानना होगा। कोई भी परिवर्तन कुंभ से तटस्थ रहकर संभव नहीं है।

कुंभ नगर में शताब्दियों से निरंतर प्रवाहमान दार्शनिक, आध्यात्मिक चिंतनधाराओं के प्रतिनिधि दशनामी संत, वैष्णव मतावलम्बी, शाक्त-अघोर मतावलम्बी, अद्वैतवादी, बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बी महात्मागण निर्धारित हैं और अपने-अपने हिमगिरों में अपने मतावलम्बियों को संबल देते हैं। इन सभी का श्रद्धा-भक्तिपूर्वक संगम स्नान सर्वधर्म समन्वयात्मक यज्ञ है। यहाँ गंगा यमुनामयी है, तो यमुना गंगामयी है। प्रयाग के आगे इन दोनों नदियों का केवल गंगा के रूप में प्रवाह बंगाल की खाड़ी में समुद्र मिलन तक रहता है।

श्री वेदव्यास के अनुसार आत्मा नदी है, संयम स्नानघाट है। सत्य जल है और शील आत्मा नदी के दो तट हैं, जिनके अन्दर दया की लहरें उठती हैं। इसी में गोता लगाना कुंभ स्नान है। कुंभ परम्परा के माध्यम से एकता, सद्भावना एवं सहिष्णुता के बारे में चितंन हो सकता है। इस परम्परा के माध्यम से विश्व के विभिन्न धर्मों के प्रति आदर के भाव को प्रबल किया जा सकता है।

कुंभ को केंद्र-बिन्दु मानकर हम सामाजिक, आध्यात्मिक भौतिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, आर्थिक एवं राजनैतिक मुद्दों पर विचार करके राष्ट्र नव निर्माण की बात कर सकते हैं।

कुंभ के माध्यम से हम देश के नवयुवकों के चरित्र-निर्माण पर कार्यक्रम बना सकते हैं। देश-विदेश से कुंभ में पधारे चिंतकों, साधु-संन्यासियों, तपस्वियों, योगियों, आध्यात्मिक गुरुओं तथा सद्हस्थों से विचार-विनिमय करके राष्ट्र के नव-निर्माण के सूत्र का अन्वेषण कर सकते हैं।

हम कुंभ के आकर्षण को देश के प्रति अनुराग के विषय का कार्यक्रम बना सकते हैं। कुंभ के अवसर पर जहाँ लाखों श्रद्धालु गंगा-यमुना के सुधारस का पान कर रहे हैं तथा दोनों नदियों के पवित्र जल में गोते लगाकर अनिवर्चनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं, वहीं पूरे कुंभ क्षेत्र में साधु-सन्तों के प्रवचनों से सरस्वती प्रस्फुरित हो रही है। गंगा-यमुना जहाँ हिमालय से नैसर्गिक अनुगूँज लेकर यहाँ नित्य प्रवाहित हैं, वहीं कुंभ के अवसर पर अदृश्य सरस्वती पूरे मेला क्षेत्र में साधु-संतों के प्रवचनों के माध्यम से प्रवाहित हो रही है। लाखों जन-समूह का इनके प्रति आकर्षण एक अद्भुत विषय है, जो देश में समरसता, भक्ति-ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी प्रवाहित कर सकता है।

हम क्यों अपनी विराट विरासत से अनभिज्ञ हैं? या विज्ञ होकर भी अनभिज्ञ रहना चाहते हैं? यदि हम ध्यान दें, तो हमारी कुंभ परम्परा पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण चारों दिशाओं में आध्यात्मिक गुरु बृहस्पति की गति के साथ प्रवाहमान है। बृहस्पति, चन्द्रमा और सूर्य की गति के साथ उनके जीवनदायी अमृत प्रभावों को सर्वजन सुलभ करने की भावना से काल निर्णय के द्वारा हमारे आर्य ऋषियों ने साधु-सन्तों, तपस्वियों, योगियों और गृहस्थों को उनकी गति का अनुसरण करते हुए प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में प्रति चार वर्षों के अन्तराल में पुण्यकाल अवधि तक इन स्थानों में भजन-कीर्तन, प्रवचन, यज्ञ, दान, उपवास आदि का निर्देश दिया है। इस कुंभ परम्परा पर राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाकर हम देशवासियों को एकता के सूत्र में मिलाकर आतंकवाद, क्षेत्रवाद और भाषा-विवाद की समाप्ति कर सकते हैं।

मानव जीवन दुर्लभ है, विशेषकर इसलिए कि ईश्वर ने मानव में विवेक बुद्धि दी है। ऋषि-मुनियों ने अपनी तपश्चर्या, अनुभूतज्ञान और प्रयोगों के माध्यम से सूर्य और चंद्रमा की रश्मियों का सूक्ष्म अध्ययन करके विभिन्न व्रतों का उपदेश दिया है। उदाहरण के लिए एकादशी की विधि कोई धनदा होती है, तो कोई पुत्रदा। इस जीवन-दायिनी सूर्य-रश्मि विज्ञान के माध्यम से ही कुंभ पर्वों के आयोजन का निर्धारण किया गया है।

आश्चर्य की बात है कि कुंभ पर्व इन चार स्थानों पर मनाने के लिए कोई प्रचार नहीं होता है, कोई पोस्टर नहीं लगता। पंचांग के किसी एक कोने में कुंभ तिथि लिखी रहती है, जिसे गाँव-गाँव, नगर-नगर में फैले साधु-संत, पंडित, विद्वान आदि जन-साधारण को बताते हैं। बस इतना ही प्रचार है। इस प्रकार पीढ़ियों से भारतवासी प्रति बारहवें वर्ष कुंभ और प्रयाग में अर्द्ध कुंभ की परम्परा से अवगत हैं। हमें इसी

भारतीय चेतना को पकड़ना है। जब यह चेतना हमारे राष्ट्र नव-निर्माण का अंग किसी रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से देश में प्रस्फुटित होगी तब वह सफल होगा।

आप स्वयं देखिए, कुंभ में भाषा, प्रान्त, क्षेत्रीयता, संकीर्णता, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि का कोई भेद नहीं है। गंगा-यमुना का जल सभी के लिए अविभक्त है। आप यह नहीं कह सकते कि गंगा की अमुक जल तरंग ब्राह्मण के लिए, अमुक जल तरंग मुस्लिम के लिए, अमुक जल तरंग सवर्णों के लिए तथा अमुक दीनों या इतर जातियों के लिए है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, देशी-विदेशी सभी के लिए गंगा-यमुना तथा भारत की अन्य नदियाँ समान रूप से अवगाहन के लिए उपलब्ध हैं। इन नदियों के साथ सर्वधर्म, सर्ववर्ण, सर्वप्रान्त और सर्व देश समभाव भारत के नव-निर्माण में एक सशक्त कार्यक्रम का विषय बन सकता है। यह एकरसता, समरसता और सर्वसुलभता की भारतीय संस्कृति है, जो राष्ट्र नवनिर्माण की कुंजी है। किन्तु हम इस प्रकार के चिंतन से विमुख हैं।

कुंभ पर्व का कोई रूढ़िवादी विचार न जकड़े, तो हमारे लिए अच्छा होगा। कुंभ-स्नान के लिए उमड़े जन को हम पुरातनपंथी या पोंगावादी न कहें, तो हमारे लिए शुभ होगा।

गंगा के किनारे कुंभ पर्व का आयोजन हमें राजा भगीरथ के वर्षों के अथक प्रयास और कठिन तपस्या की याद दिलाता है, क्योंकि गंगा का पृथ्वी पर आना राजा भगीरथ के ही अनवरत संघर्ष और तप तथा अविचल इच्छा-शक्ति का प्रतिफल है।

उदाहरण के रूप में महात्मा गांधी को ले सकते हैं। भारत को स्वतंत्र कराने के लिए गांधी जी ने एक संघर्ष का राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया। गांधी का रास्ता शान्ति, सद्भाव, अहिंसा और अनवरत संघर्ष का रास्ता था। करोड़ों भारतवासियों को अपने राष्ट्रीय कार्यक्रम से जोड़ने के लिए गांधी को सर्वधर्म समभाव का रास्ता अपनाना पड़ा। उनकी दैनिक प्रार्थना में सभी वर्गों की प्रार्थनाएँ शामिल थीं। गांधी ने भारत की जनता की नस को परखा था। धार्मिक होते हुए भी गांधी पुरातनपंथी नहीं थे। उन्होंने बड़ी ही चतुराई एवं सहजता से धर्म को कर्म के साथ जोड़ा।

कुंभ हमारी सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। इस प्रतिष्ठान से हम जीवंत चेतना ग्रहण कर सकते हैं और पूरे देश को इस सर्वग्राही चेतना से अनुप्राणित कर सकते हैं। एकत्रित इस जन-समुद्र को हम अंध विश्वासी या भेड़ियाधँसान न कहें तो उत्तम होगा। आखिर क्यों? इसलिए कि देश के विभिन्न अंचलों से जब कुंभ स्नानार्थी चलता है, तब वह अपने मन में कुंभ भावना-सद्भाव, अच्छे कार्य के लिए कष्ट सहन करना, ईश्वर में आशा रखना, नदियों को पवित्र समझना आदि भावना लेकर चलता है। इस प्रकार कुंभ स्थान पर चारों दिशाओं से देश के विभिन्न भागों, प्रान्तों, नगरों से अच्छी भावनाओं की तरंगें पहुँचती हैं, जो कुंभ क्षेत्र को रसमय, संगीतमय, प्रेममय, श्रद्धामय और आध्यात्मिक बनाती हैं।

कुंभ परम्परा से हमें इन्हीं सद्भावों की तरंगों को पकड़ना है और उसे एक राष्ट्रीय कार्यक्रम का रूप देना है। यदि ऐसा हुआ, तो निःसंदेह भारत में सुख-शान्ति, अमन-चैन का वातावरण बनेगा, जो देश को खुशहाली की ओर ले जाएगा।

कुंभ चिरंतन आस्था, श्रद्धा और भक्ति का पर्व है। यह समग्र बुद्धि के जागरण का पर्व है। प्रति बारहवें वर्ष कुंभ पर्व के आयोजन के अमृत-तत्त्व की खोज के अतिरिक्त दार्शनिक पक्ष भी है। हमारी पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन दस के अतिरिक्त सूक्ष्म तत्त्व हैं - चित और बुद्धि। इन्हीं बारह अंगों से मानव शरीर क्रियाशील रहता है और देवासुर संग्राम हमारे शरीर के अन्दर ही चलता रहता है। इस प्रकार यह कुंभ पर्व स्नानार्थियों का अपने इन्द्रियों पर विजय, मन की शुद्धि और बुद्धि के विकास का प्रतीक है, जो हमें आपसी सद्भाव, पर दुख कातरता, सहयोग, सहजीवन और सभी धर्म सम्प्रदायों के प्रति आदर के भावों को पुष्ट करता है। क्या ये उद्देश्य हमारे राष्ट्रीय नवजागरण के कार्यक्रम के लिए पर्याप्त नहीं है?

किसी भी उत्सव, पर्व या सामूहिक आयोजन को हम पुरातनपंथी, पुराणपंथी या अनावश्यक कहने के लिए स्वतंत्र हैं। किन्तु ऐसा कहने से पूर्व हमें इन राष्ट्रीय उत्सवों की जड़ का अध्ययन करना होगा। हम इन पर्वों को नकारते हुए जनमानस को अपनी ओर या अपने रचनात्मक कार्यक्रमों की ओर आकृष्ट नहीं कर सकते। इन उत्सवों-पर्वों में निहित

मनोविज्ञान, अध्यात्म, सामाजिक चिंतन के गूढ़ भावों का हमें अवगाहन करना होगा और तभी हम इनके मूल में छिपी जन कल्याणकारी भावनाओं को पकड़ सकते हैं और उनका युग के अनुरूप परिष्कृत कार्यक्रम का समावेश करके लाभ उठा सकते हैं।

हमारे सरकारी प्रचार तंत्र-आकाशवाणी और दूरदर्शन-कुंभ को भारतीयता की पहचान बनाने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। कुंभ के सभी पक्ष निरथर्क नहीं हैं। अंधविश्वास, धन की प्रदर्शनी के रूप, पहलुओं को काट-छाँटकर इसके सार्थक मूल्यों को सहेजकर हम कुंभ के बहाने नए भारत के निर्माण की कल्पना कर सकते हैं। कुंभ पर्व, वास्तव में, हमारे महर्षियों द्वारा शोधित एक महान् उदात्त पर्व है। इस अवसर पर विश्व के लोग आकर अपने विचारों का यंत्र द्वारा प्रचार-प्रसार करते हैं।

जीवन की नश्वरता, संसार की अनित्यता, शरीर की साधना, मन की वृत्तियों को वश में करना तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रश्रय देना कुंभ के लक्ष्य हैं। अमर तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना ही कुंभ प्रतीक का वास्तविक अर्थ है।

कुंभ जीवन में समानता का पर्व है। यह त्याग का पर्व है। राजा हर्ष अपने सारे खज़ाने का दान करके सबकी बराबरी में आ जाते थे। यह त्याग एवं समता के मार्ग को प्रशस्त करने वाला पर्व है। अंधविश्वास, कर्मकांड या व्यक्ति-पूजा की संकीर्ण भावनाओं में कुंभ प्रतीक को बाँधना भारतीयता की सामूहिक मानसिकता का मखौल उड़ाना है।

कुंभ स्नानदान का पर्व है। इस अवसर पर देश की पवित्र नदियों में स्नान मात्र ही नहीं हो। यहाँ भगवान का कथामृत भी बरसता है। संतो के प्रवचन से बालुका क्षेत्र का पूरा वातावरण कण-कण भगवद्मय हो जाता है, जिसके कारण मन स्वतः भगवत नामस्मरण और चिंतन में गोता लगाने लगता है, तभी तो कुंभ स्नान से अनेक विशिष्ट यज्ञों का फल मिलता है।

कुंभ का उद्देश्य महत्तम है। यह विश्व के श्रद्धावान लोगों के लिए वरदान है। यह किसी जाति-विशेष या धर्म-विशेष का मेला नहीं है। आज आवश्यकता है कुंभ पर्व पर देश के बृहत्तर समाज के सांस्कृतिक आचरण की पुनर्व्याख्या की, पुनरावलोकन की और सदाचार का रेखांकन करने की। सरकारी प्रचार तंत्र कुंभ का विराट फलक उभार सकता है। इसे व्यापक बनाते हुए भारतीय जन-जीवन से जुड़े हुए पर्वों की समग्रता का दर्शन करा सकता है। कुंभ पर्व सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक उदारता का पर्व है। यह भारत की विविधता में एकता का पर्व है। हमें इसके एकात्म सूत्र को पकड़ना होगा।

dr.vinaysharma123@gmail.com

इक्कीसवीं सदी की स्त्री : भारतीयता की पोषक या विनाशक?

डॉ. आशा मिश्रा 'मुक्ता'
तेलंगाना, भारत

मातृसत्ता और पितृसत्ता के बीच पिसती हुई स्त्री 21वीं सदी तक पहुँच चुकी है, जहाँ आधुनिकतावाद, स्वतंत्रता, स्वच्छंदता के साथ सभ्यता, संस्कृति और परम्परा का मुठभेड़ चल रहा है। पीढ़ियों के बीच जंग जारी है। ऐसा माना जा रहा है कि स्त्रियों की स्वच्छंदता और स्वतंत्रता भारतीय संस्कृति और सभ्यता का विनाशक है। इससे इतना तो साफ़ हो जाता है कि स्त्री ही सभ्यता और संस्कृति की पोषक है। अब बात यह है कि अबला कहलाने वाली स्त्री क्या सच में इतनी शक्तिशाली हो चुकी है कि अपनी वर्षों पुरानी संस्कृति को प्रभावित कर रही है? परंपरा तोड़ रही है और सभ्यता का विनाश कर रही है? हमारी सभ्यता या संस्कृति क्या इतनी कमज़ोर है कि आसानी से इसका हनन किया जा सके? इसके लिए हम पाश्चात्य सभ्यता को भी दोषी मानते हैं, जिसका अनुकरण कर हम बर्बाद हो रहे हैं और समाज को नुकसान पहुँचा रहे हैं। क्या पाश्चात्य सभ्यता में इतनी शक्ति है, जो हमारी सदियों पुरानी सभ्यता का विनाश कर सके? आज की स्त्री क्या सच में स्वच्छंदता या स्वतंत्रता की सीमा तोड़ चुकी है, जिससे समाज लज्जित हो रहा है? स्त्रियों की

वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए एक नज़र प्राचीन काल में डालकर देखते हैं और पता लगाते हैं कि आज की स्त्री उनसे कितनी अलग है।

पीछे मुड़कर देखने पर वैदिक और पौराणिक काल की मातृसत्तात्मक शासन-व्यवस्था नज़र आती है, जिसमें घर की मुखिया स्त्री होती थी। वह पूर्ण आत्मनिर्भर होकर सम्पूर्ण कुटुम्ब का भरण-पोषण करने का अधिकार रखती थी। 'वर' जिसे पति कहते हैं, यह शब्द ही स्त्री की स्वायत्तता सिद्ध करने के लिए काफ़ी है। 'वर' शब्द का अर्थ 'चुना गया' और चुनने वाला होता है, पर संस्कृत भाषा में इसका स्त्रीलिंग नहीं है। अतः यह साफ़ है कि यह शब्द लड़कों के लिए ही प्रयोग में लाया जाता था। लड़की के लिए 'स्वयंवरा' या 'पतिंवरा' शब्द हैं। स्त्री अपना पति चुनकर उसे अपनी इच्छानुसार अपने पास रख सकती थी। स्वतंत्रता की बात करें, तो उस युग में भी पुत्री के गुणों को देखते हुए सुवर्चला और सावित्री के पिता ने उन्हें स्वयं वर चयन करने की अनुमति दी और श्वेतकेतु एवं सत्यवान से विवाह करने दिया। परंतु आज की बात करें और नज़र दौड़ा कर देखें, तो आज के तथाकथित अत्याधुनिक युग में भी सत्तर प्रतिशत ऐसे पिता हैं, जो विवाह के लिए पुत्री को स्वतंत्रता देना तो दूर, उनकी मर्ज़ी तक नहीं पूछते। उसकी इच्छा को लोक-लाज और इज्ज़त की वेदी में दफ़न कर दिया जाता है।

ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में स्त्रियों का उल्लेख ऋषि के रूप में किया गया है। ऋषि वह स्त्री कहलाती थी, जो मंत्रों से पूर्णतः रू-बरू हो और अपनी सक्रियता से समाज में सार्थक हस्तक्षेप करने के लिए स्वतंत्र हो। लोपामुद्रा, अपाला तथा घोषा को महिला ऋषि माना गया है। ऋग्वेद में मंत्रों में इनका उल्लेख रचनाकार के रूप में किया गया है। इसके पंचम मंडल में आत्रेय ऋषियों के मंत्र के साथ अपाला तथा विश्वारा के मंत्र भी समाहित हैं। इन महिला ऋषियों ने अपनी रचनाशीलता के बल पर न सिर्फ़ ऋषि की मान्यता हासिल की, बल्कि ब्रह्मवादिनी भी हुईं। ब्रह्मवादिनी उन बुद्धिजीवी महिलाओं को कहा जाता था, जो वाद-विवाद में खुली बहस कर सके, शास्त्रों की रचना कर सके और धर्मोपदेश दे सके। कौषीतकि ब्राह्मण में बताया गया है कि वेद में पारंगत स्त्रियों को 'पथ्यस्वस्ति वाक्' की उपाधि से सम्मानित किया जाता था। उत्तर-वैदिक काल में भी स्त्रियाँ पूर्ण स्वतंत्र और अपनी इच्छानुसार जीवन-शैली जीने वाली होती थीं। काशकृत्स्ना मीमांसा दर्शन की आचार्या थीं। उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी और सुवर्चला आदि महिलाओं का ज़िक्र है, जिन्होंने अपनी जीवन-शैली स्वयं चुनी थी। ब्रह्मवादिनी गार्गी ने उस समय के बुद्धिजीवियों के बीच अकेली याज्ञवल्क्य के साथ बहस कर, उनके ब्रह्मज्ञान को चुनौती दी। मैत्रेयी ने घर-बार और अटूट संपदा को त्याग कर याज्ञवल्क्य के साथ जाने का निर्णय लिया था और कात्यायनी ने अपने पति को छोड़ उसी घर-बार और ऐश्वर्य में रमने का फ़ैसला किया। यज्ञों में पत्नी की सहभागिता अनिवार्य थी और वैदिक सीतायज्ञ तथा रुद्रयज्ञ जैसे यज्ञों का अनुष्ठान मात्र स्त्रियाँ ही करती थीं। अपनी पुरोहिता वह स्वयं ही होती थीं और कर्मकांड भी स्वयं सम्पन्न करती थीं। ऋग्वेद में वर्णित स्त्रियाँ स्वेच्छा से हथियार उठाकर युद्ध में शामिल होती रही हैं।

कैकेयी को चाहे कितना भी बदनाम कर लें, पर सच्चाई यह है कि कैकेयी जैसी स्वाधीनता के मूल्य को सत्यापित करने वाली स्त्री अन्यत्र कम ही हुई हैं। वाल्मीकि के अनुसार दशरथ ने कैकेयी के साथ विवाह राज्यशुल्क देकर किया था, अर्थात् उन्होंने कैकेयी के पिता को वचन दिया था कि उनकी लड़की से यदि लड़का होगा, तो अयोध्या का राजपद उसी को दिया जाएगा। परंतु दशरथ के मन में राम के प्रति मोह था और उन्होंने कैकेयी को दिया हुआ वचन तोड़कर राम को राज्याभिषेक के लिए तैयार कर लिया। कैकेयी से अपने पुत्र के प्रति यह अन्याय बर्दाश्त नहीं हुआ और उसने दिए गए वचन का प्रयोग कर अपने पुत्र को राजा बनाया। इसे चालाकी या मौका परस्ती नहीं, बल्कि दशरथ को दिया गया दंड मात्र कहा जाएगा, जो उनके ऐतिहासिक भूल के लिए मिली। वाल्मीकि की कथा में अहिल्या कोई पत्थर नहीं, बल्कि जीती-जागती स्त्री है। अहिल्या को इन्द्र से प्रेम था, जो पति गौतम से बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने अपनी पत्नी को त्याग दिया। पति द्वारा छोड़े जाने पर भी अहिल्या वर्षों अकेली रही। सीता भी कोई अबला नहीं थी। वनगमन के वक्त राम से वाद-विवाद कर स्वयं वन गई और पति की पथगामिनी

बन पत्नीधर्म का निर्वाह किया। अपहरण के वक्त रावण से जूझीं और अशोक वाटिका में उसे अपने पास भटकने भी नहीं दिया। यही नहीं रावणवध के उपरांत राम के कटाक्ष को चुपचाप सहन न कर, उनसे वाद और संवाद किया तथा पति द्वारा त्यागे जाने पर अकेले पुत्रों का लालन-पालन कर योद्धा बनाया। मिन्नतों के बावजूद राम को क्षमा न कर राम के साथ रहने के बजाय स्वयं को पृथ्वी के सुपुर्द कर दिया। तारा, मंदोदरी और द्रौपदी जैसी सशक्त एवं दृढ़निश्चयी स्त्रियों ने अपने पतियों से वाद-विवाद और संवाद कर पति को सही राह दिखाने की कोशिश की हैं। द्रौपदी ने जुआ में हारे पति को अपनी बुद्धि वैभव से गुलामी से निजात दिलायी। उसने अपने एक सवाल से महावीर भीष्म को निरुत्तर कर दिया। शकुन्तला ने दुष्यंत द्वारा स्वयं को भूले जाने पर उसके महल में जाकर खूब बहस की और प्रण करके पुत्र को पिता का राज्य छीनने योग्य बनाया। मंदोदरी रावण को सीता को लौटा देने के लिए कहती है। जो रावण मंदोदरी को नहीं मानता, वही युद्ध में अपनी हार निकट देख संधि हेतु मंदोदरी से सलाह माँगता है। तब मंदोदरी उसे डपटती है और कहती है कि अब संधि करके कोई फ़ायदा नहीं। यदि तुमसे यह नहीं होगा, तो मैं तलवार उठाती हूँ। विपरीत परिस्थितियों में भी इन महिलाओं ने हिम्मत और दृढ़ निश्चयता का परिचय देने में विश्वास किया है, न कि 'विनती बहुत करों का स्वामी' की रट लगाती फिरी हैं। हमने इनकी स्त्री सुलभ सहनशीलता, धैर्य और कर्तव्य पारायणता के गुण को कमज़ोर बताकर अबला बनाया और सशक्त पक्ष को नज़रंदाज़ कर दिया। खुले विचार, वाक्चातुर्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की बात करें, तो इसमें भी ऋग्वैदिक स्त्रियाँ पीछे नहीं रही हैं। उस वक्त भी महिलाएँ शारीरिक आवश्यकताओं को सहज और उन्मुक्त भाव से अभिव्यक्त करती थीं। स्त्रियों का दैहिक संसर्ग की कामना प्रकट करना तब भी बुरा नहीं माना गया। इस संबंध में लोपामुद्रा का पति अगस्त्य के साथ संवाद उल्लेखनीय है, जब वह बूढ़े पति से कहती है - "काया बूढ़ा जाए, फिर भी एक पति को कामना करते हुए पत्नी के पास आना चाहिए।" (ऋग्वेद के पहले मंडल का 179वाँ सूक्त)

जिस संस्कृति की हम बात करते हैं वह क्या ये नहीं है? आज कितनी स्त्रियाँ इनके बराबर पहुँच पाई हैं। आज भी अधिकतर स्त्रियाँ हर क्षेत्र में संघर्षरत हैं। अथक परिश्रम और व्यवस्था से संघर्ष कर जिसने अच्छा मुकाम हासिल किया है, उनपर तंज कसे जाते हैं। उनके रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा यहाँ तक कि उनकी सोच को भी कलुषित मानकर संस्कृति की दुहाई दी जाती है। स्त्रियों के लिए स्वाधीनता का गलत फ़ायदा उठाने की बात की जाती है। विकृत मानसिकता को जन्म देने के लिए भी महिलाओं की स्वच्छंद सोच को ज़िम्मेदार माना जाता है। यदि किसी ने बुरी नज़र से देखा, तो उसकी नज़र में दोष नहीं, बल्कि महिलाओं के परिधान में खराबी निकाली जाएगी। यदि स्त्री तलाक की शिकार होती है, तो वह पत्नी-धर्म के निर्वहण में असमर्थ है और यदि वह पति को त्यागती है, तो चरित्रहीन कहलाती है। देह का व्यापार करती है, तो वेश्या है और बलात्कार की शिकार होती है तो उसके उद्दाम या स्वच्छंद आचरण को दोषपूर्ण माना जाता है।

सर्वगुणसम्पन्न स्त्री के व्यवहार और वर्चस्व को देखकर और अपना काम उसके बगैर न चलता देख मनु महाराज ने भी 'न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति' लिखकर पहले तो स्त्री को पराश्रित बनाया, फिर बड़ी समझदारी से 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' कहकर स्त्री के क्रोध, नाराज़गी और विद्रोह से पुरुष-जाति को बचा लिया। फिर पुरुषों ने स्त्री को वह स्त्री बनाया जो मात्र उसकी सुख-सुविधा का ख्याल रख सके। समाज को पितृसत्तात्मक और तथाकथित सुरक्षित समाज का नाम दिया। देवी का स्वरूप देकर पहले तो उसे भ्रमित किया गया और अच्छी भली स्त्री को मूर्ति के रूप में गढ़कर उसके गुणों और अधिकारों को पाषाण में जड़ दिया गया। उसकी प्राण प्रतिष्ठा इस तरह से की गई कि वह खुद ही समझ नहीं पाई कि उसके साथ जो हो रहा है वह सही है या गलत। स्त्रियों की रही-सही ताकत इस्लामिक आक्रमणकारी एवं शासकों ने निचोड़ ली। न सिर्फ़ उनका शरीर, बल्कि आत्मा को भी कालकोठरी में कैद कर रोशनी को उनके जीवन से सदा के लिए दूर कर दिया। देश, समाज और परिवार की इज़्ज़त का बोझ उस पर लाद दिया गया और उसकी कोमलता का लाभ उठाते हुए उसे विवश किया गया कि यदि वह सिर उठाने

की कोशिश करेगी, तो उसका सिर शायद नहीं कटे, परंतु समाज और परिवार का सिर लज्जा से सदा के लिए झुक जाएगा। स्त्री को दासी बनाकर पुरुष मुखिया बना और उसे यह दासता गरिमापूर्ण लगे और उसके मन में विद्रोह न हो, इसलिए ममता, स्नेह, प्रेम, दायित्व, धर्म, कर्तव्य, शील आदि से उसे जोड़ दिया गया। शादी के लिए उम्र, शिक्षा और ज्ञान में पुरुष से स्त्री का कम होना अनिवार्य रखा गया, ताकि उस पर शासन करना आसान हो। सामाजिक, औपचारिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा देकर उसे स्त्री रूप में परिवर्तित किया गया तथा धर्म और कर्तव्य के दायरे में इस तरह कैद किया गया कि पुरुष और परिवार को खुश रखना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया। शायद इसलिए कहा गया है कि स्त्री पैदा नहीं होती है, उसे बनाया जाता है।

हमारे ग्रंथकार और धर्मशास्त्रज्ञों ने स्त्री को मात्र दोष की खान बताया। साहित्य हो या इतिहास उसे वह स्थान नहीं दिया, जिसकी योग्यता वह रखती है। यहाँ तक कि स्त्रियों को शूद्र की श्रेणी में डाल दिया। महादेवी वर्मा जैसी साहित्यकार को वेद पढ़ने के लिए इलाहाबाद के वेद के गुरुजी ने इसलिए मना किया कि वह एक लड़की थी और लड़की वेद का अध्ययन नहीं कर सकती। लिहाज़ा उनका संस्कृत का अध्ययन जारी नहीं रह पाया। विश्पला और रुशमा जैसी योद्धा नारियों या अपाला और गार्गी जैसी वेदज्ञ स्त्रियों के देश में स्त्री को वेद पढ़ने का निषेध कितना उचित है? विद्वान एवं आलोचकों का पूर्वग्रहित दिमाग यह मानने के लिए तैयार नहीं होता कि वैचारिक, तर्कपूर्ण और निर्णायक मत रखने की क्षमता स्त्रियाँ भी रखती हैं। बौद्धिक चर्चा तथा वाद-विवाद में एक तो उन्हें शामिल नहीं किया जाता और अगर मजबूरन शामिल करना पड़े, तो गृह-सज्जा तक उनकी भूमिका को सीमित रखा जाता है। गृह-निर्माण में उनका उल्लेख नहीं किया जाता। लज्जा, धैर्य, सब्र, दया, माया, आदि गुण रखते हुए भी वीरता या पुरुषत्व के गुण, जिनमें मर्द डींग मारे फिरता है और स्वयं को स्त्री से ऊपर रखता है, उनमें भी ये पीछे नहीं रही हैं। चाँद सुलतान, अहिल्याबाई और बैजाबाई के साथ झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जैसी स्त्रियाँ न सिर्फ़ रणबाँकुरी हुईं, बल्कि उन्होंने राजनीति और नीति में भी अपनी योग्यता सिद्ध की है। स्त्रियों को जब भी अवसर मिला है पुरुषों से बेहतर सिद्ध हुई हैं। पढ़ाई-लिखाई हो या अन्य क्षेत्र, कहीं भी वे पीछे नहीं हैं। इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि स्त्री धर्म और दया की मूर्ति होती है। वह धर्म की रक्षिका भी है। हिंदू धर्म इन तथाकथित अबलाओं की दया पर ही टिका हुआ है। स्त्री का वास्तविक स्वरूप, उसका अस्तित्व, उसकी परंपरा, अतीत, स्मृति आदि से अवगत होना नई पीढ़ी का धर्म है। भूत से प्रेरणा लेकर भविष्य को सुधारा जा सकता है। इतिहास में भले ही स्त्रियों की शौर्य-गाथा का बखान कम मिले, पर पौराणिक स्त्रियाँ स्त्री की स्वाधीनता एवं स्वायत्तता का परिचय दिलाने के लिए काफ़ी है।

हम जानते हैं कि जब भी अवसर मिला है विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ पुरुषों से बेहतर सिद्ध हुई हैं। वे अपनी ताकत और सूझ-बूझ से घर और बाहर सभी दायित्यों का निर्वहण आसानी से कर सकती हैं, जो पुरुषों के लिए कठिन है। शायद यही असुरक्षा का बोध पुरुषों द्वारा स्त्रियों को उचित अवसर प्रदान करने से रोकती है। छोटी इकाई हो या बड़ी संस्था, प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी स्त्रियों को मुखिया चुनने में आज भी पुरुष अहम् को धक्का लगता है। उनके अंदर काम करना उन्हें गँवारा नहीं होता। फलस्वरूप स्त्री वर्षों एक पद पर काम करती रहती हैं और उसके साथ काम करने वाले कहीं-से-कहीं पहुँच जाते हैं। उसके गुणों को सही दिशा देने के बजाय परंपरा, सभ्यता, संस्कृति, शील, अपमान आदि से जोड़कर उसकी प्रतिभाओं पर ग्रहण लगा दिया जाता है। ऐसी कौन-सी संस्कृति है, जो अपने संवाहकों को परतंत्र बनाती हो। भारतीय संस्कृति का इतिहास तो ऐसा नहीं कहता।

हम जिन पाश्चात्य देशों से अपनी तुलना करते हैं और उनकी बुराई करते नहीं थकते, उन देशों में समानता का यह हाल है कि स्त्री अपने प्रति दयादृष्टि को बर्दाश्त नहीं कर सकती। कई यूरोपीय देशों में पुरुषों के द्वारा स्त्री के लिए बस, ट्रेन या किसी भी सार्वजनिक स्थल पर स्थान खाली करना उन्हें स्त्रीत्व की तौहीन लगती है। बराबरी में विशेषाधिकार को वे नहीं मानती। उन देशों में भी पहले स्त्रियों की हालत कोई बेहतर नहीं थी। काफ़ी जद्दोजहद के बाद इन्होंने अपनी आज़ादी और समानता का अधिकार कमाया है। सभ्यता और

संस्कृति की दुहाई देते हुए हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठीं। हमारे अंदर की हीनता हमें स्वयं को कमज़ोर और पाश्चात्य सभ्यता को बेहतर मानकर उन पर अपना दोष मढ़ना चाहती है। जबकि सच्चाई यह है, हम उनसे कहीं बेहतर और उन्नत सभ्यता से जुड़े हुए हैं। पौराणिक स्त्रियाँ एवं भारतीय सोच उनसे कहीं आगे है। हमारी हीन भावना ने उन्नति के पथ में रोड़ा अटकाने का काम किया है। पाश्चात्य सभ्यता से तुलना कर हम स्वयं को कमज़ोर सिद्ध करते हैं। इतनी तरक्की के बाद भी भारत में कितनी महिलाएँ प्राचीन स्त्रियों के बराबर खड़ी हो पाई हैं। आज स्त्री ज़मीन-आसमान एक ज़रूर कर रही हैं, परंतु नंबर अभी भी उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। सभ्यता और संस्कृति की दुहाई देकर स्त्री को कटघरे में खड़ा करना उनकी तरक्की में बाधा डालना है। भारतीय स्त्री को अन्य सभ्यता का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। अपने पूर्वजों का अनुकरण कर ले उतना काफ़ी है। स्त्री जननी है और जननी विनाशक नहीं हो सकती। भारतीय संस्कृति का आधार स्त्री है। संस्कृति के विनाश की जड़ इस आधार को कमज़ोर करना होगा न कि इसे सुदृढ़ करना। स्त्री आनुवंशिक रूप से संस्कृति का पोषण करती है न कि उसका नाश करने वाली है।

ashamukta@gmail.com

प्राचीन भारतीय संस्कृति में पर्यावरण-संरक्षण

डॉ. स्वाति चड्ढा
पुणे, भारत

भारतीय संस्कृति का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि यहाँ पर्यावरण संरक्षण का भाव प्राचीन काल में भी मौजूद था, पर उसका स्वरूप भिन्न था। उस काल में पर्यावरण का संरक्षण हमारे नियमित क्रिया-कलापों से ही जुड़ा हुआ था। इसी वजह से समकालीन साहित्य में वेदों से लेकर कालिदास, दण्डी, पंत, प्रसाद आदि तक सभी के काव्य में पर्यावरण जागरूकता के दर्शन होते हैं। भारत में प्रत्येक भाषा-साहित्य में प्रकृति से जुड़े प्रत्येक तत्व को बड़ी सूक्ष्मता और सुंदरता के साथ वर्णित करते हुए, उसे देवतुल्य मानकर उसकी उपासना की गई है। यहाँ पंच महाभूत अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश के साथ ग्रह-नक्षत्र, नदियाँ, तालाबों, पर्वतों, पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं सभी में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकारते हुए, उनके प्रति आदर-सम्मान की भावना परिलक्षित होती है। भारतीय परंपराओं में पर्यावरण अभिन्न अंग रहा है। प्रत्येक परम्परा के पीछे एक वैज्ञानिक तथ्य जुड़ा है।

आज पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए जहाँ विश्व में एक दिवस निर्धारित किया गया है, जिसे पर्व के रूप में मनाया जाता है, वहीं भारतीय परंपराएँ सनातन काल से ही पर्यावरण को संरक्षित एवं सुरक्षित करने के लिए विकसित की गई थीं। भारतीय संस्कृति प्रकृति और पर्यावरण के महत्त्व एवं संरक्षण के प्रति जागरूक रही है। पर्यावरण के प्रति अगाध प्रेम व समर्पण की भावना हमारे धार्मिक ग्रन्थों - वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण, रामचरितमानस, महाभारत एवं लोक साहित्य में परिलक्षित होती है। हमारे मनीषियों ने पर्यावरण के संरक्षण-संवर्धन को विशेष महत्त्व दिया है।

हमारी धरती वर्तमान में पर्यावरण संबंधी चिंताओं का सामना कर रही है। ग्लोबल वार्मिंग, अम्लीय वर्षा, वायु प्रदूषण, शहरों का विस्तार, अपशिष्ट निपटान, ओज़ोन परत की कमी, जल-प्रदूषण, जलवायु-परिवर्तन जैसी पर्यावरणीय कई समस्याएँ हैं, जो इस ग्रह पर प्रत्येक मानव, जीव-जन्तु और राष्ट्र को प्रभावित करती हैं। भारतीय संस्कृति में अग्नि, नदियाँ, वृक्ष, सूर्य, पशु-पक्षी आदि अनेक प्राकृतिक घटकों को पूजनीय माना जाता रहा है। यूरोप के आधिपत्यवाद की अपेक्षा भारतीय संस्कृति प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण कदमताल करती हुई आगे बढ़ी है। अधिकतर भारतीय त्योहार भी प्रकृति से जुड़े हुए हैं, चाहे वे बैसाखी हो या बसंत पंचमी। पर्यावरण यहाँ जीवन की रीढ़ माना जाता है। हिंदी शब्द पर्यावरण 'परि' तथा 'आवरण' शब्दों का युग्म है। 'परि'

का अर्थ है - 'चारों तरफ़' तथा 'आवरण' का अर्थ है - 'घेरा'। अर्थात् प्रकृति में जो भी चारों ओर परिलक्षित है, यथा - वायु, जल, मृदा, पेड़-पौधे तथा प्राणी आदि सभी पर्यावरण के अंग हैं।

वेदों को सृष्टि-विज्ञान का प्रमुख ग्रंथ माना गया है। वेदों में पर्यावरण संतुलन के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी का स्तवन अनेक स्थलों में किया गया है। अग्नि को पिता के समान कल्याणकारी कहा गया है। 'अग्ने सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व' ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि तत्व के स्तवन से होता है। ऋग्वेद (1.23.248) में जल के महत्त्व को इस प्रकार बताया गया है - 'अप्सु अन्त:अमृतं, अप्सु भेषजं' अर्थात् जल में अमृत है, जल में औषधि गुण विद्यमान रहते हैं। अस्तु, आवश्यकता है जल की शुद्धता, स्वच्छता बनाये रखने की। ऋग्वेद (1,555,1976) के ऋषि का आशीर्वादात्मक उद्गार है - 'पृथ्वी: पू: च उर्वी भव' अर्थात् समग्र पृथ्वी संपूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन, उपवन सब स्वच्छ रहें, गाँव, नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हों, तभी जीवन का सम्यक विकास हो सकेगा।

यजुर्वेद में यज्ञ विधियाँ एवं यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले मंत्र हैं। यज्ञ स्वयं एक चिकित्सा है। यज्ञ वायुमंडल को शुद्ध कर रोगों और महामारियों को दूर करता है। अथर्ववेद में आयुर्वेद का अत्यंत महत्त्व है। अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धति एवं जड़ी बूटियाँ तथा शल्य-चिकित्सा व विभिन्न रोगों का वर्णन है। सामवेद में ऐसे मंत्र मिलते हैं, जिनसे ये प्रमाणित होता है कि वैदिक ऋषियों को ऐसे वैज्ञानिक सत्यों का ज्ञान था, जिनकी जानकारी आधुनिक वैज्ञानिकों को सहस्राब्दियों बाद प्राप्त हो सकी।

भारतीय दर्शन यह मानता है कि इस देह की रचना पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण घटकों - पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से ही हुई है। समुद्र मंथन से वृक्ष जाति के प्रतिनिधि के रूप में कल्पवृक्ष का निकलना, देवताओं द्वारा उसे अपने संरक्षण में लेना, इसी तरह कामधेनु और ऐरावत हाथी का संरक्षण इसके उदाहरण हैं। कृष्ण की गोवर्धन पर्वत की पूजा की शुरुआत का लौकिक पक्ष यही है कि जन-सामान्य मिट्टी, पर्वत, वृक्ष एवं वनस्पति का आदर करना सीखें। श्रीकृष्ण ने स्वयं को ऋतुस्वरूप, वृक्षस्वरूप, नदीस्वरूप एवं पर्वतस्वरूप कहकर इनके महत्त्व को रेखांकित किया है।

वेदों के पश्चात् रामायण और रामचरितमानस की बात करें, तो महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास जी ने मनुष्य के जीवन को सात्विक और सुंदर बनाने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण की विशुद्धता पर विशेष बल दिया है, तभी मानव-जीवन आनंदकारी हो सकेगा। इन्होंने प्राकृतिक अवयवों को उपभोग की वस्तु नहीं मानते हुए समस्त जीवों और वनस्पतियों के बीच अटूट प्रेम सम्बन्ध भी स्थापित किया है। तुलसीदास ने वनों की सुंदरता व उपयोगिता के साथ वन्य जीवों के परस्पर संबंध का वर्णन इस प्रकार किया है -

''फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन, रहहिं एक संग जग पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई, सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।''

पर्यावरण संरक्षण को महत्त्व देते हुए तुलसीदास लिखते हैं -

''रीझि-खीझि गुरुदेव सिष सखा सुविहित साधू।
तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू।।''

अर्थात् तुलसीदास ने वृक्ष से फल खाना तो उचित माना, लेकिन वृक्ष को काटना अपराध माना है।

वृक्षारोपण की परंपरा भी स्वाभाविक है, जो प्राचीन काल से चली आ रही है। भगवान रामचंद्र जी के विवाह के पश्चात् राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर गुरु वशिष्ठ ने आदेश दिया -

"सफल रसाल पूगफल केरा, रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।"

श्रीराम ने भी 14 वर्ष के वनवास को अपने सौभाग्य का कारण माना, जो उनके प्रकृति-प्रेम को दर्शाता है। वनवास काल में सीता जी एवं लक्ष्मण ने भी वृक्षारोपण किया -

"तुलसी तरुवर विविध सुहाए, कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए।''

अयोध्या नगरी में सभी ने सुमन वाटिकाएँ, लताएँ आदि लगाई हैं। नीचे के उदाहरण में सबहिं शब्द विशेष महत्त्व का है, अर्थात् रोपण सभी को करना है, उसका आकार-प्रकार

जैसा भी हो।

''सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। विविध भाँति करि जतन बनाई।।

लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसन्त की नाई।।''

रामचरितमानस के सुंदरकांड में लंका के प्राकृतिक सौंदर्य एवं पर्यावरण के सुव्यवस्थित स्वरूप का चित्रण इस प्रकार है -

"बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहि।"

रामचरितमानस में पर्यावरण के महत्त्व व संरक्षण के साथ मानव के अटूट संबंध को दर्शाया गया है। रामायण कालीन ग्रंथों में सजीव-निर्जीव दोनों तत्वों को चेतना सम्पन्न बताया गया है। वाल्मीकि जी ने रामायण में प्रकृति के मनोरम दृश्यों का वर्णन किया है। ऋषि-मुनियों के आश्रम हरियाली युक्त थे, जिनमें जीव-जन्तु एवं पशु-पक्षियों का समूह स्वच्छन्द विचरण करते थे। महाभारत काल में भी मनीषियों ने पर्यावरण की महिमा का गान किया है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल्यकाल प्रकृति की गोद में बीता। उन्होंने पग-पग पर पर्यावरण संरक्षण के संकेत दिए। हमारे ऋषि मुनियों ने पृथ्वी का आधार ही जल और जंगल को माना है - "वृक्षाद वर्षन्ति पर्जन्य: पर्जन्यादन्न संभव:" अर्थात् वृक्ष जल है, जल अन्न है, अन्न जीवन है। वे जंगल को आनन्ददायक कहते हैं।

सम्राट विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त मौर्य और सम्राट अशोक के शासनकाल में भी वन्य जीवों एवं वनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया। आचार्य चाणक्य ने तो आदर्श शासन-व्यवस्था के लिए अनिवार्य रूप से अरण्य पालों की नियुक्ति करने की बात कही है। हिन्दू धर्म व जीवन में चार आश्रम निर्धारित हैं, जिनमें से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास का सीधा संबंध वनों से माना गया है। वृक्षों को देवता मानकर पूजने से उनका संरक्षण भी हो जाता है। मत्स्य पुराण में वृक्ष की तुलना मनुष्य के दस पुत्रों से की गई है।

"दशकूप समावापी: दशवापी समोह्रद:

दशह्रद सम: पुत्रो, दशपुत्र समोद्रुम:।"

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख-शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की वैदिक भावना है - "शं न उरुची भवतु स्वधाभि:।" ऋग्वेद 7,35,3 (अन्नादि से युक्त पृथ्वी हमारी शांति के लिए हो।) "स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी यच्छा न: शर्म सप्रथा:।" यजुर्वेद 36, 13 (पृथ्वी हमारे लिए कंटक रहित और बसने योग्य हो।) प्रकृति के दोहन और शोषण से मनुष्यों ने प्रकृति के नियमों की अवहेलना कर समस्त प्राणियों के जीवन को संकट में डाल दिया है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं के रूप में प्रकृति दंड देने से नहीं चूकती है।

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है, जिसका आचार्य सायण "अविनाशं क्षेमं - सुरक्षित क्षेमं" अर्थ किया है। यह नैरुक्त चिंतन है – "अलब्धस्य लाभो योग:, प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेम:" – अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है तथा प्राप्त का संरक्षण क्षेम। अत: सहज सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना ही स्वस्ति है। ऋग्वेद के अनेक सूक्त, रामायण एवं महाभारत के आख्यान, सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय और उसके पश्चात् समकालीन साहित्य परम्परा विद्यमान है। भारतीय वाङ्मय के आदि ग्रंथ वेद हैं। इनमें वर्णित प्राकृतिक चित्र आर्य संस्कृति के प्राकृतिक प्रेम को उजागर करते हैं और बताते हैं कि मनुष्य अपने मन, वचन और आचरण एवं व्यवहार से प्रकृति के कोप को शांत करके ही अपना जीवन सुखी और शांत बना सकता है। यथा -

''ओउम् द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी

शान्तिः रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः

शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः।

शान्ति रेव शान्तिः सा मा शान्ति रेधि।

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।''

सदियों से भारतीय मनीषियों ने प्रकृति के आश्रय में रहकर वेद, उपनिषद्, आरण्यक, ब्राह्मण, भाष्य, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थ रचे हैं। हमारे पूर्वज प्रकृति के संरक्षण एवं पर्यावरण संतुलन को लेकर बहुत सजग थे। उस समय वनस्पति को काटते समय यह प्रार्थना की जाती थी कि उसमें अनेक स्थानों पर फिर से अंकुर फूटें। इस संबंध में यजुर्वेद

संहिता (5.43) में यह श्लोक मिलता है -

''अयं हित्वा स्वाधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभाग्याय अतस्त्वं देव वनस्पते षतवल्सो, विरोहसहस्त्रंवल्या विवयं रुहेम।।''

हमारे ऋषि-मुनियों का वृक्षादि वनस्पतियों से अपार प्रेम रहा है। रामायण और महाभारत में वृक्षों-वनों का चित्रण पृथ्वी के रक्षक वस्त्रों के समान प्रदर्शित है। महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में प्रकृति शकुन्तला की सहचरी-सी दिखती है, वहीं मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थों में स्वार्थ के लिए हरे-भरे पेड़ों को काटना पाप घोषित किया गया है। अनावश्यक रूप से काटे गये वृक्षों के लिए दण्ड का विधान है। मत्स्य पुराण में वृक्ष महिमा का वर्णन करते हुए दस पुत्रों के समान एक वृक्ष को महत्त्व दिया गया है। भारतीय धर्म-दर्शन, कला एवं साहित्य सभी में प्रकृति को विशिष्ट स्थान मिला है, किंतु काव्य में उसे सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। कवि अधिक संवेदनशीलता के कारण प्रकृति के समस्त दृश्यों से अभिभूत होकर वर्णन करता है। आदिकवि वाल्मीकि ने जब प्रकृति के दो निर्द्वन्द्व प्राणियों को मुक्त विहार करते देखा, तो उनकी आत्मा भाव-विह्वल हो उठी, जब दूसरे ही क्षण एक को व्याध के बाण से आहत देखा, तो करुणा का क्रन्दन फूट पड़ा। परिणामस्वरूप, कविता का जन्म हुआ -

"मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वामगमः शाश्वती समः।
यत्क्रौंचयों मिथुनादेकमवधी काम मोहितम्।।"

प्रकृति के प्रति यह कवि-प्रेम अनादिकाल से अनवरत जारी है। यह वर्णन कभी स्वतंत्र आलंबन रूप में, कभी हृदयगत भावों को उद्दीप्त करने अथवा आगे की घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में होता है। कई बार यह वर्णन बिम्ब-प्रतिबिम्ब, उपदेश, रहस्य या मानवीकरण रूप में दृष्टिगोचर होता है। विशिष्टता यह है कि प्रकृति के स्निग्ध रूप पर कवि मोहित है, तो भाव-विह्वल होकर रचना करता है और यदि उसपर संकट है, तो वह आभास ही होने नहीं देता, वरन् उसकी संरक्षा के लिए अपने रचनाकर्म को समर्पित कर देता है। आदिकालीन हिंदी-काव्य में रासो-काव्यों में प्रकृति का आलम्बन व उद्दीपन रूप में अतिशय वर्णन हुआ है। इसी काल में मैथिल कोकिल विद्यापति रचित 'पदावली' प्रकृति वर्णन की दृष्टि से अद्वितीय है। ऋतुराज वसन्त का स्वागत किसी राजा के आगमन पर उल्लसित वातावरण के समान प्रदर्शित किया गया है, यह प्रकृति के प्रति ममत्व का वर्णन है -

''आएल रितुपति राज बसंत, धाओल अलिकुल माधवि-पंथ।
दिनकर किरन भेल पौगंड, केसर कुसुम धएल हेमदंड।
नृप-आसन नव पीठल पात, काँचन कुसुम छत्र धरू माथ।
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताब, समुखहि कोकिल पँचम गाय।।''

भक्तिकालीन कवियों की साधना में आध्यात्मिक तन्मयता व एकनिष्ठता का भाव विद्यमान रहा है। कबीर, तुलसी, सूर, जायसी की रचनाओं में प्रकृति का कई स्थलों पर रहस्यात्मक वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं वन, पर्वत, नदी, पशु-पक्षी, उपवन का स्वाभाविक व उल्लासमयी भंगिमाओं के साथ वर्णन भी है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में लक्ष्मण और सीता को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है, यथा -

"तुलसी तरुवर विविध सुहाए।
कहुँ-कहुँ सिय, कहुँ लखन लगाए।"

इसी प्रकार सूर, मीरा, रसखान आदि भक्त कवियों ने प्रकृति के अपार व मोहक चित्र खींचे हैं। रीतिकालीन कवियों ने यद्यपि प्रकृति की छटा को आलंकारिक रूप में अधिक प्रकट किया, किंतु बिहारी, पद्माकर, देव, सेनापति ने उसके सौंदर्य को अपनत्व भी दिया। मलयानिल की शीतलता और सुगंधि का वर्णन करते हुए बिहारी ने बिम्बात्मक वर्णन किया है -

"चुवत स्वेद मकरंद कन, तरु तर बिरमाय।
आवंत दच्छिन देष ते थक्यौ बटोही बाय।"

वैदिक एवं दार्शनिक साहित्य की ही भाँति पुराणों में भी पर्यावरण के घटकों को पूजनीय माना गया है। प्रकृति के इन घटकों में देवत्व का भाव भी दर्शाया गया है। यहाँ मिट्टी प्रस्तर के पहाड़ को देवात्मा हिमालय बताया है, तो नदियों को देवी का पर्याय माना है, जिसमें पुण्य गंगा का स्वरूप तो अवर्णनीय है। पुराणों के अनुसार ईश्वर संसार के कल्याणार्थ

कभी मत्स्य का आकार ग्रहण करते हैं, तो कभी कछुआ, हंस बनकर इनकी महत्ता प्रतिपादित करते हैं। सिंह और वाराह के रूप में आकर सभी जीवों की श्रेष्ठता घोषित करते हैं। इसीलिए भारतीय संस्कृति में सभी जड़-चेतन को दिव्य माना गया है। पुराणों की रचना का आधार भी सृष्टि के तत्वों को लेकर बना है। अनेक पुराणों का नामकरण भी इन तत्त्वों के नामों को लेकर हुआ है। अग्निपुराण, वायुपुराण आदि में यही भाव दिखाई देता है। इन सभी पुराणों में दिव्य प्रकृति का सहज वास है।

वैश्वीकरण और आधुनिकता के इस दौर में विश्व के देशों की आपसी स्पर्धा, आर्थिक उन्नति और अंधाधुंध विकास के कारण व्यक्ति ने मानवता और मानवीय गुणों को विस्मृत किया। सदियों से हमारी जो परंपराएँ चली आ रही थीं, उन्हें भुला दी गयी। हमारे पूर्वजों, ऋषियों और संतों के प्रकृति माँ के परिरक्षण के जो अमूल्य प्रयास रहे, आज के दौर में वे सब निष्प्रभ हो गए हैं। आज यदि हमें अपना पर्यावरण सुधारना है, तो अपनी प्राचीन पंरपराओं को और अमूल्य संस्कृति को सहेजना होगा। अब इन विकृत परिस्थितियों में व्यक्ति को उसकी विकृत मानसिकता से मुक्त करना अत्यंत आवश्यक है। उसमें फिर से कोमल भावनाओं को जागृत करने की आवश्यकता है। उसे फिर से मानव बनाकर उसके आसपास की प्रकृति और पर्यावरण को संरक्षित करने की प्रेरणा देनी है।

s.chadha@ncl.res.in

हिंदी की विश्वविजयी यात्रा में प्रोफ़ेशनल का योगदान

श्री उमेश चतुर्वेदी
नई दिल्ली, भारत

भारत की भाषायी राजनीति बदलती नज़र आ रही है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से लेकर 351 में राजभाषा का ज़िक्र है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान देश के अधिकांश लोगों ने हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनाने का सपना देखा था। हालाँकि 1937 में मद्रास प्रांत में हिंदी की पढ़ाई शुरू किए जाने के बाद जो राजनीतिक विरोध शुरू हुआ, उसकी अनुगूँज संविधान सभा में भी दिखाई दी। संविधान सभा में हिंदी को लेकर हालाँकि सिर्फ़ ढाई दिनों तक ही चर्चा हुई, लेकिन उसे राष्ट्रभाषा की बजाय राजभाषा के तौर पर ही स्वीकार किया गया। वैसे भी संविधान लागू होने से पंद्रह साल यानी 1965 तक हिंदी को इतना ताकतवर बना लिया जाना था कि वह अंग्रेज़ी का स्थान ले सके, क्योंकि तब तक सरकारी और राजकाज की भाषा के तौर पर अंग्रेज़ी का ही प्रयोग होते रहना था। तय हुए वक्त के हिसाब से 26 जनवरी 1965 को हिंदी को अंग्रेज़ी की जगह पर राजभाषा का स्थान ग्रहण करना था। अभी ऐसा हो पाता कि एक बार फिर हिंदी का विरोध विशेषकर तमिलनाडु से शुरू हो गया। तब तर्क दिया गया कि हिंदी को गैर हिंदी भाषियों पर थोपा जा रहा है। इसकी वजह से हिंदी को भारत में अपना जो स्थान हासिल करना था, वह अब तक सही मायनों में नहीं हो पाया है।

भारत में विशेषकर समाजवादी विचारधारा वाले दल और भारतीय जनता पार्टी हिंदी के प्रबल पैरोकार रहे हैं। भारतीय समाजवादी धारा के अन्यतम पुरोधा राममनोहर लोहिया ने अंग्रेज़ी हटाओ आंदोलन ही शुरू कर दिया था। भारतीय जनता पार्टी के पूर्ववर्ती संगठन भारतीय जनसंघ के सिद्धांतकार दीनदयाल उपाध्याय भी हिंदी के प्रबल समर्थक थे। दोनों नेताओं का महात्मा गांधी की ही तरह मानना था कि हिंदी ही पूरे देश को जोड़ सकती है। दोनों ही नेता इस सोच के थे कि स्वाधीन भारत में राजकाज विदेशी भाषा की बजाय अपनी भाषा में होना चाहिए। यही वजह है कि दोनों ही विचारधाराओं के समर्थक हिंदी के पैरोकार रहे हैं। भारतीय जनता पार्टी के बारे में माना जाता है कि वह राष्ट्रीय विचारधारा वाले सांस्कृतिक संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से प्रभावित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तो अपने कार्यकर्ता को शुरू में ही समझा देता है कि उसे अपना हस्ताक्षर अपनी मातृभाषा में करना चाहिए। स्पष्ट है कि भारत में ज़्यादातर लोगों की मातृभाषा हिंदी ही है। इसलिए संघ का कार्यकर्ता तो हिंदी या अपनी दूसरी भारतीय भाषाओं में ही हस्ताक्षर

की शुरुआत कर देता है। उदारवाद के ज़बरदस्त विस्तार के दौर में भी संघ के कार्यकर्ता अंग्रेज़ी के प्रभाव में वैसे नहीं आए, जैसा बाकी वर्गों में देखा गया। इन अर्थों में देखें, तो स्वाधीन भारत में हिंदी के विस्तार और प्रसार में संघ का भी अपना अन्यतम योगदान है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक प्रमुख प्रकल्प या संगठन वनवासी कल्याण आश्रम है। इसके ज़रिए आदिवासी या मूल निवासियों के बीच ढेर सारे कल्याण कार्यक्रम और एकल विद्यालय चलाए जाते हैं। उन सबका कार्य हिंदी और स्थानीय जनजातीय भाषाओं में ही होता है। इसका असर ही है कि वनवासी इलाकों के पढ़े-लिखे लोगों की प्राथमिक भाषा भले ही उनकी अपनी वनवासी भाषा हो, लेकिन उनकी द्वितीयक और कार्यभाषा हिंदी ही है। इन अर्थों में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय विचारधारा ने भी अपनी तरह से हिंदी को भारत के उस समाज तक पहुँचाने और लोकप्रिय बनाने में अप्रतिम योगदान दिया है, जिसे आधुनिक अर्थों में अद्यतन सभ्यता से दूर का समाज माना जाता है।

भारतीय समाजवादी धारा की राजनीति की भी पहली ही शर्त हिंदी रही है। समाजवादी धारा के तमाम राजनेता हिंदी में ही काम करते और बोलते रहे हैं। दक्षिण भारत के राज्य कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में एक दौर में समाजवादी आंदोलन का ज़ोर था। वहाँ के कुछेक राजनेताओं को छोड़ दें, तो ज़्यादातर ने हिंदी सीखी और वे उसे सहजता से बोलते रहे। स्वाधीनता आंदोलन से लेकर स्वाधीन भारत में समाजवादी और राष्ट्रवादी धारा का हिंदी प्रेम ही रहा कि यह धारणा बन गई कि जो व्यक्ति ठीक हिंदी जानता होगा, वही भारत का प्रधानमंत्री बनने के योग्य है। 1966 में तत्कालीन मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारिका प्रसाद मिश्र ने तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के निधन के बाद प्रधानमंत्री की दौड़ में शामिल तमिलनाडु के कद्दावर नेता के कामराज को समझाया था कि हिंदी न जानने की वजह से वे सफल नहीं हो पाएँगे। इस वजह से कामराज को प्रधानमंत्री पद की दौड़ से पीछे हटना पड़ा था। तब से यह अवधारणा स्थापित ही हो गई है कि हिंदी बोलने वाला ही भारत का प्रधानमंत्री बन सकता है और सफल हो सकता है। भले ही भारत का राजकाज हिंदी की बजाय अंग्रेज़ी में ज़्यादातर मौकों पर चलता हो।

इसके बावजूद जब-तब भारत में भाषा के आधार वैमनस्य फैलाने की कोशिश होती रही है। कोरोना संकट के ठीक पहले कर्नाटक के एक संगठन ने बेंगलुरू मेट्रो में हिंदी के प्रयोग का विरोध किया था। भारत की नई शिक्षा नीति अगस्त 2020 में आई। उसमें भी भारतीय भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा पर ज़ोर है। इसके विरोध में तमिलनाडु की राजनीति से आवाज़ उठी। आरोप लगाया गया कि हिंदी को एक बार फिर थोपने की कोशिश हो रही है।

गैर हिंदीभाषी राज्यों की ओर से आए दिन उठने वाले विरोध के सुरों की वजह से अब राष्ट्रवादी धारा की राजनीति का सुर भी बदलने लगा है। राष्ट्रवादी राजनीति के बारे में कुछ साल पहले तक कहा जाता रहा कि वह 'हिंदू, हिंदी और हिंदुस्तान' की वैचारिकता से प्रेरित रही है। हालाँकि कुछ साल पहले तक भारतीय राजनीति का विस्तार अखिल भारतीय स्तर तक नहीं था। तब उसका प्रसार सिर्फ़ हिंदी-भाषी भारतीय राज्यों तक था। लेकिन साल 2014 के बाद से राष्ट्रवादी धारा की राजनीति लगातार अखिल भारतीय पार्टी बनती गई है। चूँकि उसका विस्तार अखिल भारतीय स्तर तक हो चुका है, लिहाज़ा भाषा को लेकर उसकी राजनीतिक सोच भी बदलती जा रही है। अब वह हिंदी को लेकर आक्रामक की बजाय समन्वयवादी राजनीति करने लगी है। अब वह बोलने लगी है कि हिंदी को भी बढ़ना चाहिए और वह किसी भारतीय भाषा की दुश्मन नहीं है। राष्ट्रवादी धारा की राजनीति की सोच और नीति में हिंदी को लेकर आए इस बदलाव में कोई नई बात नहीं है। हिंदी पहले भी किसी भारतीय भाषा की विरोधी नहीं रही है। हिंदी को कमज़ोर करने के लिए इस अवधारणा को जान-बूझकर प्रक्षेपित किया गया। इसकी वजह से हिंदी को भारतीय भाषाओं की राजनीति विरोधी मानने लगीं। इसी वजह से हिंदी को लेकर राजनीति के स्तर पर विरोध बढ़ा।

सभी मानते हैं कि गांधी जी ने हिंदी को भारत की एकमात्र संपर्क भाषा बनाने के लिए सबसे ज़्यादा प्रयास किया। इसमें कोई दो राय भी नहीं है। लेकिन हिंदी को भारत की संपर्क और राष्ट्रभाषा बनाने का सबसे पहला विचार बंगला-भाषी ने

दिया था। वे बंगला-भाषी थे केशवचंद्र सेन। 1875 में उन्होंने कहा था कि हिंदी ही भारत की भावी संपर्क भाषा बनने की हैसियत रखती है। उनके इस विचार को उस वक्त के भद्र बंगला-भाषी समाज के एक वर्ग का समर्थन भी मिला। यह संयोग ही है कि जिस समय पूर्वी भारत में हिंदी को संपर्क भाषा बनाने का विचार आया, ठीक उसी वक्त पश्चिमी भारत में भी ऐसा ही विचार सामने आ रहा था। दुनिया समझती है कि हिंदी को संपर्क भाषा बनाने के लिए प्रयास करने वाले पहले गुजराती गांधी जी हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। हिंदी को भारत की राजभाषा बनाने का पहला सुझाव उन्नीसवीं सदी के मशहूर गुजराती कवि नर्मदा लालशंकर दवे ने 1880 में दिया था। गुजरात में वे नर्मदा कवि के नाम से प्रचलित हैं। 1905 में बंगभंग के खिलाफ़ जब पूरा देश उठ खड़ा हुआ था, उन्हीं दिनों कांग्रेस के कद्दावर नेता लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने वाराणसी की यात्रा की थी। इस यात्रा के दौरान उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा को संबोधित किया था। इस संबोधन के दौरान भी उन्होंने हिंदी को लेकर बड़ी बात कही थी। उन्होंने तब कहा था कि नि:संदेह हिंदी ही भारत की भावी राजभाषा होगी। पहली बार गांधी जी ने सार्वजनिक तौर पर 1917 में भरूच में आयोजित गुजरात शैक्षिक सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए कहा था - "भारतीय भाषाओं में केवल हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जिसे राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाया जा सकता है।" इसके बाद ही हिंदी लगातार स्वाधीनता आंदोलन के केंद्र में आती गई। लेकिन संविधान सभा में उसे राष्ट्रभाषा की बजाय पंद्रह साल के लिए राजभाषा के तौर पर स्वीकार किया गया।

जब तक तकनीक और संचार-क्रांति का विस्तार नहीं हुआ, तब तक हिंदी का वैसा विस्तार नहीं हुआ, जैसे उम्मीद की गई थी। लेकिन 1991 में भारत में जब उदारीकरण की शुरुआत हुई, तब हिंदी उन साम्राज्यवादी कंपनियों की पसंदीदा भाषा बनती चली गई, जिनकी सोच अतीत में हिंदी की ही विरोधी थी। हिंदी ही नहीं, भारतीय भाषाओं का भी विकास साथ-साथ होता रहा। एक यह भी वजह रही कि राष्ट्रवादी विचारधारा की राजनीति भी हिंदी के प्रति केंद्रित रुख रखने की बजाय भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी के संबंधों को लेकर समन्वयवादी रुख अख्तियार करने लगी है।

संचार-क्रांति की वजह से भारतीय प्रतिभाओं की माँग विदेशी धरती पर बढ़ी है। सॉफ़्टवेयर क्रांति के बाद भारतीय प्रतिभाओं का लोहा दुनिया को मानना पड़ा। इसकी वजह से पूरे देश से विदेशों की ओर प्रतिभा पलायन बढ़ा है और उसकी वजह से ही भारतीय प्रतिभाएँ विदेशी धरती पर प्रतिष्ठित होने लगीं। उदारीकरण से पहले ज़्यादातर भारतीय मज़दूरी करने विदेश जाते थे, लेकिन अब प्रतिभाएँ जा रही हैं। इसकी वजह से भारतीयों को लेकर विदेशी धरती पर सोच भी बदली है।

अपनी माटी की खुशबू, उसकी ताकत और उसका प्यार उतनी शिद्दत से समझ नहीं आता, जितना माटी छोड़कर परदेस में जाने के बाद । मातृभाषा भी जन्मभूमि की माटी की ही खुशबू का विस्तार होती है। शायद यही वजह है कि अपनी जन्मभूमि से दूर जाने के बाद जितनी अपनी आबोहवा याद आती है, उतना ही प्यार माटी में उमड़ आता है। यह प्यार तो हर काल में दिखता रहा है, लेकिन हिंदी के संदर्भ में कहें, तो इन दिनों इस प्यार की धमक दुनिया में ठीक से सुनाई देने लगी है। अब हिंदी की अनुगूँज भारत की सीमाओं के पार लगातार सुनाई दे रही है।

अंग्रेज़ी शासन के दौरान भारतीय भाषाओं के लिए एक शब्द दिया गया 'वर्नाक्यूलर लैंग्वेजज़'। वर्नाक्यूलर का एक अर्थ गुलाम होता है। भारतीय भाषाओं के लिए आज भी भारत में इसी शब्द का प्रयोग होता है। यह बात और है कि दक्षिण भारत की भाषाओं, विशेषकर तमिल और मलयालम-भाषी लोग विदेशी धरती पर पहले से प्रतिष्ठित थे। चूँकि अब पूरे भारत से विदेशी धरती के लिए प्रतिभाओं की माँग बढ़ी है। लिहाज़ा विदेशी धरती पर उनके बीच आपसी समन्वय, अपनी परंपरा और अपनी माटी की सुगंध की संपर्क भाषा के तौर पर हिंदी बढ़ रही है। इसका ही असर है कि अब अमेरिका, कनाडा, फ़्रांस, जर्मनी, जापान, चीन, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड, इटली, रूस, आदि देशों में भी हिंदी का प्रभाव बढ़ा है। हिंदी के माध्यम से भारतीय शास्त्रीय कलाओं और भारतीय संस्कृति का भी विस्तार हुआ है। भारतीय त्योहार भी प्रतिष्ठित हो रहे हैं और इन त्योहारों के ज़रिए भी

हिंदी को पनपने का मौका मिल रहा है।

दुनियाभर की भाषाओं के लिए कहा जाता रहा है कि जिन भाषों को राजकीय समर्थन और प्रोत्साहन मिलता है, वे ही आगे बढ़ती हैं। कुछ दशक पहले तक हिंदी को लेकर भी ऐसी ही सोच रही। लेकिन अब हिंदी को लेकर स्थिति बदली है। हिंदी को वैसा राजकीय प्रोत्साहन नहीं मिला, जैसा अपेक्षित था। इसके बावजूद हिंदी बढ़ रही है। उसकी पहचान बढ़ रही है। विदेशी धरती पर भारतीयता का प्रतीक बन रही है। भारतीय कलाओं की प्रतिनिधि भी बन रही है। इसको प्रतिष्ठित कराने में भारतीय प्रतिभाओं का योगदान अप्रतिम है। हालाँकि इस बिंदु पर एक विरोधाभास नज़र आता है। वे विदेशी धरती पर भी काम अंग्रेज़ी में ही कर रहे हैं। चाहे वे कारोबारी क्षेत्र में सक्रिय हों या संचार क्रांति के क्षेत्र में, या सॉफ़्टवेयर उद्योग में, हर जगह उनकी कामकाजी भाषा अंग्रेज़ी है, लेकिन विदेशी धरती पर अपनों की याद, माँ के दुलार की स्मृति और अपनी भारतीय सुगंध का प्रतीक और संपर्क भाषा हिंदी ही है। इस तरह विदेशी धरती पर हिंदी बढ़ रही है। उसे प्रतिष्ठित अब राजकीय समर्थन की बजाय उन प्रोफ़ेशनल के ज़रिए मिल रहा है, जिनमें से ज़्यादातर की पढ़ाई का प्राथमिक माध्यम हिंदी नहीं रही है। वक्त आ गया है कि हिंदी की इस विश्वविजयी यात्रा को याद तो किया ही जाए, उसका माध्यम बनी प्रतिभाओं को सलाम भी किया जाए।

uchaturvedi@gmail.com

मॉरीशस के गाँव-शहर के नामों का इतिहास

श्रीमती सविता तिवारी
ला लोरा, मॉरीशस

नामों में कहानियाँ छिपी होती हैं और जब वे नाम स्थानों के हों, तब कहानियाँ अधिक गहरी और रोचक हो जाती हैं। मॉरीशस के नक्शे में भी हमारे होठों पर मुस्कान लाने वाले या आश्चर्यचकित करने वाले बहुत-से नाम हैं। गाँव, शहर, ज़िलों और राजधानी के इन नामों में न केवल इतिहास है, बल्कि संस्कृति, राजनीति, प्रकृति, धर्म और विदेशी प्रभाव भी है।

मॉरीशस का इतिहास आदिम काल का नहीं है। इस धरती पर कुछ 1000 वर्ष पहले ही मानव के चरण मॉरीशस में पड़े। वहीं से शुरू होती है, इस 2040 वर्ग किलोमीटर वाले छोटे-से टापू-देश की कहानी। पहला नाम कब, कहाँ और किसने दिया, इसका दस्तावेज़ ढूँढ पाना संभव नहीं, पर यह निश्चित है कि इसका नाम 'मॉरीशस' 1598 में रखा गया। इस नाम की भी अपनी एक कहानी है। मॉरीशस के स्थानों के नामों की दुनिया रोचक है। यहाँ के नामों का इतिहास रहस्यपूर्ण भी है, क्योंकि इसी इतिहास की परछाँई डच, फ़्रेंच, अंग्रेज़ी, हिंदी एवं अन्य भाषाओं से प्रभावित स्थानों के नामों में हमें दिखाई देती है।

इस धरती पर पुर्तगालियों एवं हॉलैंड के निवासियों का आगमन हुआ है। अफ़्रीकी गुलामों ने यहाँ की संस्कृति का बीजारोपण किया। फ़्रांसीसियों ने यहाँ के सुंदर स्थानों पर अपना आधिपत्य जमाकर उन्हें नाम दिए हैं। भारतीयों ने इस मिट्टी को अपने लाल पसीने से सींचकर अपने सामर्थ्य अनुसार भाषाई योगदान दिया है। इसलिए यह देश छोटा होते हुए भी इतना समृद्ध है। इतनी सारी संस्कृतियों के पदचिह्नों से सुसज्जित मॉरीशस का मानचित्र भी अभूतपूर्व सौन्दर्य की अनुभूति कराता है। मॉरीशस के सामान्य मानचित्र में 1 राजधानी, 9 ज़िलों, 4 शहरों और 130 गाँवों के नाम अंकित हैं। इन 144 नामों में से केवल 4 नाम हिंदी भाषा के हैं। ये चार नाम हैं - 'गोकुला', 'बनारस', 'ब्रह्मस्थान' और 'लाल-माटी'। यहाँ की मिट्टी लाल होने से गाँव का नाम 'लाल-माटी' पड़ा। इन चारों नामों के अलावा हिंदी में कई और नाम भी हैं, जो छोटे गाँवों और गलियों के नामों की शोभा बने और आज ये मॉरीशस के बृहत् मानचित्र के हिस्से हैं, जैसे – 'पंचवटी', 'चित्रकूट', 'केवल-नगर', 'गंगा तालाब', 'कनक क्रेटर', 'कैंप लीला' आदि।

राजधानी - पोर्ट लुइस

मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुइस की कहानी भी बहुत निराली है। यह शहर 'पोर्ट लुइस' के अलावा 'पोर्ट लुई' एवं 'पोल्वी' नामों से भी प्रचलित है। पोर्ट लुइस का इतिहास 17वीं शताब्दी का है, जब डच नाविकों ने इसकी स्थापना की और इसे नूर्ड वेस्टर हेवन नाम दिया। वर्ष 1736 में फ़्रांसीसियों ने मॉरीशस द्वीप पर अधिकार कर लिया और इस जगह का नाम तत्कालीन फ़्रांसीसी राजा लुइस XV के नाम पर पोर्ट लुइस रख दिया। फ़्रांसीसी शासकों ने पोर्ट लुइस को अपना प्रमुख बंदरगाह बनाया। वर्तमान में पोर्ट लुइस की आबादी करीब डेढ़ लाख है। मॉरीशस के उत्तर-पश्चिमी तट पर स्थित पोर्ट लुइस शहर एक महत्त्वपूर्ण वित्तीय सेवा केंद्र और पर्यटन-स्थल है। साथ ही, यह सबसे समृद्ध अफ़्रीकी शहरों में से एक है।

ज़िलों के नाम पर दृष्टि

मॉरीशस 9 ज़िलों में विभाजित है। इन नौ ज़िलों के नाम इस प्रकार हैं - 'मोका', 'प्लेन विल्हेम्स', 'पोर्ट लुइस', 'ब्लैक रिवर', 'फ़्लाक', 'ग्राँ पोर्ट', 'पॉम्प्लेमूस', 'सावान' और 'रिवियेर-जु-राँपार'।

ग्राँ पोर्ट

ग्राँ पोर्ट मॉरीशस के दक्षिण-पूर्व में स्थित एक प्रमुख ज़िला है। 'ग्राँ पोर्ट' का अर्थ है 'बड़ा बंदरगाह'। इस ज़िले का क्षेत्रफल 260.3 वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या सवा लाख है।

ग्राँ पोर्ट को मॉरीशस के इतिहास का उद्गम स्थल भी कहा जा सकता है, क्योंकि यही वह स्थान है, जहाँ 9 सितंबर 1598 के दिन एडमिरल वैन वारविक के आदेश पर एक डच बेड़ा उतरा था। उन्होंने अपने देश के राजा के नाम पर टापू का नाम 'मॉरीशस' रख दिया। हालाँकि डच मॉरीशस में पैर रखने वाले पहले लोग नहीं थे, पर इस धरती पर लोगों को लाकर बसाने वाले पहले उपनिवेशवादी अवश्य थे। उन्होंने टापू के नामकरण के बाद, तट से करीब 2 मील आगे उत्तर में एक किला बनाया और उसका नाम ग्राँ पोर्ट रखा। यह किला डच ईस्ट इंडिया कंपनी का मॉरीशस में मुख्यालय बना। वर्ष 1710 में डचों ने, मौसम व खान-पान की परेशानियों के चलते इस टापू को छोड़ दिया, तब फ़्रांसीसियों ने इस किले पर अधिकार कर लिया, पर क्षेत्र का नाम ग्राँ पोर्ट ही रहने दिया।

मोका

'मोका' अरबी भाषा का शब्द है, जो एक विशेष तरह की कॉफ़ी के लिए प्रयुक्त किया जाता था। जब फ़्रांसीसियों ने मॉरीशस टापू पर कब्ज़ा किया, तब पहले ही वर्ष में उन्होंने यहाँ कॉफ़ी की खेती प्रारंभ की। इसके लिए यमन स्थित 'मोखा' शहर से जिसे 'अल-मखा' नाम से भी जाना जाता था, कॉफ़ी की विभिन्न किस्में मँगवाईं। यमन का मोखा बंदरगाह प्रारंभिक कॉफ़ी व्यापार के बड़े केंद्रों में से एक था। मौसम की अनुकूलता देखते हुए टापू के केन्द्रीय पठार को कॉफ़ी की खेती के लिए चुना गया और इस क्षेत्र का नाम पड़ गया मोका। करीब सौ वर्षों तक कॉफ़ी की खेती के बाद, 1817 तक आते-आते, मोका ज़िले में भी गन्ने का राज हो गया। मोका ज़िले ने कॉफ़ी उत्पादन वाले एक छोटे-से गाँव से, आज दुनिया को बाँहें फैलाए बुला रही, स्मार्ट-सिटी तक का सफ़र तय कर लिया है।

प्लेन विल्हेम्स

'प्लेन' यानी 'समतल भूमि' और 'विल्हेम' एक जर्मन नाम है। इस ज़िले का नाम जर्मन व्यवसायी विल्हेम लेकनिग के नाम पर रखा गया है। वे प्रशिया मूल के थे और वर्ष 1721 में मॉरीशस द्वीप में आए और यहीं के होकर रह गए। प्रशिया, जर्मनी का, ऐतिहासिक रूप से एक प्रमुख राज्य था। लेकनिग ने मानचित्रकारों के साथ मिलकर प्लेन विल्हेम्स क्षेत्र को न केवल मॉरीशस के मानचित्र पर अंकित करवाया, बल्कि यहाँ का विकास भी किया। 1740 में फ़्रांसीसी मानचित्रकार ग्योमार द्वारा तैयार मानचित्र में कात्र-बोन को एक जंगल के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जिसमें विकास एवं उपनिवेश की संभावनाएँ बताई गईं। इसी तरह व्यवसायी जोसेफ़-फ़्राँसुआ शॉर्पांत्ये दे कोसिज्ञी ने अपने क्षेत्र का नाम पाल्मा रखा और गवर्नर एंटोनी बाउचर ने 1764 में अपने अधिकार

वाले क्षेत्र का नाम बासें (बेसिन) रखा। मॉरीशस में केवल मोका और प्लेन विल्हेम्स ज़िले अंतर्देशीय ज़िले हैं, बाकी के सात ज़िले तटीय ज़िले हैं।

फ़्लाक

'फ़्लाक' मॉरीशस के पूर्व में पाया जाने वाला एक तटीय ज़िला है। ज़िले का अधिकांश क्षेत्र समतल है। यह सबसे पुरानी बसावट वाले क्षेत्रों में से एक है, क्योंकि इसे डच नाविकों ने 17वीं शताब्दी में बसाया था। डच इस क्षेत्र को 'हवेन-वूर-डे-शोप' नाम से बुलाते थे, जिसका अर्थ है, 'स्लीपिंग हार्बर' अर्थात् 'सोता हुआ बंदरगाह'। उन्होंने इस क्षेत्र को अपने जहाज़ों के लिए बंदरगाह के रूप में विकसित किया था। इस बंदरगाह का प्रयोग डच मुख्य रूप से एबॉनी पेड़ की लकड़ी को जहाज़ों पर लादकर अपने देश ले जाने के लिए करते थे। समतल क्षेत्र, साथ ही मिट्टी की गुणवत्ता के कारण, डच अधिकारियों ने यहाँ अपनी बस्तियाँ भी बसाईं और कई बाग-बगीचों का भी निर्माण करवाया। डच भाषा में समतल भूमि को 'व्लाक' कहा जाता है। 'व्लाक' का ही अपभ्रंश बना 'फ़्लाक'। अपने समृद्ध इतिहास के साथ फ़्लाक अब एक आधुनिक स्थल है और पूरा मॉरीशस यहाँ विशेषकर शॉपिंग करने जाता है। साथ ही, आज भी इस इलाके में, हमें स्मृति-पथ पर ले जाने में सक्षम पर्याप्त ऐतिहासिक इमारतें एवं खंडहर भी हर मोड़ पर दिख जाते हैं।

पाँप्लेमूस

राजधानी पोर्ट लुइस से कुछ 10 किलोमीटर की दूरी पर, मॉरीशस के उत्तर में स्थित ज़िला है - पाँप्लेमूस। यह नाम फ़्रांसीसियों ने, इस क्षेत्र में, चकोतरा फल, जिसे 'ग्रेपफ़्रूट' भी कहते हैं, की प्रचुरता के कारण दिया। ग्रेपफ़्रूट को फ़्रेंच में 'पाँप्लेमूस' कहते हैं। पाँप्लेमूस के पौधे डचों द्वारा इस क्षेत्र में लगाए गए थे। बड़े-बड़े संतरों जैसे दिखने वाले इस फल का स्वाद थोड़ा कड़वा होता है, पर इसे मॉरीशस भर में चाव से खाया जाता है, क्योंकि कहा जाता है कि यह मधुमेह पर नियंत्रण रखता है और मॉरीशस में मधुमेह एक बड़ी बीमारी है।

जैसे फ़्लाक ज़िले को डचों ने अपना क्षेत्र बनाया था, उसी प्रकार पाँप्लेमूस ज़िला फ़्रांसीसियों के लिए घर बना। कई प्रसिद्ध फ़्रांसीसी अधिकारी पाँप्लेमूस में रहते थे, जैसे पहले गवर्नर माहे-दे-लाबुरदोने और पियेर प्वाव आदि। आज पाँप्लेमूस अपने वनस्पति-उद्यान, जिसे पाँप्लेमूस बॉटेनिकल गार्डन और कई ऐतिहासिक अवशेषों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

रिवियेर-जु-राँपार

'रिवियेर-जू राँपार' ज़िला इस द्वीप के उत्तर-पूर्व में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 147.6 वर्ग किलोमीटर है। इसकी जनसंख्या करीब एक लाख दस हज़ार है। रिवियेर-जू राँपार मॉरीशस के उत्तर-पूर्व में बहने वाली एक नदी है। यह नदी मॉरीशस के उत्तर-मध्य की एक खूबसूरत झील ला-निकोलियेर से निकलती है और पूर्व में पोस्ट-दे-फ़्लाक क्षेत्र में जाकर, हिंद महासागर में मिल जाती है। नदी की गहरी ढलान किसी किले की दीवार (रैम्पार्ट - जिसका उच्चारण फ़्रेंच में 'राँपार' करते हैं) जैसी लगती थी। जिस कारण इसका नाम रिवियेर-जु-राँपार रखा गया। यहाँ नदी के नाम पर ज़िले का नाम भी रखा गया।

सावान

'सावान' मॉरीशस का दक्षिणी ज़िला है। यह अपनी घुमावदार पहाड़ियों, घने जंगलों और ऊबड़-खाबड़ अनछुई सुंदरता के लिए जाना जाता है। सावान एक डच शब्द है, जिसका अर्थ है, घास युक्त बड़ा मैदान। मॉरीशस में 'सावान' एक पर्वत का नाम है और उससे निकलने वाली नदी को 'सावान रिवर' के नाम से जाना जाता है। अतः जिस क्षेत्र में यह नदी फैली है, वह क्षेत्र सावान ज़िला बन गया। इस ज़िले का क्षेत्रफल 245 वर्ग किलोमीटर है और इसकी जनसंख्या करीब सत्तर हज़ार है। मॉरीशस का यह दक्षिणी भाग पर्यटन उद्योग की दृष्टि से काफ़ी लोकप्रिय है।

ब्लैक रिवर

नदियों के लिए 'काली नदी' नाम दुनिया भर के देशों

में प्रचलित है। जैसे स्पेनिश और पुर्तगाली में 'रियो नीग्रो'; फ़्रांस में 'रिवियेर नुआर', तुर्की में 'कारा सू' आदि। मॉरीशस में 'ब्लैक रिवर' नाम नदी को डच द्वारा, नदी के काले पत्थरों के कारण दिया गया। ब्लैक रिवर देश का सबसे शुष्क एवं कम आबादी वाला ज़िला है। ब्लैक रिवर ज़िला पश्चिम में, पोर्ट लुइस के ठीक नीचे पाए जाने वाले क्षेत्र से लेकर देश के दक्षिण में बे-जु-काप के तट तक फैला हुआ है।

अब बात करते हैं, देश के कुछ प्रमुख शहरों के नामों की और उन नामों के रोचक इतिहास की।

वाक्वा

वाक्वा एक पौधे का नाम है, जो इस शहर में प्रचुर मात्रा में पाया जाता था। इस पौधे की पत्तियों का उपयोग बैग और चटाई बनाने के लिए आज भी किया जाता है।

रोज़ हिल

रोज़ हिल (रोज़िल) शहर का एक बड़ा हिस्सा कौर-दे-गार्ड पर्वत के तल पर स्थित है, जो द्वीप के पश्चिम की ओर है। सूर्यास्त के समय, जिसे फ़ोटोग्राफ़ी की भाषा में 'गोल्डन आवर' कहते हैं, सूर्य की किरणें पर्वत को लालिमा से नहला देती है। इसी कारण स्थानीय लोगों ने इस पर्वत को 'रोज़-हिल' यानी 'गुलाबी पहाड़ी' नाम दिया।

क्यूर्पिप

क्यूर्पिप, जिसे फूलों के शहर के रूप में भी जाना जाता है, द्वीप के सबसे पुराने शहरों में से एक है। इसका उपयोग द्वीप के दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की यात्राओं के दौरान एक पड़ाव के रूप में किया जाता था। यात्री यहाँ बैठकर अपने धूम्रपान वाले चिलम (पाइप) को साफ़ किया करते थे। यहाँ तम्बाकू की भी खेती होती थी। इसलिए इसका नाम पड़ा 'क्यॉर-पाइप', जिसका फ़्रेंच उच्चारण हुआ 'क्यूर्पिप'।

कात्र-बोर्न

एक अध्यादेश, 1895 में पारित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप कात-बोन (कात्रबोर्न) शहर का निर्माण हुआ। कात्र-बोर्न का अर्थ है, चार सीमा पत्थर। इतिहासकारों के अनुसार, 1880 में मानचित्रकार अलेक्ज़ेंडर द्वारा तैयार किए गए मानचित्र पर 'पाल्मा', 'बासें', 'त्रियानों' और 'बोसोंज़' का सीमा पत्थर (बोर्न) लगाकर परिसीमन किया गया था। एक अन्य तथ्य दिया जाता है कि इन चार पत्थरों द्वारा प्लेन विल्हेम्स, मोका और ब्लैक रिवर के तीन ज़िलों का सीमांकन किया गया था। एक दावा यह भी किया जाता है कि 1761 में दो भूमि मालिकों, मिस्टर मैबिल और मिस्टर डेवो के भूमि-विवाद को सुलझाने के लिए चार पत्थरों से उन दोनों की ज़मीनों की सीमाएँ अलग-अलग की गई थीं।

टोपोग्राफ़ी पर आधारित नाम

अक्सर स्थानों के नाम स्थान की संरचना (टोपोग्राफ़ी) के आधार पर चुने जाते हैं, जैसे ग्राँ बासें (बड़ा तालाब), जिसे गंगा तालाब भी कहा जाता है। ग्राँ बे (विशाल खाड़ी), रिश-तेयर (उपजाऊ मिट्टी), बेल-मार (आकर्षक दलदल या मरीचिका), मोंताईं-ब्लाँश यानी सफ़ेद पहाड़। मोंताईं-लोंग यानी लम्बा पहाड़ आदि।

संख्याओं से प्रेम

मॉरीशस के गाँवों-शहरों के नामों में संख्याओं का अच्छा खासा प्रयोग मिलता है। एक गाँव का नाम कात्र-सेयर है, जिसका अर्थ है चार-बहनें। एक गाँव का नाम है 'दे-फ़्रेयर' अर्थात् दो भाई। इसके अलावा एक गाँव है कात्र-कोको। कोको का अर्थ वैसे तो नारियल होता है, पर मॉरीशस में, विद्वानों को भी कोको कहने की परंपरा थी। फ़्रांसीसी काल के दौरान चार उल्लेखनीय लोग इस गाँव में रहते थे, जिनमें एड्रियन-दे-एपिने शामिल थे, जो पेशे से वकील और समाजसेवी भी थे। इन्होंने इस द्वीप पर एक समाचार-पत्र भी आरंभ किया था। 'त्रा-बुचिक' यानी तीन दुकानों वाला गाँव। 'कात्र-बोर्न' यानी चार सीमा-पत्थर।

अजीबो गरीब नाम

काप-मालेरे (Cap Malheureux) के अनुवाद से "बद किस्मतों का अंतरीप" अर्थ निकलता है। वर्ष 1810 में अंग्रेज़ों

और फ़्रांसीसियों के बीच हुए युद्ध में फ़्रांसिसियों की हार हुई, इसलिए क्षेत्र को बद-किस्मती से जोड़ा गया। 'पेची-पाके' यानी 'छोटा पैकेट', 'पेची-गामें' यानी 'छोटा बच्चा'। 'ग्रो-काइयू' यानी 'बड़े कंकड़'। 'देलो-पुरी' यानी 'सड़ा हुआ पानी'। 'गुड-लैंड्स' यानी 'अच्छी ज़मीन'।

'फ़ों-जू-साक' यानी 'बैग की तह', अब इस नाम के पीछे की क्या कहानी है, यह बता पाना मुश्किल है। बहुत संभावना है कि यह नाम स्विट्ज़रलैंड के लेखक प्लिनियो मार्टिनी की पुस्तक से लिया गया हो। 20वीं शताब्दी की शुरुआत में मार्टिनी की पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसका नाम था 'ले फों-जू-साक', जिसमें वे जीवन रूपी बैग को नीचे तक टटोलने की बात करते हैं।

इसके अलावा मॉरीशस के एक गाँव का नाम है 'वाले-दे-प्रेथ' यानी 'पुजारियों की घाटी'। एक अन्य गाँव का नाम है 'कॉं-जाऽब' यानी 'भूतिया-कैंप'।

ग्री-ग्री

एक और अजीब नाम है 'ग्री-ग्री'। 'ग्री-ग्री' मॉरीशस के दक्षिण का एक रोमांचकारी पर्यटन स्थल है। जहाँ 10 फ़ीट ऊँची दूधिया लहरें जब चट्टानों से टकराकर आपको रोमांचित करती हैं और गहरी खाई आपके शरीर में सिहरन पैदा करती हैं। नाम की बात करें, तो मॉरीशस में किसी बात का वर्णन करते समय एक शब्द को दोहराने की प्रवृत्ति भी प्रचलित है। उदाहरण के लिए 'थोड़ा' कहने के लिए 'चिगित-चिगित' कहते हैं। 'धीरे' कहने के लिए 'दुसमा-दुसमा' कहते हैं। पीली वस्तु का वर्णन करने के लिए 'ज़ौन-ज़ौन', अर्थात् 'पीला-पीला' कहते हैं। शायद यही कारण है कि इस स्थान के नाम में दो बार 'ग्री' शब्द का प्रयोग हुआ है। जो अंग्रेज़ी शब्द 'ग्रे' का समानांतर है और भूरे रंग का द्योतक है। 'ग्री-ग्री' में आम तौर पर काले बादल छाए रहते हैं। बड़ी लहरें और हवाएँ इस स्थान को एक उदास एहसास देती हैं, जिसके कारण इस क्षेत्र का नाम 'ग्री-ग्री' पड़ा।

काँदोस एवं सोदनाक

एक पहाड़ी की दो तरफ़ के क्षेत्रों के नाम आपस में उलटा लिखकर रखे गए हैं। 'काँदोस' (Candos) एवं 'सोदनाक' (Sodnac) नामों पर ध्यान दें, तो पता चलता है कि अंग्रेज़ी के 'काँदोस' शब्द को उलटा करके 'सोदनाक' शब्द बनाया गया है। दोनों ही मॉरीशस के प्रमुख इलाके हैं। काँदोस में जहाँ मॉरीशस का एक प्रमुख अस्पताल है, वहीं 'सोदनाक' एक सुविधा सम्पन्न रिहायशी इलाका है।

फल सब्ज़ियों के नाम पर गाँवों एवं क्षेत्रों के नाम

मॉरीशस में ऐसे भी गाँव हैं, जिनके नाम सब्ज़ियों एवं फलों के नामों पर आधारित हैं; जैसे 'कालबास' यानी 'घिया'। 'प्लेन-दे-पापाई' यानी 'पपीते का मैदान'; 'प्वेंट-ओ-पिमा' यानी 'मिर्च वाला अंतरीप'; 'बाँबू' यानी 'बाँस', 'बानान' यानी 'केला'; 'पाँप्लेमूस' यानी 'चकोतरा'; 'तमारें' यानी 'इमली' आदि। राजधानी पोर्ट-लुइस के ठीक पास स्थित 'पाई' गाँव से उपनिवेश-काल में राजधानी और आसपास के क्षेत्रों में पशुओं के लिए चारे की आपूर्ति होती थी, इसलिए क्षेत्र का नाम हुआ 'पाई' यानी 'पुआल'।

विदेशी शहरों के नाम पर गाँव

'आरसेनाल' फ़्रांस में एक स्थान है और इंग्लैंड में एक फ़ुटबॉल क्लब भी है, जो 1893 से इंग्लिश प्रीमियर लीग, फ़ुटबॉल लीग में शामिल है। तो संभव है, दोनों में से किसी एक स्थान से प्रेरित होकर इस स्थान का नाम दिया गया हो। वैसे मॉरीशस में आरसेनाल फ़ुटबॉल क्लब के बहुत फैंस हैं। इसके अलावा मॉरीशस में 'ब्रिटानिया', 'नॉध्र-दाम' गाँवों के नाम फ़्रांस के विविध स्थानों से लिए गए हैं। 'नुवैल-फ़्राँस' (नया फ़्रांस), 'क्वीन विक्टोरिया', 'बेनारेस', 'शौं-दे-मार्स' आदि क्षेत्रों के नाम भी अन्य देशों के शहरों के नामों से लिए गए हैं।

आल्बियों

मॉरीशस में 'आल्बियों' का लाल-सफ़ेद पट्टियों वाला लाइट हाऊस किसने नहीं देखा होगा। यह मॉरीशस में सक्रिय एकमात्र लाइट हाउस है। यह अपने आसपास की गहरी खाइयों एवं नाटकीय ढंग से उत्क्रेनित होने वाले समुद्र-तट के रूप में प्रसिद्ध है। इसके नाम का इतिहास भी इसी की

तरह समृद्ध है। कइयों के लिए यह नई जानकारी हो सकती है कि ब्रिटेन का सबसे पुराना ज्ञात नाम 'एलिबिंयो' ही है। इसका उपयोग प्राचीन यूनानी भूगोल-शास्त्रियों के द्वारा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में किया जाता था। 'एलिबिंयो' नाम को बाद में लैटिन के 'ब्रिटानिया' शब्द से बदल दिया गया। ब्रिटेन के तटों पर जैसी गहरी, ऊँची-ऊँची और ढालू चट्टानें हैं, वैसी ही चट्टानें इस क्षेत्र में होने से इलाके का नाम 'एलिबिंयो' रखा गया, जोकि फ्रेंच में 'आल्बियों' उच्चारित होता है।

बस थोड़ी-सी व्युत्पत्ति संबंधी विशेषज्ञता के साथ आप मॉरीशस के स्थानों के नामों को आसानी से डिकोड कर सकते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि अंग्रेज़ी का 'ग्रैंड' शब्द जिसका फ्रैंच उच्चारण 'ग्राँ' है, काफ़ी स्थानों के साथ जुड़ा मिलता है। इसके अलावा 'पेची' यानी 'छोटा' शब्द भी कई स्थानों के साथ विशेषण के रूप में उपस्थित है। वहीं नदी के लिए 'रिवियेर' शब्द भी बहुतेरे स्थानों के नामों के साथ जुड़ा है। यह था मॉरीशस के नामों का छोटा-सा इतिहास, जिसमें थोड़ी-सी प्रकृति, थोड़ा-सा इतिहास और थोड़ा-सा हास्य भाव है। इसलिए कहते हैं कि इतिहास केवल तलवारों और खंजरों से भरा नहीं है। साधारण नामों का भी बड़ा रोमांचकारी इतिहास होता है, जिसे हम आम तौर पर नज़रअंदाज़ कर देते हैं। पूरे देश की छोटी-छोटी यात्राएँ, बुज़ुर्गों से जी-भरकर बातें और स्थानीय पुस्तकालयों की सैर तथा इंटरनेट पर सर्च करने पर छोटे-से टापू मॉरीशस का रोमांचित करने वाला इतिहास सामने प्रकट हुआ।

savitapost@gmail.com



विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस
की साहित्यिक पत्रिका
2022

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स ७३४२३, मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius

फ़ोन / Phone : +230-6600800
ई-मेल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications PVT LTD, Hindi Book Centre, New Delhi - 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइनर : BAHADOOR PRINTING LTD,
Avenue St. Vincent De Paul, Les Pailles, Mauritius
Tel: +230 2081317, Fax: +230 2129038